सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—नवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

अरण्यकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार
अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता
शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक
साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री
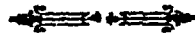
प्रकाशक
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी

प्रथमावृत्ति] चैत्रप्रतिपदा, सं० १९८५ [मूल्य ॥।-)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।
मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा, किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी ।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए — अपने मित्रोंको भी ग्राहक बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके **विषय बढ़िया और दाम बहुत माकूल हों।** हमने ऐसे कई प्रयत्न करने-वालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी-संसार' में दिखायी न दी। एकाध जगहसे ऐसी क़ोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घकायाको देखिए और साथ ही **उनका दाम भी मिलाइए** तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं। **पर कमी है**

स्थायी ग्राहकोंकी।

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु० में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा०पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
वी. एल. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

प्रकाशकीय निवेदन

सहृदय ग्राहकगण,

कई अनिवार्य अड़चनोंके आ पड़नेके कारण इस वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकांडके प्रकाशनमें अत्यधिक विलम्ब हो गया। हम जैसा कि बालकाण्डके अपने निवेदनमें लिख चुके हैं कि तीन-तीन महीनेके अन्तरसे एक-एक कांड प्रकाशित करेंगे, वैसा न कर सके। इसके लिए हम आपसे क्षमाप्रार्थी हैं। अब भविष्यमें इस विलम्बकी पूर्ति हम विशेष शीघ्रता कर कर देना चाहते हैं। आगे किष्किन्धा तथा सुन्दर दो कांड हम आपको ज्येष्ठ मासमें देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इतना हो जानेसे ही पिछले विलम्बकी पूर्ति हो जायगी। आप लोगोंने जिस उत्सुकतापूर्ण धैर्यके साथ इसकी इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की है, वह स्तुत्य है। हम इसके लिए आपके बड़े कृतज्ञ हैं।

आपसे हमारा एक विशेष निवेदन है। जैसा कि हम बालकांडके अपने निवेदनमें कह चुके हैं, हम सभी धार्मिक पुस्तकें महाभारत, पुराण, उपनिषद् आदि इसी रूपमें—ऊपर मूल तथा नीचे उसका हिन्दी अनुवाद देकर—सस्ती-से-सस्ती निकालना चाहते हैं, उसके लिए पर्याप्त संख्यामें ग्राहकोंकी आवश्यकता है। जब तक पर्याप्त ग्राहक हमारी इस मालाके न हो जायँगे, हम ये पुस्तकें सस्ती तथा जल्दी न निकाल सकेंगे। इसलिए आप सभी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि आप लोग अधिक नहीं केवल दो-दो ग्राहक ही बनाकर हमारी सहायता करें। आपलोगोंके इतना कर देनेसे ही हम पुस्तकें खूब जल्दी-जल्दी प्रकाशित कर सकेंगे।

इस बार श्रीतोताकृष्णजी गैरोला तथा श्रीमथुराप्रसादजी खरेने हमारे बहुतसे ग्राहक बनाये हैं, इसके लिए हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। आपही जैसे दो-चार उद्योगी मित्रोंने भी हमारे ग्राहक बनाये हैं, उनको भी धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। इन लोगोंकी नामावली अगले कांडमें प्रकाशित की जायगी।

आपका विनयावनत—

प्रकाशक

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिए कि दूकानदार, छोटे-बड़े, प्रसिद्ध—अप्रसिद्ध प्रायः सभी हमसे अधिक-से-अधिक कमीशन चाहते हैं। साधारण कमीशनपर बेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य एक रुपयेमें साधारण साइज़के ५१२ पृष्ठके हिसाबसे होता है। स्थायी ग्राहकोंको तो वह लगभग ७०० पृष्ठके पड़ जाता है।

इस पुस्तक-मालाके ग्राहक बननेके नियम

१—एक रुपया प्रवेश शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य विषय आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको पुस्तक न लेनी हो, वे सूचनापत्र पाते ही उत्तर दें, जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक कर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

नोट—ग्राहकोंको चाहिए कि सूचनापत्रका उत्तर, चाहे पुस्तक मँगानी हो अथवा न मँगानी हो, अवश्य दे दिया करें और प्रत्येक पत्रमें अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखा करें।

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

अरण्यकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् । यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा । मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां गणैः । विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् । आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ५ ॥
बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् । पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ॥ ६ ॥
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः । सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ७ ॥

ऋषिके बतलाये मार्गसे शत्रुओंके द्वारा अजेय और जितेन्द्रिय रामचन्द्रने महारण्य दण्डकारण्यमें प्रवेश किया और वहां उन्होंने तपस्वियोंके आश्रम देखे ॥ १ ॥ उन आश्रमोंमें कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे, ब्राह्मी शोभासे वे प्रदीप्त हो रहे थे जिस प्रकार आकाशमें सूर्य-मण्डल प्रदीप्त होता है तथा दुःखसे देखा जाता है ॥ २ ॥ उन आश्रमोंमें सब प्राणियोंको आश्रय मिलता है, उनके अंगने सदा स्वच्छ रहते हैं, अनेक पशु तथा पक्षियोंका समूह वहां बना रहता है ॥ ३ ॥ प्रतिदिन अप्सरायें वहां आकर नाचती हैं और उन आश्रमोंकी पूजा करती हैं, उन आश्रमोंमें बड़ी-बड़ी यज्ञशालायें बनी हैं, वहां यज्ञपात्र स्रुवा रखे हुए हैं, मृगचर्म और कुश भी हैं ॥ ४ ॥ लकड़ियां, जलसे भरे घड़े, फलफूल वहां रखे रहते हैं। मीठे फलवाले बड़े-बड़े जङ्गली वृक्ष उन आश्रमोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ उन आश्रमोंमें सदा बलि और होम हुआ करते हैं, पवित्र वेदध्वनि होती रहती है, अनेक प्रकारके वहां पुष्प हैं तथा कमलयुक्त तालाब हैं ॥ ६ ॥ उन आश्रमोंमें सूर्य और अग्निके समान दीप्तिशाली पुराने मुनि रहते हैं, वे फलमूल खाते

पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ ९ ॥
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः । दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥१०॥
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् । ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ॥११॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् । मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥१२॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥१३॥
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव । आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥१४॥
अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः । अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥१५॥
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः । आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ॥१६॥
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः । मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ॥१७॥
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् । धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ॥१८॥
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः । इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ॥१९॥
राजा तस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुङ्क्ते नमस्कृतः । ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥२०॥

हैं, वल्कल वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण करते हैं, वे जितेन्द्रिय हैं ॥ ७ ॥ नियमित आहार करनेवाले पवित्र परमर्षियोंसे वे आश्रम सुशोभित हैं, वहां वेदध्वनि होती रहती है अतएव वह आश्रम-मण्डल ब्रह्मलोकके समान मालूम पड़ता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मवेत्ता महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंसे वे आश्रम शोभित रहते हैं। उस आश्रम-मण्डलको देखकर, ॥ ९ ॥ अपने विशाल धनुषको उतार कर, महातेजस्वी श्रीमान् रामचन्द्र वहां गये। रामचन्द्रको देखकर दिव्य ज्ञानसम्पन्न महर्षि भी ॥ १० ॥ उनके तथा यशस्विनी जानकीके पास गये। चन्द्रमाके समान उदित धर्मात्मा राम, ॥ ११ ॥ लक्ष्मण तथा यशस्विनी सीताको देखकर उन महर्षियोंने उनकी मङ्गल कामना की तथा दृढव्रत महर्षि उन्हें आश्रममें लेआये ॥ १२ ॥ वनवासी रामचन्द्रका सुडौल शरीर, सुन्दरता, सुकुमारता तथा सुवेषता देखकर वे विस्मित हुए ॥ १३ ॥ वनवासी ऋषि तथा पशुपक्षी आदि भी अनिमिष नेत्रोंसे राम, लक्ष्मण और जानकीको देखकर नितान्त विस्मित हुए, विस्मयका कारण इनका सौन्दर्य, सौकुमार्य आदिके विरुद्ध वनमें भ्रमण करना था ॥ १४ ॥ सब प्राणियों के हित करनेवाले इन महाभाग ऋषियोंने रामचन्द्रको ले जाकर पर्णशालामें ठहराया ॥ १५ ॥ अग्निके समान तेजस्वी धर्मात्मा उन ऋषियोंने विधिपूर्वक रामचन्द्रका सत्कार किया और उनके लिये वे जल ले आये ॥ १६ ॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर ऋषियोंने इन्हें आशीर्वाद दिया तथा मूल पुष्प फल तथा समस्त आश्रम उन्हें अर्पित किये ॥१७॥ तदनन्तर वे धर्मज्ञ मुनि हाथ जोड़कर बोले—आप धर्मके पालक हैं, आप बड़े यशस्वी हैं और हम लोगोंके रक्षक हैं ॥ १८ ॥ राजा पालन करनेवाला है, अतएव श्रेष्ठ है और वह मान्य तथा पूजनीय है। राजा इन्द्रका चौथा भाग है और वह प्रजाकी रक्षा करनेवाला है ॥ १९ ॥ इसी कारण राजा श्रेष्ठ भोगोंको भोगता है, सब लोग

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। रक्षणीयास्त्वया शश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥२१॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्। वन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् ॥२२॥
तथान्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः। न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति। आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥
नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम् । ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शसलिलाशयम् ॥ २ ॥
निष्कूजमानशकुनि झिल्लिकागणनादितम्। लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह ॥ ३ ॥
सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते। ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥ ४ ॥
गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं विकटोदरम्। बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

उसे नमस्कार करते हैं। हमलोग आपके राज्यमें रहते हैं, इस कारण आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये, आप नगरमें रहें या वनमें, हमलोगोंके तो आपही राजा हैं ॥ २० ॥ राजन्, हमलोगोंने क्रोधको जीतलिया है, दण्ड देना भी छोड़ दिया है, हमलोगोंने इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लियाहै। हम तपस्वीलोग बालकके समान हैं, अतएव आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ इस प्रकार कहकर उन तपस्वियोंने फल, मूल, पुष्प तथा वनमें उत्पन्न होनेवाले अन्य अनेक प्रकारके आहारोंसे रामचन्द्र और लक्ष्मणको सन्तुष्ट किया ॥ २२ ॥ अन्य सङ्कल्पसिद्ध तपस्वियोंने जो अग्निके समान उज्ज्वल थे तथा जिनका धर्ममय चरित्र था, उन लोगोंने विधिपूर्वक रामचन्द्रको प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

इस प्रकार अतिथि-सत्कार पाकर रामचन्द्र सूर्योदय होनेपर सब ऋषियोंसे आज्ञा लेकर वनमें आगे चले ॥ १ ॥ अनेक पशु उस वनमें रहते थे, रीछ और बाघ उस वनमें निवास करते थे, वहाँके वृक्ष, लताएँ और गुल्म नष्टभ्रष्ट हो गए थे। वहाँके जलाशय देखने लायक न थे, वहाँ पक्षी नहीं बोलते थे, केवल झिल्लीका शब्द सुनायी पड़ता था, रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ ऐसा एक वनका मध्य देखा ॥ २ ॥ ३ ॥ भयानक पशुओंके निवास-स्थान उस वनमें रामचन्द्रने सीताके साथ पर्वतशिखरके समान ऊँचा भयानक शब्द करनेवाला मनुष्यभक्षी एक राक्षस देखा ॥ ४ ॥ उसकी आँखें गहरी थीं, मुँह बड़ा था, शरीर लम्बाचौड़ा था, पेट बहुत बड़ा था, वह बहुत ही कुरूप था, उसके शरीरका कोई स्थान बहुत ही ऊँचा और कोई स्थान बहुत ही नीचा था, वह बहुत मोटा था, उसके शरीरमें अनेक विकार थे और वह देखनेमें अत्यन्त भयानक था ॥ ५ ॥ चर्बी और रुधिर लिपटा हुआ व्याघ्रचर्म धारण किए हुए था, वह मुँह बाये हुए था,

वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
त्रीन्सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान्द्वौ वृकौ पृषतान्दश । सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ॥ ७ ॥
अवसज्याऽयसे शूले विनदन्तं महास्वनम् । स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ॥ ८ ॥
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः । स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ॥ ९ ॥
अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत् । युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ ॥१०॥
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ । कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ॥११॥
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ । अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः ॥१२॥
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् । इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ॥१३॥
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे । तस्यैवं ब्रुवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मनः ॥१४॥
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा । सीता प्रवेपितोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥१५॥
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् । अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥१६॥
पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् । मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् ॥१७॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम् । यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत् ॥१८॥
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण । या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ॥१९॥

उससे सब प्राणी डरते थे मानो वह यमराज हो ॥ ६ ॥ तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस हिरन और दाँतवाला चर्बीयुक्त हाथीका बड़ा सिर लोहेकी छड़में गांथ कर बड़े भयानक स्वरसे वह गर्जन कर रहा था । वह राम, लक्ष्मण और सीताको देखकर ॥ ७ ॥८॥ भयानक गर्जन करके पृथिवीको कँपाता हुआ क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौड़ा, जिस प्रकार अन्तक काल प्रजाकी ओर दौड़ता है ॥ ९ ॥ सीताको गोदमें उठाकर वह दूर चला गया और बोला—तुम दोनों जटा और वल्कल वस्त्र धारण करके स्त्रीके साथ यहाँ हो, अतएव तुम लोगोंके जीवनकी आशा नहीं है ॥ १० ॥ धनुष, बाण और तलवार लेकर तुम लोग दण्डकारण्यमें आये हो? तुम तपस्वियों का स्त्रीके साथ यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥ ११ ॥ मुनियोंको बदनाम करनेवाले तुम दोनों पापी कौन हो? मैं विराध नामका राक्षस हूँ ॥ १२ ॥ अस्त्र-शस्त्र लेकर इस बीहड़ वनमें मैं भ्रमण करता हूँ और मुनियोंका मांस खाता हूँ । यह सुन्दरी स्त्री (सीता) मेरी स्त्री होगी ॥१३॥ और तुम दोनों पापियोंका रक्त मैं युद्धमें पीऊँगा । इस प्रकारकी दुरात्मा विराधकी बुरी और गर्वयुक्त बातें सुनकर सीता घबड़ा गयीं और वे काँपने लगीं, जिस प्रकार हवामें कदली काँपती है ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुन्दरी सीताको विराधके पंजेमें फँसी देखकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले, उस समय उनका मुँह सूख रहा था ॥ १६ ॥ सौम्य, देखो, राजा जनककी कन्या और मेरी स्त्री सदाचारिणी सीता विराधके पंजेमें आ गयी है ॥ १७ ॥ यह यशस्विनी राजपुत्री है और बड़े सुख-से पाली-पोसी गयी है । हम लोगोंके विषयमें कैकयी जो चाहती थी, उसे जो प्रिय था और जिसके लिये उसने वर माँगा था, वह आजही—शीघ्रही घट गया । अतएव परिणाम सोचनेवाली कैकयी अपने पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे ही सन्तुष्ट न हुई ॥ १८ ॥ १९ ॥ मैं वहाँ सबका प्रिय था, फिर

यथाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम् । अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम ॥२०॥
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे । पितुर्विनाशात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥२१॥
इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुतः । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥२२॥
अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः । मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे ॥२३॥
शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः । विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥२४॥
राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह । तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥२५॥

मम भुजबलवेगवेगितः पततु शरोऽस्य महान्महोरसि ।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितं पततु ततश्च महीं विघूर्णितः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन्वनम् । पृच्छतो मम हि ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यतः ॥१॥
तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् । पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥२॥
क्षत्रियौ वृत्तसंपन्नौ विद्धि नौ वनगोचरौ । त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दण्डकान् ३॥

भी उसने मुझे वन भेजा, आज उस मध्यमा माता केकयीका मनोरथ सफल हुआ ॥ २० ॥ सीताका स्पर्श दूसरे करें, इससे बढ़कर दूसरा दुःख नहीं है । यह दुःख पिताकी मृत्यु तथा स्वराज्यके हरणसे भी बढ़ कर है ॥ २१ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर क्रोध करके लक्ष्मण बोले । उस समय लक्ष्मणकी आँखें आँसूसे भरी थीं, उनका चित्त शोकसे व्याप्त था, रोके हुए सांपके समान वे सांस ले रहे थे ॥ २२ ॥ काकुत्स्थ, आप सबके स्वामी हैं, इन्द्रके समान बली हैं, आपके भृत्य मेरे रहते आप अनाथके समान क्यों विलाप कर रहे हैं ॥ २३ ॥ अभी क्रोध करके मैं इस राक्षसको बाणसे मारता हूँ और इसके मरनेपर इसका रुधिर पृथिवी पीवेगी ॥ २४ ॥ आपका राज्य चाहनेवाले भरतपर जो मेरा क्रोध हुआ था, वह क्रोध मैं आज विराधपर छोड़ूँगा, जिस प्रकार इन्द्र पर्वतोंपर वज्र छोड़ते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भुजबलके वेगसे वेग प्राप्त कर यह मेरा विशाल बाण इसकी चौड़ी छातीपर पड़े और इसके प्राणको शरीरसे निकाल ले तथा यह राक्षस घूमकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

—※—

समस्त भवनको गुंजाता हुआ विराध पुनः बोला—मैं पूछ रहा हूं, कहो तुम लोग कौन हो और कहाँ जावोगे ॥ १ ॥ पूछनेवाले उस राक्षससे तेजस्वी रामचन्द्रने अपनेको इक्ष्वाकुकुलका

तमुवाच विराधस्तु रामः सत्यपराक्रमम् । हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ॥४॥
पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा । विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥५॥
तपसा चाभिसंप्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा । शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥६॥
उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम् । त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ॥७॥
तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः । राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥८॥
क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम् । रणे प्राप्स्यसि संतिष्ठ न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥९॥
ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् । सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह ॥१०॥
धनुषा ज्यागुणवता सप्तबाणान्मुमोच ह । रुक्मपुङ्खान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥११॥
ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बर्हिणवाससः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः॥१२॥
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः । अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१३॥
स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् । प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्ताननइवान्तकः ॥१४॥
अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः । विराधे राक्षसे तस्मिन्कालान्तकयमोपमे ॥१५॥

बतलाया । उस राक्षसके मुंहसे आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ २ ॥ हम लोग क्षत्रिय हैं और अपने कुलके आचार पालन करनेवाले हैं, इस समय वनमें आये हैं । हम लोग तुमको जानना चाहते हैं, तुम कौन हो जो इस दण्डक वनमें रहते हो ॥ ३ ॥ सत्यपराक्रम रामचन्द्र-से विराध इस प्रकार बोला—राजन्, मैं तुमसे कहता हूँ, तुम मुझे पहचानो ॥ ४ ॥ मैं जव नामक राक्षसका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम शतह्रदा है, पृथिवीमें सब राक्षस मुझे विराध कहते हैं अर्थात् मैं राक्षसोंमें प्रसिद्ध हूँ ॥ ५ ॥ तपस्याके द्वारा ब्रह्माकी प्रसन्नतासे मैंने यह वर पाया है कि मैं शस्त्रसे न मारा जाऊं तथा शस्त्रोंसे मेरा कोई अंग न काटा जा सके और न भेदा जा सके ॥ ६ ॥ अतएव आशा छोड़कर इस स्त्रीको यहीं छोड़कर तुम लोग शीघ्रतापूर्वक यहांसे भाग जाओ, मैं तुम लोगोंके प्राण न लूंगा ॥ ७ ॥ रामचन्द्रकी आंखें क्रोधसे लाल हो गयीं, वे उस कुरूप पापी विराध नामक राक्षससे बोले ॥ ८ ॥ क्षुद्र, तुमको धिक्कार, तुम्हारा अभिप्राय नीच है, तुम अपनी मृत्यु ढूंढ़ रहे हो, ठहरो, अवश्यही युद्धमें तुम्हें मृत्यु मिलेगी, मैं तुम्हें जीता न छोड़ूंगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर धनुषपर रौंदा चढ़ाकर रामचन्द्रने तीखे बाण चढ़ाये और उन्होंने उस राक्षसको मार डाला ॥ १० ॥ रामचन्द्रने ज्या (चिल्ला) चढ़े धनुषसे सात बाण चलाये, इन बाणोंका पिछिला हिस्सा सोनेका था, ये बाण बड़े वेगसे चलनेवाले थे, गरुड़ और वायु-के समान वेगवान् थे ॥ ११ ॥ अग्निके समान उज्ज्वल वे बाण मयूरपुच्छ धारण करनेवाले विराधके शरीरको भेदकर पृथ्वीपर गिर पड़े, वे बाण रुधिरसे सने हुए थे ॥ १२ ॥ बाणों-से विधजानेपर उस राक्षसने वैदेहीको छोड़ दिया और शूल लेकर राम तथा लक्ष्मणकी ओर क्रोध करके दौड़ा ॥ १३ ॥ भयानक गर्जन करके तथा इन्द्रध्वजके समान शूल लेकर मुंह बाये यमराजके समान शोभने लगा ॥ १४ ॥ उस समय कालान्तकके समान उस विराध राक्षस-पर दोनों भाई दीप्त बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ महाभयङ्कर उस राक्षसने हँसकर

स प्रहस्य महारौद्रः स्थित्वाजृम्भत राक्षसः । जृम्भमाणस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः॥१६॥
स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान्संरोध्य राक्षसः । विराधः शूलमुद्यम्य राघवावभ्यधावत ॥१७॥
तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः॥१८॥
तद्रामविशिखैश्छिन्नं शूलं तस्यापतद्भुवि । पपाताशनिना च्छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् ॥१९॥
तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पाविवोद्यतौ । तूर्णमापेततुस्तस्य तदा प्रहरतां बलात् ॥२०॥
स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ । अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत॥२१॥
तस्याभिप्रायमाज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । वहत्वयमलं तावत्पथानेन तु राक्षसः ॥२२॥
यथा चेच्छति सौमित्रे तथा वहतु राक्षसः । अयमेव हि नः पन्था येन याति निशाचरः ॥२३॥
स तु स्वबलवीर्येण समुत्क्षिप्य निशाचरः । बालाविव स्कन्धगतौ चकारातिबलोद्धतः ॥२४॥
तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः । विराधो विनदन्घोरं जगमाभिमुखो वनम् ॥२५॥

वनं महामेघनिभं प्रविष्टो द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ।
नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्रं शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जभाँई ली, जभाँई लेतेही उसके शरीरसे वे शीघ्र चलनेवाले बाण निकल आये ॥ १६ ॥ वरदान के प्रभावसे उसने प्राणवायुको रोकलिया और शूल लेकर रामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी ओर दौड़ा ॥ १७ ॥ वज्रके समान प्रदीप्त और आकाशमें अग्निके समान चमकनेवाले उसके शूलको श्रेष्ठ शस्त्रधारी रामचन्द्रने दो बाणोंसे काट दिया ॥ १८ ॥ रामचन्द्रके बाणोंसे कटकर उसका शूल पृथिवीपर गिर पड़ा, मानों वज्रसे कटकर मेरुका कोई टुकड़ा गिराहो ॥ १९ ॥ तब वे दोनों युद्धके लिये उद्यत राम और लक्ष्मण कृष्ण सर्पके समान दो तलवार लेकर शीघ्रही उसके पास आ गये और बलपूर्वक उन लोगोंने उसपर प्रहार किया ॥ २० ॥ इनके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी विचलित न होने योग्य इन नरश्रेष्ठोंको दोनों हाथोंसे पकड़ कर उस भयानक राक्षसने चलने की इच्छा की ॥ २१ ॥ उसका अभिप्राय जानकर रामने लक्ष्मणसे कहा—यह राक्षस हम लोगोंको इस रास्तेसे ले चले ॥ २२ ॥ लक्ष्मण, जैसा यह चाहता है वैसे ही यह हम लोगोंको ले चले, हम लोगोंका भी यही मार्ग है, जिस मार्गसे यह राक्षस जा रहा है ॥ २३ ॥ अतिबली होनेके कारण उद्धत उस राक्षसने अपने बल और पराक्रमसे बालकोंके समान राम और लक्ष्मणको कंधेपर उठा लिया ॥ २४ ॥ उन दोनोंको कन्धेपर रखकर वह विराध राक्षस घोर गर्जन करता हुआ वनकी ओर चला ॥ २५ ॥ उस वनमें बड़े-बड़े अनेक प्रकारके वृक्ष थे, अनेक प्रकारके पक्षियोंके कारण वह वन विचित्र हो गया था, उसमें सियारिनें थीं, वहां अनेक प्रकारके दुष्ट जन्तु थे, उस महामेघके समान वनमें उस राक्षसने प्रवेश किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

ह्रियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीता रघूत्तमौ । उच्चैःस्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुमहाभुजौ ॥ १ ॥
एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः । रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः ॥ २ ॥
मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा । मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥ ३ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह । रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥ ५ ॥
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्च्छितः । धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः ॥ ६ ॥
मुष्टिभिर्बाहुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम् । उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः ॥७॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः । निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ॥ ८ ॥
तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् । भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते । शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे ॥१०॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण । वनेऽस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रवर्चसः ॥११॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं राक्षसः प्रश्रितं वचः । इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥१३॥

रघुश्रेष्ठ राम, लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है यह देखकर सीता उन दोनोंको पकड़कर जोरसे चिल्लाने लगीं ॥ १ ॥ सीताने कहा—ये रामचन्द्र दशरथके पुत्र, सत्यवादी, शीलवान और पवित्र हैं। भयानक राक्षस लक्ष्मणके साथ उन्हें हरे लिये जा रहा है ॥ २ ॥ मुझे भालु खा लेंगे, बाघ या चीते मुझे खा लेंगे। ऐ राक्षसश्रेष्ठ, मुझे ले चलो, राम-लक्ष्मणको छोड़ दो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ ॥ ३ ॥ जानकीके वैसे वचन सुनकर राम और लक्ष्मणने उस दुरात्माके वध करनेमें शीघ्रता की ॥ ४ ॥ लक्ष्मणने उस राक्षसका बायाँ हाथ तोड़ डाला और रामचन्द्रने शीघ्रता पूर्वक उसका दाहिना हाथ तोड़ा ॥ ५ ॥ हाथके तोड़े जानेसे वह व्याकुल हुआ और मेघके समान वह राक्षस मूर्छित होकर वज्रसे तोड़े पर्वतके समान पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ मुक्केसे, हाथसे तथा पैरोंसे उस राक्षसको मारते हुए उठा-उठा कर राम और लक्ष्मण ऊँची जमीनपर पीसने लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस अनेक बाणोंसे विधा हुआ था, तलवारोंसे काटा गया था और अनेक बार पृथिवीपर पटका गया था, फिर भी वह न मरा ॥ ८ ॥ पर्वतके समान वह राक्षस किसी प्रकार नहीं मरता है यह देखकर भयके समय अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, तपस्याके कारण यह राक्षस अस्त्रोंके द्वारा युद्धमें जीता नहीं जा सकता, इस कारण हमलोग इसे गाड़ दें ॥ १० ॥ भयानक हाथीके समान भयदायी इस राक्षसके लिए इस वनमें एक बहुत बड़ा गढ़ा खोदो ॥ ११ ॥ इस प्रकार गढ़ा खोदनेके लिए लक्ष्मणसे कहकर रामचन्द्र विराधका गला पैरसे दबाकर खड़े रहे ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके ये वचन सुनकर विराध पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रसे विनयपूर्वक ऐसा बोला ॥ १३ ॥ पुरुषसिंह, इन्द्रके

हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै । मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥१४॥
कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया । वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः ॥१५॥
अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् । तुम्बुरुर्नामगन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि ॥१६॥
प्रसाद्यमानस्य मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः । यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे ॥१७॥
तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति । अनुपस्थीयमानो मां स क्रुद्धो व्याजहार ह ॥१८॥
इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह । तव प्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् ॥१९॥
भुवनं स्वं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु परंतप । इतो वसति धर्मात्मा शरभङ्गः प्रतापवान् ॥२०॥
अध्यर्धयोजने तात महर्षिः सूर्यसंन्निभः । तं क्षिप्रमभिगच्छ त्वं स ते श्रेयोऽभिधास्यति ॥२१॥
अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज । रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ॥२२॥
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः । एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः ॥२३॥
बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः । तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह ॥२४॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण । वनेऽस्मिन्सुमहाञ्श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः ॥२५॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥२६॥
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् । अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः ॥२७॥

समान पराक्रमवाले, आपने मेरा वध किया, मूर्खतावश पहले मैं आपको न जान सका ॥ १४ ॥ तात, आपसे कौसल्या श्रेष्ठपुत्रकी माता हुई है, मैं जान गया आप रामचन्द्र हैं, ये महाभागा जानकी हैं और ये महायशस्वी लक्ष्मण हैं ॥ १५ ॥ शापके कारण मैंने यह राक्षसी शरीर पाया है। मैं तुम्बरु नामका गन्धर्व हूँ और कुवेरने मुझे शाप दिया है ॥ १६ ॥ जब मैंने उनको प्रसन्न किया तब यशस्वी कुवेरने मुझसे कहा कि जब दशरथपुत्र रामचन्द्र रणमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब तुम अपने पहलेके स्वरूपको पाकर स्वर्गमें आओगे। समयपर उनकी सेवामें उपस्थित न होनेके कारण क्रोध करके उन्होंने मुझसे वैसा कहा था ॥ १८ ॥ रम्भा नामकी अप्सरामें मैं आसक्त था, इस कारण कुवेरने मुझे शाप दिया था। आज आपकी कृपासे मैं उस भयानक शापसे मुक्त हुआ ॥ १९ ॥ अब मैं अपने लोकको जाता हूँ। परन्तप, आपका कल्याण हो। इधर प्रतापी धर्मात्मा शरभङ्ग ऋषि रहते हैं ॥ २० ॥ यहाँसे डेढ़ योजन पर उनका स्थान है, वे सूर्यके समान तेजस्वी हैं, शीघ्रही आप उन महर्षिके पास जाँय, वे आपका कल्याण करेंगे ॥ २१ ॥ गढ़ेमें मेरे शरीरको तोपकर आप कुशलपूर्वक यहाँसे जाएँ, क्योंकि मरनेपर राक्षसोंके लिए यही सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो राक्षस गढ़ेमें गाड़े जाते हैं, उन्हें श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। शरपीड़ित महाबली विराधने रामचन्द्रसे ऐसा कहकर ॥ २३ ॥ राक्षस शरीर छोड़कर स्वर्ग प्राप्त किया। उसके वचन सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ भयानक हाथीके समान भयदायी राक्षसके लिए इस वनमें एक बड़ा गढ़ा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणको गढ़ा खोदनेकी आज्ञा देकर रामचन्द्र विराधका गला पैरसे दबाकर खड़े रहे ॥ २६ ॥ लक्ष्मणने एक खनती लेकर महात्मा विराधके बगलमें ही एक उत्तम गढ़ा

तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शङ्कुकर्णं महास्वनम् । विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम् ॥२८॥
तमाहवे दारुणमाशुविक्रमौ स्थिरावुभौ संयति रामलक्ष्मणौ ।
मुदान्वितौ चिक्षिपतुर्भयावहं नदन्तमुत्क्षिप्य बलेन राक्षसम् ॥ २९ ॥
अवध्यतां प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ बिले विराधस्य वधं प्रचक्रतुः ॥ ३० ॥
स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण यथार्थमीप्सितः ।
निवेदितः काननचारिणा स्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ॥ ३१ ॥
तदेव रामेण निशम्य भाषितं कृता मतिस्तस्य बिलप्रवेशने ।
बिलं च तेनातिबलेन रक्षसा प्रवेश्यमानेन वनं विनादितम् ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम् ।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने शिलाभिरन्तर्दधतुश्च राक्षसम् ॥ ३३ ॥
ततस्तु तौ काञ्चनचित्रकार्मुकौ निहत्य रक्षः परिगृह्य मैथिलीम् ।
विजह्रतुस्तौ मुदितौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

——:०:——

खोदा ॥ २७ ॥ गढ़ेमें गाड़नेके लिए रामचन्द्रने उसका गला छोड़ दिया, शंकुके समान उसके कान कठोर थे, भयानक शब्द करते हुये उस राक्षसको उनलोगोंने गढ़ेमें डाल दिया ॥२८॥ शीघ्रता करनेवाले तथा रणमें स्थिर दोनों राम और लक्ष्मणने प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें भयानक और भयानक शब्द करनेवाले उस राक्षसको उठाकर गढ़ेमें फेंकदिया ॥ २९ ॥ नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणने जब देखा कि यह तीखे बाणोंसे नहीं मरेगा, तब नितान्त निपुण वे दोनों भाइयोंने बड़े प्रयत्नसे गढ़ा खोदकर उसमें उसे डाल दिया ॥ ३० ॥ स्वयं विराध भी काननचारी रामचन्द्रके हाथों अपनी मृत्यु चाहता था, पर उसने रामचन्द्रसे यह यथार्थ बात कहदी थी कि शस्त्रोंके द्वारा मेरी मृत्यु न होगी ॥ ३१ ॥ उसकी यह बात सुनकर ही रामचन्द्रने उसे गढ़ेमें डालनेका विचार निश्चित किया था, रामचन्द्रने बड़ा बल लगाकर उस राक्षसको गढ़ेमें ढकेला, उस समय उसने समस्त वनको गुंजा दिया ॥ ३२ ॥ उस विराधको पृथिवीमें गढ़ेमें डालकर राम और लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए, उन लोगोंका भय जाता रहा। उस गढ़ेको उन लोगोंने पत्थरोंसे पाट दिया ॥ ३३ ॥ वे दोनों सोनेके काम किये हुए धनुष धारण किये राक्षसको मारकर जानकीको लेकर उस महावनमें प्रसन्नतापूर्वक विचरण करने लगे, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य विचरण करते हैं ॥३४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥४॥

पञ्चमः सर्गः ५

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने । ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्॥ १ ॥
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् । कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः ॥ २ ॥
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् । आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥ ३ ॥
तस्य देवप्रभावस्य तपसा भवितात्मनः । समीपे शरभङ्गस्य ददर्श महदद्भुतम् ॥ ४ ॥
विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरप्रभम् । रथप्रवरमारूढमाकाशे विबुधानुगम् ॥ ५ ॥
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम् । संप्रभाभरणं देवं विरजोम्बरधारिणम् ॥ ६ ॥
तद्विधैरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः । हरितैर्वाजिभिर्युक्तमन्तरिक्षगतं रथम् ॥ ७ ॥
ददर्शादूरतस्तस्य तरुणादित्यसंनिभम् । पाण्डुराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम् ॥ ८ ॥
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम् । चामरव्यजने चाग्र्ये रुक्मदण्डे महाधने ॥ ९ ॥
गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि । गन्धर्वामरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः ॥ १० ॥
अन्तरिक्षगतं देवं गीर्भिरग्र्याभिरैडयन् । सह संभाषमाणे तु शरभङ्गेन वासवे ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । रामोऽथ रथमुद्दिश्य भ्रातुर्दर्शयताद्भुतम्॥ १२ ॥
अर्चिष्मन्तं श्रिया जुष्टमद्भुतं पश्य लक्ष्मण । प्रतपन्तमिवादित्यमन्तरिक्षगतं रथम् ॥ १३ ॥

महाबली विराध राक्षसको वनमें मारकर पराक्रमी रामचन्द्रने सीताका आलिङ्गन किया और विराधके भयसे भयभीत सीताका भय दूर किया ॥ १ ॥ रामचन्द्र तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे बोले—यह वन बड़ा दुखदायी और भयानक है, चलने योग्य नहीं है, हम लोगोंने इसके पहले ऐसा वन देखाभी नहीं है ॥ २ ॥ अब हमलोग यहांसे शीघ्र तपस्वी शरभंगके यहां चले। अनन्तर रामचन्द्र शरभंगके आश्रममें गये ॥ ३ ॥ देवताके समान प्रभाववाले तथा तपस्याके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार-प्राप्त शरभंगके यहां रामचन्द्रने अद्भुत वृतान्त देखा ॥ ४ ॥ शरीरकी कान्तिसे आकाशमें शोभित हो रहे हैं, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं, देवगण उनके अनुयायी हैं, ऐसे देवराज श्रेष्ठ रथपर बैठे हैं, वह रथ पृथिवीको नहीं छूता, उनके गहने बड़ेही दीप्तमान् हैं और कभी मैले न होनेवाले वस्त्र उन्होंने धारण किये हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ और उन्हींके समान महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं। उनके रथमें हरे घोड़े जुते हुए थे, वह पृथिवीसे ऊपर आकाशमें ही था, वह चन्द्रमाके समान गोला था, श्वेतमेघके समान उसका रंग था और प्रौढ़ सूर्यके समान दीप्तमान था। रामचन्द्रने अपनेसे थोड़ी दूरपर ऐसा रथ देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्होंने श्वेतछत्र देखा, जिसमें सोनेके फूल और मालाएँ बनी हुई थीं, दामी सोनेके दण्डेवाले श्रेष्ठ चामर और पंखे दो देवाङ्गनाएँ लिये हुई हैं और इन्द्रपर ढुरा रही हैं। इन्द्र शरभंगके साथ बातें कर रहे हैं और गन्धर्व, देवता, सिद्ध तथा अनेक ऋषि आकाशमें स्थित उन इन्द्रकी श्रेष्ठ वाणियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ वहां शरभंगके आश्रममें इन्द्रको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा और रथको लक्ष्यकरके उसकी विचित्रता उन्होंने लक्ष्मणको दिखायी ॥ १२ ॥ लक्ष्मण, इस रथको देखो, कितना चमकीला है, कितना सुन्दर है, यह रथ आकाशमें सूर्यके समान

ये हयाः पुरुहूतस्य पुरा शक्रस्य नः श्रुताः । अन्तरिक्षगता दिव्यास्त इमे हरयो ध्रुवम् ॥१४॥
इमे च पुरुषव्याघ्र ये तिष्ठन्त्यभितो दिशम् । शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः ॥१५॥
विस्तीर्णविपुलोरस्काः परिघायतबाहवः । शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥१६॥
उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः । रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम् ॥१७॥
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा । यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः ॥१८॥
इहैव सह वैदेह्या मुहूर्तं तिष्ठ लक्ष्मण । यावज्जानाम्यहं व्यक्तं क एष द्युतिमान्रथे ॥१९॥
तमेवमुक्त्वा सौमित्रिमिहैव स्थीयतामिति । अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥२०॥
ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः । शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत् ॥२१॥
इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते । निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति ॥२२॥
जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम् । कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥२३॥
अथ वज्री तमामन्त्र्य मानयित्वा च तापसम् । रथेन हययुक्तेन ययौ दिवमरिंदमः ॥२४॥
प्रयाते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः । अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ॥२५॥
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः । निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥२६॥
ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत राघवः । शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् ॥२७॥

तप रहा है ॥ १३ ॥ पुरुहूत (अनेक यज्ञ करनेवाले) इन्द्रके जिन घोड़ोंकी बात हमलोगोंने सुनी है, वे येही दिव्य घोड़े आकाशमें खड़े हैं ॥ १४ ॥ ये कुण्डल धारण किये हुए, हाथमें तलवार लिये सैकड़ों युवा महापुरुष रथके चारो ओर खड़े हैं। जिनकी छाती और कन्धे चौड़े हैं, परिघके समान लम्बी भुजाएँ हैं, लाल रंगके वस्त्र पहने हुए हैं तथा बाघके समान जिनके समीप जानेमें भय मालूम होता है। सभीके वक्षस्थलपर अग्निके समान चमकीला हार पड़ा हुआ है और जिनकी अवस्था पचीस वर्षकी है ये सब देवता हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ देवताओंकी सदा यही अवस्था रहती है। ये वस्त्राभरणके द्वारा बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं, अतएव ये देवता हैं ॥ १८ ॥ लक्ष्मण, सीताके साथ तुम थोड़ी देर यहीं ठहरो, तबतक मैं यह ठीक-ठीक जानलूँ कि इस रथपर यह तेजस्वी कौन है ॥ १९ ॥ लक्ष्मणको वहीं ठहरनेके लिए कहकर रामचन्द्र शरभङ्गके आश्रमकी ओर चले ॥ २० ॥ रामचन्द्रको आते देखकर इन्द्रने शरभङ्गको जानेकी आज्ञा दी और वे देवताओंसे यह बोले ॥ २१ ॥ रामचन्द्र यहाँ आरहे हैं, वे जबतक मुझसे न बोलें तभी तक तुम लोग मुझे यहाँ से दूसरी जगह ले चलो, जिससे वे मुझे देख न सकें ॥ २२ ॥ रामको, दूसरे नहीं कर सकते ऐसा, बहुत बड़ा काम इनको करना है, जब ये विपत्तियोंके पार हो जायँगे, रावणको जीत लेंगे उस समय मैं इनको देखूँगा ॥ २३ ॥ अनन्तर इन्द्रने तपस्वी शरभङ्गको बुलाकर उनका अभिनन्दन किया और वे घोड़ेके रथपर चढ़कर स्वर्ग चले गये ॥ २४ ॥ इन्द्रके चले जानेपर रामचन्द्र अपने साथियोंके साथ अग्निहोत्री शरभङ्गके पास आये ॥ २५ ॥ रामलक्ष्मण और सीताने मुनिकी चरणवन्दना की, मुनिकी आज्ञासे वे बैठे, मुनिने उनको रहनेका स्थान दिया और भोजनके लिए उन लोगोंको निमन्त्रित किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर रामने मुनिसे इन्द्रके आनेका कारण

मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति । जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥२८॥
अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः । ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥२९
त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना । समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ॥३०॥
अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः । ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥
एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः । ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥
अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान्महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥३३॥
राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै । शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥३४॥
इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः । वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति॥३५॥
इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज । नदीं पुष्पोडुपवहां ततस्तत्र गमिष्यसि ॥३६॥
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् । यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥
ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत् । शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥३८॥
तस्य रोमाणि केशांश्च तदा वह्निर्महात्मनः । जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम्॥
स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत । उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगो व्यरोचत ॥४०॥
स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां च महात्मनाम् । देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ॥४१॥

पूछा और मुनिने वह सब बतलाया ॥ २७ ॥ राम, वर देनेवाले ये इन्द्र मुझे ब्रह्मलोकमें ले जाना चाहते हैं, क्योंकि मैंने अपनी उग्र तपस्यासे उसे प्राप्त किया है, जो जितेन्द्रिय नहीं हैं, उनके लिये वह दुष्प्राप्य है ॥ २८ ॥ हे नरश्रेष्ठ, जब मुझे मालूम हुआ कि तुम मेरे प्रिय अतिथि यहांसे थोड़ीही दूरपर हो तब मैंने निश्चय किया कि तुमको विना देखे मैं न जाऊँगा ॥ २९ ॥ धार्मिक और महात्मा तुमसे मिलकर ही देवताओंके सेवित ब्रह्मलोकमें जाऊँगा ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ, अक्षय ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक मैंने जीत लिया है अर्थात् उनमें जानेका अधिकार पा लिया है । ये शुभलोक मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ, तुम इन्हें ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ सर्वशास्त्रविशारद रामचन्द्र ऋषि शरभङ्गके ऐसा कहनेपर बोले ॥ ३२ ॥ महामुनि, मैंही आपको ये सब लोक देता हूँ अर्थात् जो लोक आपने मुझे दिये हैं वे आपको पुनः प्रत्यर्पित करता हूँ । मैं तो आपके बतलाये स्थानमें इस वनमें रहना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥ इन्द्रके समान बली रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाप्राज्ञ शरभङ्गमुनि पुनः बोले ॥ ३४ ॥ राम, इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक महातेजस्वी ब्रह्मचारी धार्मिक रहते हैं, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे अर्थात् तुम्हारे रहने आदिका प्रबन्ध कर देंगे ॥ ३५ ॥ तुम इस पश्चिमकी ओर बहनेवाली और क्षीणधारा मन्दाकिनी नदीके तीरसे जाओ, तब वहाँ पहुँचोगे ॥ ३६ ॥ तात, यही वहाँका मार्ग है, पर थोड़ी देर तक मुझे देख लो, जबतक मैं शरीरत्याग करता हूँ, जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी चाम छोड़ देता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शरभङ्गने अग्निकी स्थापना की, उसमें मन्त्रपूर्वक घृताहुति दी, पुनः महातेजस्वी शरभङ्गने उस अग्निमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ महात्मा शरभङ्गके रोम, केश, पुरानी चाम, हड्डी, मांस और शोणित जो कुछ था उसे जला दिया ॥ ३९ ॥ उस अग्निराशिसे निकलकर शरभङ्ग अग्निके समान तेजस्वी कुमार हो गये और वे शोभित होने लगे ॥ ४० ॥ वे अग्नि-

स पुण्यकर्मा भुवने द्विजर्षभः पितामहं सानुचरं ददर्श ह ।
पितामहश्चापि समीक्ष्य तं द्विजं ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

——:o:——

षष्ठः सर्गः ६

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः । अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥
वैखानसा वालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः । अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ॥ २ ॥
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे । गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे । आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४ ॥
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः । सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्विताः ॥ ५ ॥
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः । शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥ ६ ॥

होत्रियों, महात्मा ऋषियों तथा देवताओंके लोकको अतिक्रमण करके ब्रह्मलोकमें गये ॥ ४१ ॥ उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणश्रेष्ठने ब्रह्मलोकमें अपने पार्षदोंके साथ ब्रह्माको देखा । उन ब्राह्मणको देखकर ब्रह्मा भी प्रसन्न हुए और उन्होंने उनका स्वागत किया ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पाँचवां सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

——:o:——

शरभंग मुनिके स्वर्ग चले जानेपर दण्डकारण्यवासी मुनियोंका समूह एकत्र होकर अति तेजस्वी काकुत्स्थ रामचन्द्रके समीप आया ॥ १ ॥ वैखानस, वालखिल्य (सदा बाल्यावस्थामें रहनेवाले), संप्रक्षाल (सदा स्नान करनेवाले), मरीचिप (चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें पीनेवाले), अश्मकुट्ट (पत्थरसे अपने शरीर कूटनेवाले), पत्राहार (पत्ते खाकर जीनेवाले), तपस्वी, दन्तोलूखली (केवल दांतहीसे ऊखलका कामलेनेवाले), उन्मज्जक (गलेभर जलमें रहकर तपस्या करनेवाले), गात्रशय्य (बैठेहीबैठे सोनेवाले), अशय्य (सदा खड़े रहनेवाले), अभ्रावकाशक (सदा आकाशके नीचे रहनेवाले), सलिलाहार (जलपीकर रहनेवाले), वायुभक्ष (हवा पीकर रहनेवाले), आकाशनिलय (पेड़ आदिके ऊपर रहनेवाले), स्थण्डिलशायी (चैातरेपर सोनेवाले), ऊर्ध्ववासी (पर्वत शिखरपर रहनेवाले), दान्त (मनको अधीन रखनेवाले), आर्द्रपटवासी (सदा भीगे वस्त्र पहननेवाले), सजय (सदा जय करनेवाले), तपोनिष्ठ (सदा वेदपाठ करनेवाले) और पञ्चाग्नि तप करनेवाले सभी शरभंगके आश्रममें रामचन्द्रके पास गये, ये सभी ब्राह्मी शोभासे युक्त थे, और उनका मन योगसे एकाग्र था ॥ २-३-४-५-६ ॥ आयाहुआ वह धर्मज्ञ

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम्। ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसंघाः समागताः ॥ ७ ॥
त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः। प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥ ८ ॥
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च। पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥ ९ ॥
त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम्। अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥१०॥
अधर्मः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः। यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥११॥
युञ्जानः स्वानिव प्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव। नित्ययुक्तः सदा रक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥१२॥
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम्। ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥१३॥
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः। तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥१४॥
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्। त्वं नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥१५॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्। हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥१६॥
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि। चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१७॥
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्। क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥१८॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः। परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥१९॥

ऋषिसमूह धार्मिकश्रेष्ठ और परम धर्मज्ञ रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ ७ ॥ आप इक्ष्वाकुकुल तथा इस पृथिवीके प्रधान और स्वामी हैं, जिस प्रकार इन्द्र देवताओंका स्वामी है ॥ ८ ॥ यश और पराक्रमसे आप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। आपमें पिताकी आज्ञाका पालन करना और धर्म दोनों वर्तमान हैं और यथेष्ट धर्मभी आपमें वर्तमान हैं ॥ ९ ॥ धर्मप्रेमी धर्मज्ञ आप महात्माको पाकर हमलोग अर्थी होकर कुछ कहना चाहते हैं, आप हमलोगोंके इस अपराधको क्षमा करेंगे॥१०॥ नाथ, उस राजाको बड़ाभारी अधर्म होता है जो अपना कर तो लेले, पर प्रजाका पालन पुत्रके समान न करे ॥ ११ ॥ जो राजा प्रजाकी रक्षाके लिए सदा प्रयत्न करता है और अपने समस्त देशवासियोंको अपने प्राणोंके समान तथा प्राणोंसेभी बढ़कर पुत्रके समान सदा सावधान होकर रक्षा करता है ॥ १२ ॥ वह राजा इस लोकमें बहुत काल तक स्थायी कीर्ति पाता है तथा अन्तमें ब्रह्मलोक पाता है तथा वह ब्रह्माके साथ पूजित होता है ॥ १३ ॥ मुनि फलमूल खाकर जो धर्माचरण करता है, धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करने वाले राजाको उसका चौथा भाग मिलता है ॥१४॥ राम, यह वानप्रस्थों का गण, जिसमें ब्राह्मणोंकीही संख्या अधिक है और जिसके आप स्वामी हैं, राक्षसोंके द्वारा बहुत अधिक मरा जाता है ॥ १५ ॥ रामचन्द्र आइए, यह अनेक ब्रह्मज्ञानियोंके शरीर देखिये जो क्रूर राक्षसोंके द्वारा अनेक प्रकारसे मारे गये हैं ॥ १६ ॥ पम्पाके पास रहनेवाले मन्दाकिनीके पास रहनेवाले तथा चित्रकूटपर रहनेवाले मुनियोंका बहुत विनाश होता है ॥ १७ ॥ क्रूरकर्मा रक्षसोंके द्वारा इस प्रकार मुनियोंका विनाश होना हमलोग अब सह नहीं सकते ॥ १८ ॥ इसी कारण शरणमें आए दुखोंकी रक्षा करनेवाले आपकी शरण हम लोग आये हैं। हमलोग निशाचरोंसे मारे जारहे हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ १९ ॥ आपसे बढ़कर इस पृथिवीमें दूसरा रक्षक हमलोगोंको दिखायी नहीं पड़ता, अतएव हे राजकुमार, इन राक्षसोंसे

परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते । परिपालय नः सर्वान्राक्षसेभ्यो नृपात्मज ॥२०॥
एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् । इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥२१॥
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् । केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया ॥२२॥
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् । पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ॥२३॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया । तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः॥२४॥
तपस्विनां रणे शत्रून्हन्तुमिच्छामि राक्षसान् । पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ॥२५॥

दत्त्वा वरं चापि तपोधनानां धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन ।
तपोधनैश्चापि सहार्यदत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

——:o:——

सप्तमः सर्गः ७

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः । सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजः ॥ १ ॥
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः । ददर्श विमलं शैलं महामेरुमिवोन्नतम् ॥ २ ॥

आप हमलोगों की रक्षा करें ॥ २० ॥ तपस्वी ऋषियोंकी यह बात सुनकर धर्मात्मा रामचन्द्र उन समस्त तपस्वियोंसे इस प्रकार बोले ॥ २१ ॥ आप सब ऋषियोंको अपने कार्यके लिये मुझे आज्ञा देनी चाहिये थी, क्योंकि मैं आपलोगोंका आज्ञापालक हूँ, आपलोगोंको इस प्रकार मुझसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिए । राक्षसलोग जो मुनियोंको दुःख दे रहे हैं, उनका बध कर रहे हैं, वही दूर करनेके लिये मैं पिताकी आज्ञासे वनमें आयाहूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ आप लोगोंकी अर्थ-सिद्धिके लिए मैं यहां आपलोगोंके पासभी आगया, अब इस वनमें मेरे रहनेसे बड़े लाभ होंगे ॥ २४ ॥ मैं तपस्वियोंके शत्रु राक्षसोंको युद्धमें मारना चाहताहूँ, तपस्वीलोग मेरा और मेरे भाईका पराक्रम देखें ॥ २५ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र तपस्वियोंको इस प्रकार वर देकर लक्ष्मण और तपस्वियोंके साथ गोदान करनेवाले वीर रामचन्द्र सुतीक्ष्णके पास गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छठाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

——:o:——

परन्तप रामचन्द्र, भाई लक्ष्मण, सीता और उन ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णके आश्रममें गए ॥१॥ बहुत दूर जाकर तथा बहुत जलवाली नदी पारकर रामचन्द्रने एक सुन्दर पर्वत देखा, जो मेरुके समान ऊँचा था ॥ २ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण सीताके साथ उस वनमें गए । उसमें अनेक

ततस्तदिक्ष्वाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः । काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ॥ ३ ॥
प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् । ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥ ४ ॥
तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् । रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ५ ॥
रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः । तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥ ६ ॥
स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् । समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर । आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव सांप्रतम् ॥८॥
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः । देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ९ ॥
चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः । इहोपयातः काकुत्स्थ देवराजः शतक्रतुः ॥१०॥
उपागम्य च मे देवो महादेवः सुरेश्वरः । सर्वाँल्लोकाञ्जितानाह मम पुण्येन कर्मणा ॥११॥
तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया । मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः ॥१२॥
तमुग्रतपसं दीप्तं महर्षिं सत्यवादिनम् । प्रत्युवाचात्मवान्रामो ब्रह्माणमिव वासवः ॥१३॥
अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान्महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥१४॥
भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः । आख्यातं शरभंगेन गौतमेन महात्मना ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिर्लोकविश्रुतः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः ॥१६॥

प्रकारके वृक्ष थे ॥३॥ रामचन्द्र उस वनमें गये, उसमें फूलवाले अनेक वृक्ष थे, उस वनमें रामचन्द्रने एकान्तमें एक आश्रम देखा, जिसमें कपड़ेके टुकड़े फैले हुए थे ॥ ४ ॥ उस आश्रममें अपने पापोंको दूर करनेके लिये पङ्कजासनपर बैठे हुए तपस्वी सुतीक्ष्णके पास जाकर रामचन्द्र विधिवत् उनसे बोले ॥ ५ ॥ भगवन्, मैं रामचन्द्र हूँ, आपको देखनेकेलिये आया हूँ, आप मुझसे बोलिए, महर्षे, आप धर्मज्ञ हैं और आपकी तपस्याका प्रभाव अमोघ है ॥ ६ ॥ धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्रको देखकर धीर सुतीक्ष्णने उनका अपनी बाहुओंसे आलिङ्गन किया और वे उनसे ऐसा बोले ॥ ७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ और सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र, आपका स्वागत है, आप इस आश्रममें आये इससे यह इस समय सनाथ हो गया ॥ ८ ॥ महायशस्वी, आपके आगमनकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं भूतलमें शरीर छोड़कर अभीतक ब्रह्मलोकमें नहीं गया हूँ ॥ ९ ॥ राजभ्रष्ट होकर जब आप चित्रकूट आये, तभी मैंने आपका आना सुना था। हे काकुत्स्थ, देवराज इन्द्र यहाँ मेरे आश्रममें आये थे ॥ १० ॥ महादेव देवराजने आकर हमसे कहा है कि मैं अपने पुण्यकर्मों से सब लोकोंका अधिकारी हो गया हूँ ॥ ११ ॥ तपस्यासे मैंने जिन लोकोंको जीता है तथा जिन लोकोंमें देवता और ऋषि रहते हैं, रामचन्द्र, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपसे कहता हूँ कि आप उन लोकोंमें सीता और लक्ष्मणके साथ विहार करें ॥ १२ ॥ उन उग्रतपस्वी सत्यवादी दीप्तिमान् महर्षिसे रामचन्द्र बोले, जिस प्रकार ब्रह्मा इन्द्रसे बोलते हैं ॥ १३ ॥ मुने, मैंही आपको वे लोक देता हूँ, जो आपने मुझे दिये हैं अर्थात् आपके पुण्यार्जित लोकोंको मैं नहीं चाहता, मैं तो आपकी आज्ञासे इस वनमें निवास करना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ महात्मा गौतम शरभङ्गने मुझसे कहा है कि आप सब प्राणियोंके कल्याण करनेवाले हैं और सब विषयोंमें निपुण हैं ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लोकप्रसिद्ध

अयमेवाश्रमो राम गुणवान्रम्यतामिति । ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः ॥१७॥
इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महीयसः । अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वा कुतोभयाः १८
नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥१९॥
उवाच वचनं धीरो विगृह्य सशरं धनुः । तानहं सुमहाभाग मृगसङ्घान्समागतान् ॥२०॥
हन्यां निशितधारेण शरेणानतपर्वणा । भवांस्तत्राभिषज्येत किं स्यात्कृच्छ्रतरं ततः ॥२१॥
एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये । तमेवमुक्त्वोपरतं रामः संध्यामुपागमत् ॥२२॥
अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् । सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥२३॥

ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम् ।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा संध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

——:o:——

अष्टमः सर्गः ८

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः । परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया । उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥ २ ॥

महर्षि बड़े हर्षसे यह मधुर वचन रामचन्द्रसे बोले ॥ १६ ॥ रामचद्र, आप इसी आश्रममें निवास करें, क्योंकि यहाँ सब प्रकारकी सुविधा है, यहाँ आसपास अनेक ऋषियोंका निवास है और यहाँ सदा मूल फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ बड़े-बड़े और किसीसे न डरनेवाले मृगा इस आश्रममें आते हैं, वे किसीको मारते नहीं, केवल ऋषियोंको लोभित करके चले जाते हैं ॥ १८ ॥ मृगोंके उपद्रवको छोड़कर और कोई उपद्रव इस आश्रम में नहीं है। उन महर्षिके ये वचन सुनकर लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्र उनसे बोले ॥ १९ ॥ अपना धनुषबाण उठाकर रामचन्द्रने कहा, महाभाग, उन आये हुये मृगोंको मैं अपने तीखे बाणोंसे मारूँगा। पर उन आश्रममृगोंको मारना आपकेलिये बड़े कष्टकी बात होगी, और उससे बढ़कर हमारे लिये और कष्ट क्या होगा? ॥२०॥२१॥ अतएव इस आश्रममें सदा रहना मुझे पसन्द नहीं। मुनिसे ऐसा कहकर रामचन्द्र चुप हुए और सन्ध्या करने चले गये ॥ २२ ॥ सायङ्कालकी सन्ध्या करके रामचन्द्रने सुतीक्ष्णके उस रमणीय आश्रममें सीता और लक्ष्मणके साथ निवास किया ॥ २३ ॥ सन्ध्या बीत गयी, रात हुई, यह जानकर सुतीक्ष्णने तपस्वियोंके खानेयोग्य अन्न उन पुरुषश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणको सत्कारपूर्वक दिया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

——:o:——

सुतीक्ष्णके द्वारा सत्कृत होकर राम और लक्ष्मणने वह रात वहीं बितायी और प्रातःकाल वे उठे ॥ १ ॥ प्रातःकाल सीताके साथ उठकर रामचन्द्रने कमलगन्धवाले ठंढे जलसे स्नान

अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ । काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥ ३ ॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः । सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥ ४ ॥
सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः । आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥५॥
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् । ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ६
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः । धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः ॥ ७ ॥
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते । अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुने । ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥ ९ ॥
तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः । गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह । सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥११॥
पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् । एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१२॥
सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च । प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१३॥
फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च । कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१४॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च । रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥१५॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु । आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥१६॥

किया ॥ २ ॥ राम, लक्ष्मण और सीताने विधिपूर्वक वहां तपस्वीके आश्रममें अग्नि और देवताओंकी पूजा की ॥ ३ ॥ उदय होते हुए सूर्यको देखकर वे पापरहित हुए, पुनः सुतीक्ष्णके पास जाकर उनसे ऐसा मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥ भगवन्, पूजनीय आपके द्वारा सत्कृत होकर हमलोगोंने सुखपूर्वक निवास किया, अब आपकी आज्ञा चाहते हैं, हमलोग जाना चाहते हैं, मुनिगण शीघ्रता करनेके लिये कह गये हैं ॥ ५ ॥ दण्यकारण्यमें रहनेवाले समस्त पुण्यात्मा ऋषियोंके आश्रम देखनेके लिये हम लोगभी शीघ्रता करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ नित्य धर्माचरण करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा ज्वालाहीन अग्निके समान इन मुनियोंके साथ हमलोग आज्ञा चाहते हैं ॥ ७ ॥ अन्यायसे अर्जित लक्ष्मी पाकर दुष्कुलीन मनुष्यके समान जबतक सूर्यका तेज असहनीय न होजाय ॥ ८ ॥ तभी तक मैं यहांसे चला जाना चाहता हूँ, ऐसा कहकर रामचन्द्रने लक्ष्मण और सीताके साथ मुनिकी चरणवन्दना की ॥ ९ ॥ चरण स्पर्श करते हुए उनको मुनिने उठाया और उनका गाढ आलिङ्गन करके वे उनसे स्नेहपूर्वक बोले ॥ १० ॥ छायाके समान तुम्हारा अनुवर्तन करनेवाली इस सीताके साथ तथा लक्ष्मणके साथ तुम निर्विघ्नतापूर्वक जाओ ॥ ११ ॥ दण्यकारण्यमें रहनेवाले उन तपस्वियोंको जिन्होंने तपस्याके द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है तथा उनके रमणीय आश्रम देखनेके लिये तुम जाओ ॥ १२ ॥ प्रचुर फलमूलवाले और पुष्पित वनको तुम देखोगे, जिन वनोंमें निर्दोष मृगसमूह है, जहांके पक्षी शान्त हैं ॥ १३ ॥ जिनमें कमलवन खिला है, जिनके जल सुन्दर है, जिनमें जलमुर्गे फैले हुए हैं ऐसे तालाव तुम देखोगे ॥ १४ ॥ आंखोंको सुन्दर मालुम होनेवाले पर्वतोंके झरने तुम देखोगे और रमणीय वनप्रदेश देखोगे, जहां मयूर बोलते होंगे ॥ १५ ॥ जाओ, वत्स लक्ष्मण, तुमभी जाओ और उन आश्रमोंको देखकर तुम पुनः इसी आश्रममें चले आओ ॥१६॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१७॥
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा । ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥१८॥
आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने । निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
शीघ्रं तौ रूपसंपन्नावनुज्ञातौ महर्षिणा । प्रस्थितौ धृतचापासी सीतया सह राघवौ ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

——:o:——

नवमः सर्गः ९

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् । हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिनाप्राप्यते महान् । निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत । मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता । मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥ ४ ॥
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् । तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥ ५ ॥
मनस्यपि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित् । स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ॥ ६ ॥

महर्षिकी बातें स्वीकार करके रामचन्द्र और लक्ष्मणने मुनिकी प्रदक्षिणा की तथा वहांसे चलनेके लिए तयार हुए ॥ १७ ॥ तब विशालाक्षी सीताने सुन्दर दो तूणीर (बाणरखनेके तरकस) दो धनुष तथा चमकीली दो तलवार उन दोनों भाइयोंको दी ॥ १८ ॥ तूणीर बांधकर तथा टंकार करनेवाले धनुष लेकर वे दोनो भाई राम और लक्ष्मण जानेके लिये आश्रमसे निकले ॥ १९ ॥ सुन्दर राम और लक्ष्मण महर्षिकी आज्ञा पाकर धनुष और तलवार लेकर सीताके साथ चले ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका आठवां सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

——:o:——

सुतीक्ष्णकी आज्ञा लेकर वन जाते हुए अपने पति रामचन्द्रसे सीता मनोहर और मधुर वाणीसे बोलीं ॥ १ ॥ आप महापुरुष हैं, पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर अवश्यही आप अधर्म-भागी होंगे (इस लिएकि आपने मृगोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की है), पर इस इच्छापूर्वक किये जानेवाले पापसे निवृत्त होकरही आप अधर्मसे बच सकते हैं ॥ २ ॥ इच्छासे उत्पन्न होनेवाले तीनही पाप मनुष्यको होते हैं, मिथ्यावचन पहलाहै, यह सब पापोंसे बड़ाहै, परन्तु दोनों (जो आगे कहे जांयगे) इससेभी बड़े हैं ॥ ३ ॥ परस्त्रीसंसर्ग और बिना विरोधके क्रूरकर्म करना। रामचन्द्र, आपके वचन न तो कभी झूठे हुए हैं और न होंगे ॥ ४ ॥ धर्मनाशक परस्त्री-संसर्गकी तो आपने अभिलाषा भी नहीं की, हे मनुष्यश्रेष्ठ, यह भाव तुममें इस समय नहीं है और पहले भी कभी न था ॥ ५ ॥ आपके मनमेंही यह भाव नहीं है, आप स्वयम् निरत हैं, केवल अपनी स्त्रीसे

धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः। त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥७॥
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं वोढुं जितेन्द्रियैः। तव वश्येन्द्रियत्वं च भूतानां शुभदर्शन ॥ ८ ॥
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम्। निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥ ९ ॥
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्। ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥१०॥
एतन्निमित्तं वचनं दण्डका इति विश्रुतम्। प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥११॥
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः। त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम्॥१२॥
नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति। कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम ॥१३॥
त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः। दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम्॥१४॥
क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च। समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम्॥१५॥
पुरा किल महाबाहो तपस्वी सत्यवाञ्छुचिः। कस्मिंश्चिदभवत्पुण्ये वने रतमृगद्विजे ॥१६॥
तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुमिन्द्रः शचीपतिः। खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमं भटरूपधृक् ॥१७॥
तस्मिंस्तदाश्रमपदे निहितः खड्ग उत्तमः। स न्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः॥१८॥
स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः। वने तु विचरत्येव रक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥

सन्तुष्ट हैं ॥ ६ ॥ आप धर्मनिष्ठ सत्यप्रतिज्ञ और पिताके आज्ञा पालन करनेवाले हैं, इस कारण सर्वाङ्गपूर्ण धर्म और सत्य आपमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ महाबली, जितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा धारण किये जानेवाले वे दोनों गुण आपमें हैं, आप जितेन्द्रियभी हैं; क्योंकि आप प्राणियोंको प्रिय हैं, लोग आपको देखकर प्रसन्न होते हैं इसीसे आपकी जितेन्द्रियता प्रमाणित होती है ॥ ८ ॥ तीसरा पाप जिससे लोग विना अपराध के दूसरों की हिंसारूप क्रूर कर्म करते हैं, वह मोह अज्ञानसे करते हैं, प्रसङ्गसे वह आपको प्राप्त हुआ है, आपभी निरपराधोंकी हिंसा करना चाहते हैं ॥ ९ ॥ आपने दण्डकारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें राक्षसोंके वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १० ॥ दण्डक इस नामसे प्रसिद्ध वनमें भाईके साथ धनुष बाण लेकर आप जा रहे हैं, इसी कारण मैंने आपसे ऐसा कहा ॥ ११ ॥ आपके चरित्रसे मैं परिचित हूँ, आप सत्यप्रतिज्ञ हैं जो राक्षसोंके मारनेकी आपने प्रतिज्ञा की है, वह आप अवश्य पूरी करेंगे, आप वनमें जारहे हैं यह देखकर तथा आपके लौकिक और पारलौकिक कल्याणकी बात सोचकर मेरा मन व्याकुल होरहा है ॥ १२ ॥ वीर, दण्डकवनमें जाना मुझे अच्छा नहीं लगता, उसका कारण मैं कहती हूँ, आप मुझसे सुनें ॥१३॥ धनुष बाण लेकर आप भाईके साथ वनमें जा रहे हैं, वहां सब वनचरोंको देखकर अवश्यही किसीपर बाण छोड़ेंगे ॥ १४ ॥ क्योंकि जिसप्रकार आगके पास लकड़ी रहनेसे उसका बल बढ़ता है, उसी प्रकार क्षत्रियके समीपमें स्थित धनुष उसके तेज और बलको बढ़ाता है ॥ १५ ॥ सुनिये, पहले किसी पवित्र वनमें जहांके पशुपक्षी शान्त थे, वहां एक सत्यवान् नामके पवित्र तपस्वी तपस्या करतेथे ॥ १६ ॥ उनकी तपस्यामें विघ्न करनेके लिये सिपाहीका रूप धरकर इन्द्र तलवार लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ इन्द्र वह उत्तम तलवार उस आश्रममें पवित्र तपस्या करने वाले मुनिके यहां थाती रखगये ॥१८॥ वे सत्यवान् उस तलवारको पाकर उस न्यासकी तत्परतासे

यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि फलानि च । न विना याति तं खड्गं न्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥
नित्यं शस्त्रं परिवहन्क्रमेण स तपोधनः । चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् ॥
ततः स रौद्राभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्षितः । तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः ॥२२॥
एवमेतत्पुरावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम् । अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते ॥२३॥
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये । न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥२४॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥२५॥
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् । धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥२६॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च । व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥२७॥
कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् । पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षात्रधर्मं चरिष्यसि ॥२८॥
अक्षया तु भवेत्प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम । यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः २९॥
धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् । धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥३०॥
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः । प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ॥३१॥

रक्षा करने लगे, अपने विश्वासकी रक्षा करनेके लिए तलवार लेकर वनमें भ्रमणभी करने लगे ॥ १९ ॥ मूलफल लेने जहां वे जाते थे, वहीं तलवार लेकर जातेथे, थातीकी रक्षा करनेके लिये विना तलवारके कहींभी नहीं जातेथे ॥ २० ॥ इस प्रकार प्रतिदिन शस्त्र लेकर भ्रमण करनेके कारण उन तपस्वीने अपनी बुद्धिको क्रूर बना लिया और तपस्याकी ओरका उनका प्रेम शिथिल हुआ ॥ २१ ॥ इस प्रकार धीरे-धीरे वे मुनि क्रूर धर्मकी ओर अग्रसर होगये, उनका कर्तव्यज्ञान जाता रहा, उनका धर्म नष्ट होगया, उस शस्त्रके साथ रहनेके कारण मुनि नरकमें गये ॥ २२ ॥ शस्त्रके कारण ऐसी घटना पहले हुईथी, अग्निके संयोगसे जिस प्रकार लकड़ीका नाश होता है, उसी प्रकार शस्त्रोंके संयोगसे मनुष्योंका नाश होता है ॥ २३ ॥ आप पर जो मेरा आदर है तथा आपका जो मेरे प्रति स्नेह है उससे मैं आपको स्मरण कराती हूँ, आपको शिक्षा नहीं देती हूँ, धनुष लेकर अनपराधी प्राणियोंकी हिंसा आप न कीजियेगा ॥ २४ ॥ विना अपराधके दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंको मारनेकी आप इच्छा न कीजिएगा, क्योंकि वीर, विना अपराधके जोलोग मारते हैं उनकी प्रशंसा नहीं होती ॥ २५ ॥ नियतात्मा वीर क्षत्रियोंका तो वनमें यही प्रयोजन है कि वे पीडितोंकी रक्षा करें ॥ २६ ॥ शस्त्र और वन, क्षत्रियधर्म और तपस्या ये परस्पर विरुद्ध हैं अतएव हमलोगोंको इनका आदर नहीं करना चाहिये ; किन्तु देशधर्म तपोवन धर्मका आदर करना चाहिए ॥ २७ ॥ शस्त्र धारण करनेसे बुद्धि कलुषित होजाती है, उसका विवेक नष्ट होजाता है, अतएव अयोध्यामें चलकर आप क्षत्रियधर्मका अनुष्ठान कीजियेगा ॥ २७ ॥ राज्य त्याग करके वनमें आकर यदि आप मुनिवृत्तिका धारण करें तो इससे हमारे श्वशुर और सासको अक्षय प्रसन्नता होगी ॥ २८ ॥ धर्मसे अर्थ होता है और सुख होता है, धर्महीसे सब मिलता है, धर्मही इस जगतका प्राण है ॥ ३० ॥ भिन्न-भिन्न नियमोंके पालनसे निपुण मनुष्य धर्मलाभ करते हैं, सुखसे सुख नहीं मिलता ॥ ३१ ॥ अतएव हे सौम्य, शुद्ध बुद्धि होकर इस

नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने । सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥३२॥
स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

——:o:——

दशमः सर्गः १०

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया । श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् ॥१॥
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः । कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥२॥
किं तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः । क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥३॥
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः । मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः ॥४॥
वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः । न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥५॥
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः । ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः ॥६॥
अस्मानभ्यवपद्येते मामूचुर्द्विजसत्तमाः । मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् ॥७॥

तपोवनमें आप धर्मानुष्ठान करें । आपको तो सब मालूम है, त्रिलोकमें जो पुरुषार्थ है उसका रहस्य आपको मालूम है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी स्वाभाविक चञ्चलताके कारण मैंने आपसे ऐसा कहा है, नहींतो आपको धर्मोपदेश देनेकी किसकी शक्ति है। अपने भाईके साथ बुद्धिपूर्वक विचार करके जो आपको अच्छा लगे वह कीजिए विलम्ब मत कीजिए ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका नवां सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

——:o:——

पतिमें भक्ति रखनेवाली सीताके कहे इन वचनोंको सुनकर धर्मात्मा रामने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ देवि, तुमने मुझे मेरा हित बतलाया, मुझमें स्नेह रखनेवाली तुम्हारे लिए यही उचितभी है और राजा जनककी कन्याके लिए कुल धर्मका उपदेश करनाभी उचितहै, उसमें तुमतो धर्म जाननेवाली हो ॥ २ ॥ देवि, मैं उत्तर क्या दूं, तुमनेही कहाहै क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करतेहैं कि कोई दुःखी पुकार न करे अर्थात् दुःखीका दुःख दूर किया जाय ॥ ३ ॥ सीते, दण्डकारण्यवासी तीक्ष्ण व्रतधारी मुनि दुःखीहैं, मैं उनकी रक्षा करूंगा इसलिए स्वयं वे मेरी शरण आयेथे ॥ ४ ॥ सदा फलमूल पर समय बितानेवाले ये मुनि क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके कारण सुखसे नहीं रहपाते ॥ ५ ॥ नरमांससे जीनेवाले ये भयानक राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियोंको खाजातेहैं और खाये जानेवाले ॥ ६ ॥ वे ब्राह्मणश्रेष्ठ हमलोगोंके पास आये और उनलोगोंने अपनी सब कथा मुझसे सुनायी, उनके मुंहसे निकली बात मैंने सुनी ॥ ७ ॥

कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् । प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला ॥ ८ ॥
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः । किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥
सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता । राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः ॥१०॥
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु । होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकालेषु चानघ ॥११॥
धर्षयन्ति स्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः । राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम् ॥१२॥
गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमा गतिः । कामं तपःप्रभावेण शक्ता हन्तुं निशाचरान् ॥१३॥
चिरार्जितं न चेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् । बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव ॥१४॥
तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः । तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः ॥१५॥
रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने । मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम् ॥१६॥
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकात्मजे । संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥१७॥
मुनीनामन्यथाकर्तुं सत्यामिष्टं हि मे सदा । अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ॥१८॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ॥१९॥
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः । मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः ॥२०॥

उनके वचन सुनकर मैंने उनलोगोंसे कहा—आपलोग प्रसन्न हों, इसबातसे स्वयंमुझे बड़ी लज्जा आरही है कि जिन ब्राह्मणोंके पास मुझे स्वयं जाना चाहिये वे मेरेपास आये हैं, मैंने ब्राह्मणोंसे पूछा कि मैं क्याकरूं ॥ ८ ॥ ९ ॥ उनसबने मेरेपास आकर मुझसे यही कहा कि दण्डकारण्यमें मनमाना रूपधारण करनेवाले अनेक राक्षसोंसे हमलोग पीड़ितहो रहे हैं, आप हमारी रक्षाकरें। जब होमका समय होता है अथवा दर्शपौर्णमास आदिपर्व कालमें ॥ १० ॥ ११ ॥ ये मांस खानेवाले बड़े बली राक्षस हमलोगोंको दुःख देतेहैं। राक्षसोंसे दुःखपाये हुए तपस्वी ॥ १२ ॥ अपना रक्षक ढूंढ़ रहेहैं, हमलोगोंकी दृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ रक्षक आपही हैं। यद्यपि तपकी शक्तिसे हमलोग राक्षसोंको मार सकतेहैं ॥१३॥ पर बहुत दिनोंका अर्जित तप हमलोग खण्डित करना नहींचाहते। रामचन्द्र, तपस्यामें बड़े विघ्न होतेहैं औरउसके आचरण करनेमें बड़ा कष्ट होताहै ॥१४॥ इसी कारण राक्षस हमलोगोंको खातेभी हैं फिरभी हमलोग उन्हें शाप नहीं देते। दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके द्वारा पीड़ित हमलोगोंके ॥ १५ ॥ रक्षक अपने भाईके साथ आपही हैं। वनमें रहनेवाले हमलोगोंके स्वामी आपही हैं। उनकी यह बात सुनकर दण्डकारण्यमें रहनेवाले मुनियोंकी पूरी रक्षा करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की। जनकपुत्रि, प्रतिज्ञा करके जीतेजी तो अपनी प्रतिज्ञा ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो मैंने मुनियोंसे की है-उससे मुड़ नहीं सकता। क्योंकि सत्य मुझे सदा प्रियहै। सीते मैं अपने प्राणछोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणकेसाथ तुमकोभी छोड़ सकता हूँ ॥ १८ ॥ पर की हुई प्रतिज्ञा विशेषकर ब्राह्मणोंके सम्बन्धकी प्रतिज्ञा मैं नहीं छोड़सकता। अतएव ऋषियोंकी रक्षामैं अवश्य करूंगा ॥ १९ ॥ ऋषियोंके बिना कहेभी मैं उनकी रक्षा करता, अबतो उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा कर चुकाहूँ। तुमने जो मुझसे ऐसा कहाहै, वह मुझमें प्रेम और स्नेह होनेके कारण ॥२०॥ इससे सीते, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।

परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते। सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने॥ २१॥
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम्।
रामो धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि॥ २२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे दशमः सर्गः॥ १०॥

——:o:——

एकादशः सर्गः ११

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना। पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह॥ १॥
तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानि च। नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया॥ २॥
सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः। सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः॥ ३॥
यूथबन्धांश्च पृषता मदोन्मत्तान्विषाणिनः। महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः॥ ४॥
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे। ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम्॥ ५॥
पद्मपुष्करसंबाधं गजयूथैरलंकृतम्। सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलजातिभिः॥ ६॥
प्रसन्नसलिले रम्ये तस्मिन्सरसि शुश्रुवे। गीतवादित्रनिर्घोषो न तु कश्चन दृश्यते॥ ७॥

जो प्रिय नहीं है वह उपदेश देने नहीं आता। शोभने, जो तुमने कहा है वह तुम्हारे कुल और तुम्हारे लिए उचित नहीं है, तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो और मुझे अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो॥२१॥ मैथिल राजकन्या सीताको इसप्रकार कहकर महात्मा रामचन्द्र धनुष लेकर लक्ष्मणके साथ तपोवनकी ओर गये॥ २२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका दशवां सर्ग समाप्त॥ १०॥

——:o:——

आगे रामचन्द्र चलते थे, बीचमें सुन्दरी सीता, उनके पीछे धनुष लेकर लक्ष्मण चलते थे॥ १॥ वे राम और लक्ष्मण अनेक पर्वतोंके शिखरों, वनों तथा भिन्न-भिन्न रमणीय नदियोंको देखते हुए सीताके साथ चले॥ २॥ नदीतीर पर विचरनेवाले सारसों और चकवाओंको उन लोगोंने देखा, कमलवाले तलाव उन लोगोंने देखे, जहां जलचर पक्षी वर्तमान थे॥ ३॥ हिरनों-का यूथ, मदमस्त सींगवाले भैसे, सूअर तथा पेड़ोंको डरवाने वाले हाथियोंको देखते हुए वे लोग चले॥ ४॥ बहुत दूर जानेपर जब सूर्य अस्त होने लगा, उस समय उन लोगोंने एक बड़ा ही सुन्दर तालाव देखा, जो एक योजन लम्बा था॥ ५॥ भिन्न भिन्न जातिके कमल उसमें खिले थे, हाथियोंके यूथसे वह अलंकृत था, जलचारी सारसों और हंससमूहोंसे वह तालाव भरा था॥ ६॥ स्वच्छ जलवाले उस तालावमें गाने और बजानेका शब्द सुन पड़ता था, पर कोई

ततः कौतूहलाद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः। मुनिं धर्मभृतं नाम प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ८ ॥
इदमत्यद्भुतं श्रुत्वा सर्वेषां नो महामुने। कौतूहलं महज्जातं किमिदं साधु कथ्यताम् ॥ ९ ॥
तेनैवमुक्तो धर्मात्मा राघवेण मुनिस्तदा। प्रभावं सरसः क्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥
इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम्। निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना ॥ ११ ॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं माण्डकर्णिर्महामुनिः। दशवर्षसहस्राणि वायुभक्षो जलाशये ॥ १२ ॥
ततः प्रव्यथिताः सर्वे देवाः साग्निपुरोगमाः। अब्रुवन्वचनं सर्वे परस्परसमागताः ॥ १३ ॥
अस्माकं कस्यचित्स्थानमेष प्रार्थयते मुनिः। इति संविग्नमनसः सर्वे तत्र दिवौकसः ॥ १४ ॥
ततः कर्तुं तपोविघ्नं सर्वदेवैर्नियोजिताः। प्रधानाप्सरसः पञ्च विद्युच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥
अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः। नीतो मदनवश्यत्वं देवानां कार्यसिद्धये ॥ १६ ॥
ताश्चैवाप्सरसः पञ्च मुनेः पत्नीत्वमागताः। तटाके निर्मितं तासां तस्मिन्नन्तर्हितं गृहम् ॥ १७ ॥
तत्रैवाप्सरसः पञ्च निवसन्त्यो यथासुखम्। रमयन्ति तपोयोगान्मुनिं यौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥
तासां संक्रीडमानानामेष वादित्रनिःस्वनः। श्रूयते भूषणोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः ॥ १९ ॥
आश्चर्यमिति तस्यैतद्वचनं भावितात्मनः। राघवः प्रतिजग्राह सह भ्रात्रा महायशाः ॥ २० ॥
एवं कथयमानः स ददर्शाश्रममण्डलम्। कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ॥ २१ ॥

दिखायी नहीं पड़ता था। कौन बजा रहा है और गा रहा है इसका पता नहीं चलता था ॥ ७ ॥ तब कुतूहलवश होकर राम और लक्ष्मण धर्मभृत नामक मुनिसे पूछने लगे ॥ ८ ॥ महामुने, यह सुनकर हम लोगोंको बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो गया है, यह क्या है, आप ठीक-ठीक कहें ॥ ९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर धर्मात्मा मुनि शीघ्रही उस तालाबका प्रभाव कहने लगे ॥ १० ॥ यह पञ्चाप्सर नामका तालाब है, इसमें सदा जल रहता है, माण्डकर्णी मुनिने अपनी तपस्यासे इसे बनाया है ॥ ११ ॥ महामुनि माण्डकर्णीने जलमें रहकर तथा वायु खाकर दस हजार वर्षों तक बड़ा कठोर तप किया ॥ १२ ॥ उनकी ऐसी कठोर तपस्या देखकर अग्नि आदि देवता बहुत ही दुःखी हुए और एकत्र होकर वे लोग आपस में बोले ॥ १३ ॥ वे देवता इस कारण और भी घबड़ा गये थे कि यह मुनि हम लोगोंमेंसे किसीका स्थान चाहता है ॥ १४ ॥ उन मुनिकी तपस्यामें विघ्न करनेके लिए उन देवताओंने पाँच प्रधान अप्सराओंको नियुक्त किया, जिनकी कान्ति विद्युत्के समान थी ॥ १५ ॥ परमात्मा और जीवतत्त्व जाननेवाले वे मुनि देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये कामके अधीन बनाये गए ॥ १६ ॥ वे पाँचों अप्सराएँ मुनिकी स्त्री बन गयीं, इस तालाबके भीतर उन्हींके लिए घर बनाया गया है ॥ १७ ॥ वे पाँचों अप्सराएँ वहीं सुख पूर्वक रहती हैं और तपस्याके प्रभावसे यौवन प्राप्त किये मुनिको रमण कराती हैं ॥ १८ ॥ उन्हींकी क्रीडाके बाजेका यह शब्द सुन पड़ता है, और भूषणके शब्दसे युक्त मनोहर यह गीत भी उन्हींका सुन पड़ता है ॥ १९ ॥ आश्चर्य है, ऐसा कहकर उन ब्रह्मज्ञानी मुनिकी बात तपस्वी रामचन्द्रने भाईके साथ मान ली ॥ २० ॥ आश्चर्य है ऐसा कहते हुए रामचन्द्रने एक आश्रम देखा, जो

प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः । तदा तस्मिन्स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले ॥२२॥
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः । जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥२३॥
येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् । क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् ॥२४॥
क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित् । अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ॥२५॥
त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम् । तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ॥२६॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश । परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ॥२७॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह । स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ॥२८॥
तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः । अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् ॥२९॥
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् । अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३०॥
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् । न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया ॥३१॥
कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः । प्रसादार्थं भगवतः सानुजः सह सीतया ॥३२॥
अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् । मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते ॥३३॥
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् । इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः ॥३४॥

शोभासे शोभित होरहा था, तथा जिसमें चारो ओर चीर फैले हुए थे ॥ २१ ॥ उस सुन्दर आश्रममें रामचन्द्रने सीता और लक्ष्मणके साथ प्रवेश किया ॥ २२ ॥ महर्षियोंके द्वारा सत्कृत होकर सुख-पूर्वक रामचन्द्रने वहाँ निवास किया, पुनः क्रमसे उन तपस्वियोंके आश्रम देखनेके लिये वे चले ॥ २३ ॥ जिन महर्षियोंके आश्रमोंमें वे महास्त्रवेत्ता पहले रह चुके थे । रामचन्द्रने किसी आश्रममें दस महीनेसे अधिक निवास किया, कहीं एक वर्ष, ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने, कहीं पाँच महीने और कहीं छ महीने उन्होंने सुखपूर्वक निवास किया। कहीं इससे भी अधिक अर्थात् सात महीने, कहीं एक महीनेसे कुछ अधिक, कहीं आधे महीनेसे अधिक सुखपूर्वक निवास किया ॥ २५ ॥ किसी आश्रममें तीन महीने, किसीमें आठ महीने रामचन्द्रने सुखपूर्वक निवास किया। इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंमें सुख पूर्वक निवास करते ॥ २६ ॥ और प्रसन्नता पूर्वक रमण करते हुए रामचन्द्रके दस वर्ष बीत गये। धर्मज्ञ रामचन्द्र सीताके साथ घूमकर ॥ २७ ॥ पुनः वे सुतीक्ष्णके आश्रममें आये। इस आश्रममें आनेपर मुनियोंने इनका सत्कार किया ॥ २८ ॥ शत्रुओंको दमन करनेवाले रामचन्द्रने वहां भी कुछ दिनों तक निवास किया। इस आश्रममें रहते हुए रामचन्द्र महामुनि सुतीक्ष्णके पास जाकर विनयपूर्वक बोले—भगवन्, इस वनमें मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य ॥ २९ ॥ ३० ॥ रहते हैं, यह बात मैंने कथा कहनेवालोंके मुँहसे सुनी है। पर इस वनके विशाल होनेके कारण मैं उनका स्थान नहीं जानता ॥ ३१ ॥ उन बुद्धिमान महर्षिका आश्रम कहां है, भगवान् अगस्त्यकी प्रसन्नताके लिए लक्ष्मण और सीताके साथ ॥ ३२ ॥ मुनिको प्रणाम करनेके लिये मैं उनके पास जाऊगा। यह मेरे मनमें बहुत बड़ा मनोरथ वर्तमान है ॥ ३३ ॥ कि मैं उन मुनिवरकी सेवा स्वयं करूँ। धर्मात्मा रामके ये वचन सुनकर वे मुनि ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्ण

सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् । अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् ॥३५॥
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव । दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम्॥
अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥ ३६ ॥
योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः । दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥३७॥
स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते । बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ॥३८॥
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः । हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥३९॥
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् । दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ४०
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् । रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥४१॥
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह । स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥४२॥
यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् । अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ॥४३॥
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च । प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥४४॥
पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान् । सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ॥४५॥
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् । इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ।४६॥
एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः । अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४७॥

प्रसन्न होकर दसरथ-पुत्र रामचन्द्रसे बोले—लक्ष्मण और तुमसे मैं भी यही कहना चाहता था ॥ ३५ ॥ कि रामचन्द्र सीताके साथ अगस्त्यके पास चलो । पर प्रसन्नताकी बात है कि इस विषयमें तुम स्वयं मुझसे कह रहे हो । मैं तुमसे बतलाता हूँ जहां महामुनि अगस्त्यका आश्रम है ॥ ३६ ॥ इस आश्रमसे चार योजन अर्थात् सोलह कोस जाओ, तब दक्षिणकी ओर अगस्त्यके भाईका बड़ा आश्रम मिलेगा ॥ ३७ ॥ वहां वनकी भूमि समतल है, वहां पिप्पलीका वन है। पुष्प और फल बहुत हैं अनेक प्रकारके पक्षी बोलते रहते हैं वह स्थान बड़ा ही रमणीय है ॥ ३८ ॥ कमलोंसे सुशोभित और स्वच्छ जलवाले अनेक जलाशय हैं, हंस, जलमुर्ग और चकवाक से सुशोभित हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ वहां उस आश्रममें एक रात रहकर प्रातःकाल वनके बगलसे दक्षिण दिशाकी ओर जाना ॥ ४० ॥ एक योजन जानेपर वनके रमणीय भागमें अनेक वृक्षोंसे शोभित अगस्त्यका आश्रम है ॥ ४१ ॥ वहाँ जानकी और लक्ष्मण तुम्हारे साथ प्रसन्न होंगे। वह वनविभाग बड़ाही सुन्दर है, वहाँ अनेक वृक्ष हैं ॥ ४२ ॥ महामते रामचन्द्र, यदि तुमने महामुनि अगस्त्यको देखनेकी इच्छा की है तो आजही जानेका निश्चय करो ॥ ४३ ॥ मुनिकी बातें सुनकर रामचन्द्रने भाईके साथ उन मुनिको प्रणाम किया और वे भाई तथा सीताके साथ अगस्त्याश्रमकी ओर चले ॥ ४४ ॥ मार्गमें आए हुए अद्भुत वनों, मेघके समान पर्वतों, तालावों तथा नदियोंको देखते हुए वे चले ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णके बतलाये मार्गसे सुखपूर्वक जाकर बड़ी प्रसन्नतासे रामचन्द्रने लक्ष्मणसे यह कहा ॥ ४६ ॥ अवश्यही उन महात्मा पुण्यात्मा अगस्त्यके भाईका यही आश्रम है ॥ ४७ ॥ पुष्प और फलके भारसे नये हुए ये हजारों वृक्ष इस वनमें हैं इससे

यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः । संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥४८॥
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः । गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥४९॥
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसंचयाः । लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥५०॥
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् । पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥५१॥
विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः । पुष्पोपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमर्जितैः ॥५२॥
ततः सुतीक्ष्णवचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् । अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥५३॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । यस्य भ्रात्रा कृतेयं दिक्शरण्या पुण्यकर्मणा ५४
इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेल्वलः । भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥५५॥
धारयन्ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन् । आमन्त्रयति विप्रान्स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ॥
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् । तान्द्विजान्भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा ॥५७॥
ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् । वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ॥५८॥
ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् । भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत्॥
ब्राह्मणानां सहस्राणि तैरेवं कामरूपिभिः । विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनैः॥६०॥
अगस्त्येन तदा देवैः प्रार्थितेन महर्षिणा । अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः स महासुरः ॥६१॥

मालूम होता है कि यही वह आश्रम है ॥ ४८ ॥ पकी पिप्पलिओंकी कडुई गन्ध, जिसे वायु उड़ा लाया है, इस वन से आरही है ॥ ४९ ॥ इधर-उधर पड़ी हुई लकड़ियोंकी ढेर दिखाई पड़ती है और कटे हुए वैदूर्यके समान कुशभी इधर-उधर पड़े हैं ॥ ५० ॥ यह वनके मध्यमें काले मेघके शिखर के समान आश्रमकी अग्निका धूआँ दिखाई पड़ता है ॥ ५१ ॥ पवित्र तीर्थोंमें स्नान करके ब्राह्मणगण स्वयं लाये हुए पुष्पोंके द्वारा बलिदान कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ सौम्य, सुतीक्ष्णका वचन जैसा मैंने सुना है अर्थात् सुतीक्ष्णका जैसा अभिप्राय मैंने जाना है, उससे अवश्यही इसे अगस्त्यके भ्राताका आश्रम होना चाहिये ॥ ५३ ॥ जिसके पुण्यकर्मा भाईने लोककल्याणकी इच्छासे मृत्युके समान भयानक दैत्यको बलपूर्वक मारकर इस दिशाको लोगोंके रहने योग्य बनाया है ॥५४॥ एक समय इस दिशामें क्रूर वातापी और इल्वल नामके दो भाई महाराक्षस साथही रहते थे और वे ब्राह्मणोंको मारा करते थे ॥ ५५ ॥ निर्दय इल्वल ब्राह्मणका रूप धरकर संस्कृत बोलता था और श्राद्धके लिए ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करता था ॥ ५६ ॥ उसका भाई वातापी भेड़ा बन जाता था और श्राद्धविधानके अनुसार इल्वल उसका मांस बनाता था तथा ब्राह्मणोंको खिला देता था ॥ ५७ ॥ जब ब्राह्मण खा लेते थे, तब इल्वल बड़े ज़ोरसे चिल्लाकर कहता था कि वातापी निकल आओ ॥ ५८ ॥ तब भाई-की आवाज़ सुनकर वातापी भेड़ेके समान बोलता हुआ ब्राह्मणोंका पेट फाड़कर निकल आता था ॥ ५९ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन दोनों मांस खानेवाले राक्षसोंने मिलकर हजारों ब्राह्मणोंको प्रतिदिन मार दिया है ॥ ६० ॥ तब देवताओंने अगस्त्यकी प्रार्थना की, अगस्त्य उन राक्षसोंके द्वारा श्राद्धमें निमन्त्रित हुए और उन्होंने उस महाराक्षस इल्वलको खा लिया ॥ ६१ ॥

ततः संपन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्तेऽवनेजनम् । भ्रातरं निष्क्रमस्वेति इल्वलः समभाषत ॥६२॥
स तदा भाषमाणं तु भ्रातरं विप्रघातिनम् । अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥६३॥
कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः । भ्रातुस्तु मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम् ॥६४॥
अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रितम् । प्रधर्षयितुमारेभे मुनिं क्रोधान्निशाचरः ॥६५॥
सोऽभ्यद्रवद्द्विजेन्द्रं तं मुनिना दीप्ततेजसा । चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः ॥६६॥
तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवनशोभितः । विप्रानुकम्पया येन कर्मेदं दुष्करं कृतम् ॥६७॥
एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह । रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥
उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि । प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥६९॥
सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः । न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च॥७०॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले । भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥७१॥
अभिवादये त्वां भगवन्सुखमस्म्युषितो निशाम् । आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ॥७२॥
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः । यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ॥७३॥
नीवारान्पनसान्सालान्वञ्जुलांस्तिनिशांस्तथा । चिरिबिल्वान्मधूकांश्च बिल्वानथ च तिंदुकान् ॥
पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् । ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥७५॥

तदनन्तर श्राद्ध सम्पूर्ण हुआ ऐसा कहकर और अगस्त्यके हाथपर हाथ धोनेके लिये जल देकर अपने भाईसे निकल आनेके लिये इल्वलने कहा ॥ ६२ ॥ वह ब्राह्मणघाती राक्षस अपने भाईको बुला रहा था, उस समय मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् अगस्त्यने हँसकर उससे कहा ॥ ६३ ॥ भेड़का रूप धारण करनेवाले तुम्हारे भाईको तो मैंने पचा लिया, वह तो मर गया, अब वह निकल कैसे सकता है ॥ ६४ ॥ अपने भाईके मरनेकी खबर मुनिसे सुनकर वह राक्षस क्रोध करके मुनिको मारनेका उद्योग करने लगा ॥ ६५ ॥ उसने मुनिपर आक्रमण किया । तेजस्वी मुनिने अपनी जलती आँखोंसे उसे देखकर जला दिया और वह मर गया ॥ ६६ ॥ उन्हीं अगस्त्यके भाईका यह आश्रम है, जो तालाब और वनसे शोभित हो रहा है, ब्राह्मणों पर दया करके ही अगस्त्यने ऐसा कठोर कर्म किया था ॥ ६७ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ ऐसी बातचीत करही रहे थे कि सूर्य अस्ताचलको चले गये और सन्ध्या हो गई ॥ ६८ ॥ भाईके साथ विधिपूर्वक सायङ्कालकी संध्या करके रामचन्द्र मुनिके आश्रममें गए और उन्होंने मुनिको प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ मुनिने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया, वे फलमूल खाकर एक रात उसी आश्रममें रहे ॥७०॥ वह रात बीत गई, सूर्योदय हुआ, तब रामचन्द्रने अगस्त्यके भाईसे पूछा ॥७१॥ उन्होंने कहा—महाभाग, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, रातको बड़े आनन्दसे हम लोगोंने निवास किया । अब हम आपके बड़े भाईका दर्शन करने जा रहे हैं, अतएव आप आज्ञा दें ॥७२॥ मुनिसे आज्ञा लेकर सुतीक्ष्णके बतलाये हुए मार्गसे उस वनको देखते हुए रामचन्द्र चले ॥ ७३ ॥ नीवार, कटहल, साल, अशोक, तिनिश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल और तिन्दुक आदि वनके सैकड़ों पेड़ जो फूले हुए थे तथा जो फूली हुई लताओंसे शोभित हो रहे थे,

हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् । मत्तैः शकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥७६॥
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः । पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥७७॥
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजः । आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा । आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः ॥७९॥
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः । प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥८०॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा॥८१॥
तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः । दिगियं दक्षिणा त्रासाद्दृश्यते नोपभुज्यते ॥८२॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा । तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥८३॥
नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा । प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ॥८४॥
मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः । संदेशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते ॥८५॥
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः । अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥८६॥
एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् । अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥८७॥
आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम् । शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो॥८८॥

देखे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हाथियोंने इन वृक्षोंको अपनी सूंड़से तोड़ फोड़ दिया है, कई वृक्षोंपर वानर बैठे हुए हैं, प्रसन्न होकर पक्षिगण इन वृक्षोंपर बोल रहे हैं ॥ ७६ ॥ तदनन्तर राजीवलोचन रामचन्द्र समीपमें ही वर्तमान लक्ष्मीवर्धन वीर लक्ष्मणसे बोले, जो उनके पीछे चल रहे थे ॥ ७७ ॥ इन वृक्षोंके पत्ते चिकने मालूम पड़ते हैं, ये मृग और पक्षी शान्त हैं इनसे मालूम होता है ब्रह्मज्ञानी महर्षिका आश्रम अब दूर नहीं है ॥ ७८ ॥ ये महर्षि अपनेही कर्मसे अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींका यह आश्रम दीख पड़ता है, जो थके हुओंकी थकावट दूर करता है। (अगस्त्यका अर्थ है पर्वतको स्तम्भित कर देनेवाला। आगे की कथा सुनिए) ॥ ७९ ॥ वनमें बहुत धूआँ फैला हुआ है, वस्त्रोंके टुकड़े चारो ओर फैले हुए हैं, मृगोंका समूह शान्त है और अनेक प्रकारके पक्षी बोल रहे हैं ॥ ८० ॥ जिस पुण्यकर्मा महर्षिने लोकके कल्याणके लिए मृत्युके समान राक्षसको बलपूर्वक मारकर इस देशको लोगोंके रहनेयोग्य बनाया ॥ ८१ ॥ उन्हींका यह आश्रम है, जिनके प्रभावसे राक्षस दक्षिण दिशाको भयसे देखते हैं, पहलेके समान ऋषियोंको खाते नहीं ॥८२॥ जबसे पुण्यकर्मा ऋषि इस दिशामें आए हैं, तबसे राक्षसोंने विरोध करना छोड़ दिया है और वे शान्त हो गये हैं ॥ ८३ ॥ यह दक्षिण दिशा भगवान् अगस्त्यकी दिशाके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। क्रूरकर्मा राक्षस यहाँ उपद्रव नहीं कर सकते ॥ ८४ ॥ सूर्यका मार्ग रोकनेके लिए पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल बढ़ा था, पर अगस्त्यकी आज्ञासे नम्र होगया और आजतक वह उनकी आज्ञाका पालन कर रहा है और बढ़ता नहीं ॥ ८५ ॥ विश्रुतकर्मा, दीर्घायु अगस्त्यका यह सुन्दर आश्रम है, यहांके मृगा बड़े शान्त हैं ॥ ८६ ॥ ये महात्मा सबके द्वारा पूजित हैं, सज्जनोंके कल्याणमें रत रहते हैं, हम लोग जब इनके यहां जाँयगे, तब अवश्यही ये हमारा कल्याण करेंगे ॥ ८७ ॥ यहां मैं महामुनि अगस्त्यकी आराधना करूँगा और वनवासकी बाकी अवधि यहीं बिताऊँगा ॥ ८८ ॥ देवता, गंधर्व,

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥८९॥
नात्र जीवन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः । नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥९०॥
अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह । वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥९१॥
अत्र सिद्धा महात्मानो विमानैः सूर्यसन्निभैः । त्यक्त्वा देहान्नवैर्देहैः स्वर्याताः परमर्षयः ॥९२॥
यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च । अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः॥९३॥
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः । निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥९४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

——:o:——

द्वादशः सर्गः १२

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः । अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली । रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया॥ २ ॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः । अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् । द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः । तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥ ५ ॥

सिद्ध और ऋषि नियत आहार होकर निरन्तर अगस्त्यकी सेवा करते हैं ॥ ८९ ॥ ये मुनि ऐसे हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, छिपकर प्रहार करनेवाला, घातुक और पापी जी नहीं सकता ॥ ९० ॥ धर्मकी आराधना करनेके लिए यहां देवता, यक्ष, नाग, गरुड़ जातिके पक्षी निवास करते हैं ॥ ९१ ॥ सिद्ध महात्मा यहांसे शरीर त्याग करके नवीन शरीर धारण करके और सूर्यके समान दीप्तमान रथपर बैठकर स्वर्ग चले गये हैं ॥ ९२ ॥ प्राणियोंके द्वारा पुण्यकर्मोंसे आराधित होकर देवगण देवयोनि, यक्षयोनि तथा अनेक राज्य देते हैं ॥ ९३ ॥ लक्ष्मण, हमलोग आश्रममें आगये; तुम आगे जाकर सीताके साथ मेरा आना मुनिसे कहो ॥ ९४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका ग्यारहवां सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

——:o:——

रामानुज लक्ष्मण उस आश्रममें जाकर अगस्त्यके एक शिष्यको पाकर उससे बोले ॥ १ ॥ राजा दसरथके ज्येष्ठपुत्र बली रामचन्द्र अपनी स्त्री सीताके साथ मुनिको देखनेके लिए आये हैं ।२। मैं रामचन्द्रका हितकारी उनका छोटा भाई हूँ मेरा नाम लक्ष्मण है, मैं उनका सेवक और भक्त हूं। रामचन्द्रके कथा प्रसंगसे आपने मेरा नामभी सुनाहो ॥ ३ ॥ हमलोग पिताकी आज्ञासे इस भयानक वनमें आये हैं, हम सबलोग दर्शन करना चाहते हैं, आप भगवान् अगस्त्यसे निवेदन कीजिये ॥ ४ ॥ लक्ष्मणकी बातें सुनकर वह तपस्वी "अच्छा" कहकर अपनी होमशालामें अगस्त्यसे

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् । कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥ ६ ॥
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः । पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ॥ ७ ॥
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया । द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥ ८ ॥
यदत्रानन्तरं तत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि । ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् । दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ॥
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति । गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः । एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ॥ १२ ॥
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः । तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् । ततो गत्वाश्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः ॥ १४ ॥
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् । तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् ॥ १५ ॥
प्रावेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम् । प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् । स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च ॥
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः । सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च ॥ १८ ॥
धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च । स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥ १९ ॥
स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च । स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च ॥ २० ॥

निवेदन करने चला गया ॥ ५ ॥ अग्निशालामें जाकर अज्ञान-रहित मुनिश्रेष्ठसे हाथ जोड़कर रामचन्द्रका आना उसने कहा ॥ ६ ॥ लक्ष्मणने जैसा कहा था वैसाही उस अगस्त्यके प्रिय शिष्यने कहा । राम और लक्ष्मण ये दोनों दशरथके पुत्र हैं ॥ ७ ॥ सीता नामकी पत्नीके साथ इस आश्रममें आये हैं, ये दोनों आपके दर्शन तथा सेवा करनेके लिए आये हैं ॥ ८ ॥ इस विषयमें आपका जो निर्णय हो वह आप शीघ्र आज्ञा करें । शिष्यसे यह सुनकर कि राम, लक्ष्मण ॥ ९ ॥ और सीता आयी हैं, अगस्त्य बोले—प्रसन्नताकी बात है बहुत दिनों पर आज रामचन्द्र मुझे देखने आये ॥ १० ॥ मैं भी अपने आश्रममें इनका आगमन चाहता था । जाओ, आदरपूर्वक पत्नी और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको ॥ ११ ॥ मेरे पास ले आओ । तुम उन्हें ले क्यों नहीं आये । धर्मज्ञ महात्मा मुनिके ऐसा कहने पर ॥ १२ ॥ शिष्यने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और "अच्छा" कहा । वह शिष्य शीघ्रतापूर्वक आश्रमसे निकलकर लक्ष्मणसे बोला ॥ १३ ॥ वे कौन राम हैं, मुनिके दर्शनके लिए स्वयं आवें । तदनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके साथ आश्रममें गये ॥ १४ ॥ और उन्होंने रामचन्द्रको दिखा दिया । शिष्यने विनयपूर्वक उनसे अगस्त्यका वचन कहा ॥ १५ ॥ सत्कारके योग्य रामचन्द्रका सत्कार करके विधिपूर्वक उनको ले गया । सीता और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र आश्रममें गये ॥ १६ ॥ शान्त हरिणोंसे पूर्ण आश्रमको देखते हुए रामचन्द्रने उस आश्रममें ब्रह्माके स्थान, अग्निके स्थान, विष्णुके स्थान, इन्द्रके स्थान, सूर्यके स्थान, चन्द्रमाके स्थान, भगदेवताके स्थान, कुबेरके स्थान, धाता और विधाताके स्थान, वायुके स्थान, पाशहस्त

कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति । ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥२१॥
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् । अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥२२॥
बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः । औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिदम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् । जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥२४॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः । सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥२५॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥२६॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च । वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥२७॥
प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुंगवः । उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥२८॥
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् । दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥२९॥
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः । पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥३०॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् । पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥३१॥
इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रं विभूषितम् । वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः । दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥३३॥
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः । महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥

महात्मा वरुणके स्थान, गायत्रीके स्थान, आठ वसुओंके स्थान, नागराजके स्थान, गरुडके स्थान, कार्तिकेयके स्थान तथा धर्मके स्थान देखे, इसी समय मुनि भी अपने शिष्योंके साथ उस स्थानपर आये ॥ १७-१८-१९-२०-२१ ॥ रामचन्द्रने मुनियोंके आगे अति तेजस्वी अगस्त्यको देखा और वीर राम लक्ष्मिवर्धन लक्ष्मणसे बोले ॥ २२ ॥ लक्ष्मण, भगवान् अगस्त्य ऋषि बाहर आरहे हैं, इनकी उदारतासे मैं जानता हूँ कि ये तपस्याओंके खजाना हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार कहकर महाराज रामचन्द्रने आते हुए, सूर्यके समान तेजस्वी अगस्त्य ऋषिके चरण छूये ॥ २४ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ उनको प्रणाम करके धर्मात्मा रामचन्द्र हाथ जोड़कर खड़े रहे ॥ २५ ॥ अगस्त्य ऋषिने भी उनका स्वागत किया, भोजन और जलदेकर उनका सत्कार किया, कुशल-प्रश्न पूछे, पुनः ठहरनेके लिए कहा ॥ २६ ॥ महर्षि अगस्त्यने अग्निमें आहुति देकर अर्घ्य देकर तथा उनलोगोंके पहले धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य स्वयं बैठे, पुनः वे हाथ जोड़कर बैठे हुए धर्म-तत्त्वज्ञ रामचन्द्रसे बोले ॥ २८ ॥ रामचन्द्र, जो तपस्वी सत्कारविधिके विपरीत आचरण करता है वह झूठे साक्षीके समान परलोकमें अपना ही मांस खाता है ॥ २९ ॥ सबके राजा, धर्माचरण करनेवाले महारथ तुम हमलोगोंके प्रिय अतिथि हो, अतएव हमलोगोंके द्वारा पूजनीय और मान्य हो ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर फलमूल तथा अन्य पुष्पोंसे रामचन्द्रकी पूजा इच्छानुसार करके अगस्त्य उनसे बोले ॥ ३१ ॥ यह बड़ा और दिव्य धनुष है इसमें सोनेका काम किया गया है और हीरे जड़े हैं । पुरुषसिंह, यह विष्णुका धनुष है और विश्वकर्माने इसे बनाया है ॥ ३२ ॥ सूर्यके समान दीप्तिमान यह बाण ब्रह्माका दिया हुआ है और यह अमोघ है । यह तूणी इन्द्रने दी है और इसमेंके बाण कभी घटते नहीं ॥ ३३ ॥ अग्निके समान जलनेवाले तीखे बाण इसमें भरे हुए

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान् । आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५ ॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद । जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३६ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् । दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

——:o:——

त्रयोदशः सर्गः १३

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोस्मि लक्ष्मण । अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥ १ ॥
अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः । व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा ॥ २ ॥
एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता । प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु । दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन । समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥ ५ ॥
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा । गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥ ६ ॥
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता । श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवेष्वरुन्धती ॥ ७ ॥

हैं । यह तलवार है जिसमें सोनेका काम किया गया है और जिसकी म्यान भी सोनेकी है ॥ ३४ ॥ राम, इस धनुषके द्वारा संग्राममें भयानक असुरोंको मारकर देवताओंकी लक्ष्मीको लौटा लाओ, जिसप्रकार विष्णुने लौटायी थी ॥ ३५ ॥ मानद, तुम इस धनुषको, इन दो तूणीको, बाण और तलवारको विजयके लिये स्वीकार करो, जिसप्रकार इन्द्रने वज्र स्वीकार किया था ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्यने वह सब श्रेष्ठ आयुध रामचन्द्रको दिये और वे पुनः बोले ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बारहवां सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

——:o:——

सीताके साथ तुम लोग मुझे प्रणाम करने आये हो, इसलिए राम, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, लक्ष्मण, मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ ॥ १ ॥ रास्ता चलनेके परिश्रमकी थकावटसे जानकी दुःखी होरही है, अतएव यह कहीं विश्राम करनेके लिए उत्कण्ठित होरही है ॥ २ ॥ सीता सुकुमारी है, इससे पहले इसे कभी ऐसे दुःखोंका सामना करना नहीं पड़ा है, पतिस्नेहसे पीड़ित होकर ही यह वनमें आयी है जहां अनेक उपद्रव हैं ॥ ३ ॥ रामचन्द्र जिस प्रकार सीता प्रसन्न हो वैसा करो । तुम्हारे साथ आकर इसने बड़ाही कठोर काम किया है ॥ ४ ॥ सृष्टिके प्रारम्भसे स्त्रियोंका यह स्वभाव होता चला आया है कि ये सुखमें पतिका अनुगमन करती हैं तथा दुःखमें उसका त्याग कर देती हैं ॥ ५ ॥ विद्युत्के समान चञ्चल, शस्त्रोंके समान तीखी तथा गरुड़ और वायुके समान शीघ्रगामिनी ये स्त्रियां होती हैं ॥ ६ ॥ पर आपकी इस स्त्रीमें ये दोष नहीं हैं, अतएव यह प्रसंशनीय है, पतिव्रताओंमें प्रथम गिनने योग्य है, जिस प्रकार देवताओंमें अरुन्धती ॥ ७ ॥ लक्ष्मण और

अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह । वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः । उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः । गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति ॥ १० ॥
किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् । यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥ ११ ॥
ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा ततोवाच वचः शुभम् ॥ १२ ॥
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥
तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥
विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ । तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद्दशरथस्य च ॥ १५ ॥
हृदयस्थं च ते छन्दो विज्ञातं तपसा मया । इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥ १६ ॥
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति । स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते ॥ १७ ॥
स देशः श्लाघनीयश्च नाति दूरे च राघव । गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥ १८ ॥
प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः । विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥ १९ ॥
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे । अपि चात्र वसन्राम तापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम् । उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥ २१ ॥

सीताके साथ आपने मेरे इस आश्रमको अपने आगमनसे अलङ्कृत किया है, शत्रुनाशन, अब आप यहां निवास कीजिए ॥ ८ ॥ ऋषिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र हाथ जोड़कर विनयपूर्वक अग्निके समान तेजस्वी ऋषिसे बोले ॥ ९ ॥ मैं आज धन्य हुआ, अनुगृहीत हुआ, क्योंकि भाई और भार्याके साथ मेरे गुणोंसे मुनि श्रेष्ठ और गुरु आप प्रसन्न हैं ॥ १० ॥ आप मुझे वैसा स्थान बतलावें जहां जल हो, सघन वन हो, वहां आश्रम बनाकर सुखपूर्वक हमलोग निवास करें ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर और थोड़ी देर सोचकर धर्मात्मा मुनि उनसे बोले ॥ १२ ॥ तात, यहांसे दो योजन पर पञ्चवटी नामका एक स्थान है, वहां फलफूल और जल काफी है, वहां मृगा भी बहुत हैं, बड़ाही सुन्दर देश है ॥ १३ ॥ वहां लक्ष्मणके साथ जाकर आश्रम बनाओ और पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सुखपूर्वक वहीं निवास करो ॥ १४ ॥ निष्पाप, तपस्याके प्रभावसे तथा राजा दशरथके प्रेमसे मुझे तुम्हारा यह सब वृत्तान्त मालूम है ॥ १५ ॥ रामचन्द्र यहाँ तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी तुमने प्रतिज्ञा की थी, पुनः मुझसे आज्ञा लेकर तुम दूसरी जगह आश्रम बनाना चाहते हो, इसमें तुम्हारे मनका जो अभिप्राय है वह मैंने तपस्याके द्वारा जान लिया है ॥ १६ ॥ इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम पञ्चवटी जाओ, वह स्थान बड़ा ही रमणीय है, जानकी वहाँ प्रसन्न होगी ॥ १७ ॥ वह स्थान बड़ा ही प्रशंसनीय है, गोदावरीके पास है, जानकी वहां प्रसन्न होगी ॥ १८ ॥ वहां बहुत अधिक फलमूल हैं, अनेक प्रकारके पक्षी हैं, बड़ा ही एकान्त है, बड़ा ही पवित्र है, महाबाहु ! वह स्थान बड़ाही रमणीय है ॥ १९ ॥ रामचन्द्र, आप सदाचारी हैं, रक्षा करनेमें समर्थ हैं, अतएव वहां रहकर आप तपस्वियोंका पालन कीजियेगा ॥ २० ॥ वीर, यह महुओंका बड़ाभारी वन दीख पड़ता है, इसके उत्तरकी ओर जानेसे पञ्चवटी वन मिलेगा ॥ २१ ॥

ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः । ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः ॥२२॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह । सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥२३॥
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ । तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥२४॥
गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ विषक्ततूणी समरेष्वकातरौ ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

——:o:——

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः । आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ । मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥ २ ॥
ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव । उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥ ३ ॥
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः । स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ ४ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च । आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥
पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् । तान्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥

वहांसे मैदानमें होकर पर्वतके पास ही पञ्चवटी वन मिलेगा, जहांका वन सदा फूला रहता है ॥ २२ ॥ ऋषिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ उन सत्यवादी ऋषिसे सत्कार-पूर्वक आज्ञा मांगी ॥ २३ ॥ मुनिकी आज्ञा पाकर तथा उनको प्रणाम करके वे दोनों सीताके साथ पञ्चवटीके आश्रममें चले ॥ २४ ॥ वे दोनों राजपुत्र धनुष लेकर बाणोंसे भरा तरकस पाकर युद्धमें विचलित न होनेवाले, महर्षिके बतलाये मार्गसे सावधान होकर पञ्चवटी चले ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेरहवां सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

——:o:——

अनन्तर पञ्चवटी जातेहुए रामचन्द्रने रास्तेमें एक विशालकाय बड़ा पराक्रमी गीध देखा ॥ १ ॥ महाभाग राम और लक्ष्मणने वनमें उस पक्षीको देखकर समझा कि यह कोई राक्षस है, अतएव उन लोगोंने उससे पूछा—तुम कौन हो ॥ २ ॥ वह बड़ेहो मधुर और कोमल वचनसे इन लोगोंको प्रसन्न करता हुआ बोला, बेटे, तुमलोग मुझे अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ रामचन्द्रने अपने पिताका मित्र समझकर उसकी पूजा की और विना घबड़ाये उसका नाम और कुल उन्होंने पूछा ॥ ४ ॥ रामचन्द्रका वचन सुनकर उस पक्षीने रामचन्द्रको अपना कुल और अपना नाम बतलाया तथा सब प्राणियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई यह भी बतलाया ॥ ५ ॥ महाबाहु, पहले

कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् । शेषश्च संश्रयश्चैव वहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महावलः । पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥ ८ ॥
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव । कश्यपश्च महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः ॥ ९ ॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य वभूवुरिति विश्रुताः । षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥१०॥
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः । अदितिं च दितिं चैव दनुमपि च कालकाम् ॥११॥
ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि । तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥१२॥
पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वै जनयिष्यथ मत्समान् । अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेव च ॥१३॥
कालका च महावाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् । आदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥१४॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परंतप । दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तात यशस्विनः १५
तेषामियं वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा । दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥१६॥
नरकं कालकं चैव कालकापि व्यजायत । क्रौञ्चीं भासीं तथा श्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् ॥
ताम्रा तु सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुता । उलूकाञ्जनयत्क्रौञ्ची भासी भासान्व्यजायत १८
श्येनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः । धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ॥१९॥
चक्रावाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी । शुकी नतां विजज्ञे तु नतायां विनता सुता ॥२०॥

जितने प्रजापति होगये हैं, उन सवके सम्वन्धकी वातें मैं कहता हूँ. तुम मुझसे सुनो ॥ ६ ॥ उन प्रजापतियोंमें सबसे पहले कर्दम हुए, तदनन्तर विकृत, शेष, संश्रय, पराक्रमी वहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महावली क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और उन सवमें अन्तिम महातेजस्वी कश्यप हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ राम, दक्ष प्रजापतिकी साठ प्रसिद्ध कन्याएं हुईं ॥ १० ॥ उनमें आठ सुन्दरी कन्याओंको कश्यपने व्याहा, उनके नाम ये हैं अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवैशा, मनु और अनला । प्रसन्न होकर कश्यप उन कन्याओंसे वोले ॥११॥१२॥ त्रिलोकको पालन करनेवाले मेरे समान तुमलोग पुत्र उत्पन्न करोगी । अदिति, दिति, दनु और कालका इन चारोंने तो कश्यपकी वात मान लीं, कश्यपकी वातोंपर इन लोगोंने श्रद्धा प्रकट की, पर उन चार स्त्रियोंने कश्यपकी वातोंपर ध्यान न दिया । अदितिके गर्भसे तैंतास देवता उत्पन्न हुए ॥ १३॥१४ ॥ परन्तप, वारह आदित्य, आठ वसु ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार अदितिने उत्पन्न किये । तात, दितिने यशस्वी दैत्योंको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ पहले यह तमाम वन और पर्वतसहित यह पृथिवी उन्हींके अधिकारमें थी । दनुने अश्वग्रीव नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ कालकाने भी नरक और कालक नामके दो पुत्र उत्पन्न किये । क्रौंची भासी श्येनी धृतराष्ट्री तथा शुकी नामकी प्रसिद्ध पांच कन्याएँ ताम्राने उत्पन्न की । क्रौंचीने उलुकोंको और भासीने भासोंको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्येनीने तेजस्वी गृध्रों और श्येनोंको उत्पन्न किया, धृतराष्ट्रीने हंस तथा कलहंसोंको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ उसी धृतराष्ट्रीने चक्रवाकोंको भी उत्पन्न किया । शुकीने नता नामकी कन्या उत्पन्न की और नताकी कन्या विनता हुई ॥ २० ॥ क्रोधवशानेभी दस कन्याएं

दश क्रोधवशा राम विजज्ञेऽप्यात्मसंभवाः । मृगीं च मृगमन्दां च हरीं भद्रमदामपि ॥२१॥
मातङ्गीमथ शार्दूलीं श्वेतां च सुरभीं तथा । सर्वलक्षणसंपन्नां सुरसां कद्रुकामपि ॥२२॥
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम । ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा ॥२३॥
ततस्त्विरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम् । तस्यास्त्वैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः॥२४॥
हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तपस्विनः । गोलाङ्गुलाश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥
मातङ्ग्यास्त्वथ मातङ्गा अपत्यं मनुजर्षभ । दिशागजं तु काकुत्स्थ श्वेता व्यजनयत्सुतान्॥२६॥
ततो दुहितरौ राम सुरभिर्द्व्यजायत । रोहिणीं नाम भद्रं ते गंधर्वीं च यशस्विनीम्॥२७॥
रोहिण्यजनयद्गावो गन्धर्वी वाजिनः सुतान् । सुरसाजनयन्नागान्राम कद्रूश्च पन्नगान् ॥२८॥
मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्य महात्मनः । ब्राह्मणान्क्षत्रियानवैश्यान्शूद्रांश्च मनुजर्षभ २९
मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा । ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ॥
सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापि व्यजायत । विनता च शुकीपौत्री कद्रूश्च सुरसा स्वसा ॥३१॥
कद्रूर्नागसहस्रं तु विजज्ञे धरणीधरान् । द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ॥३२॥
तस्माज्जातोऽहमरुणात्संपातिश्च ममाग्रजः । जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिंदम ॥३३॥
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि । सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ॥३४॥

उत्पन्न कीं, मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि तथा सब लक्षणोंसे युक्त सुरसा और कद्रू ॥ २१ ॥ २२ ॥ नरश्रेष्ठ, सभी मृग मृगीके पुत्र हैं, मृगमन्दाकी सन्तान भालु, जंगली गाय और चँवरीगाय हैं ॥ २३ ॥ भद्रमदाने दूरवती नामकी कन्या उत्पन्न की, जिससे ऐरावत नामका दिग्गज उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ हरीके लड़के सिंह हुए और विवेकी वानर । शार्दूलीने व्याघ्रों को उत्पन्न किया जिनकी पूंछ गौके समान होती है ॥ २५ ॥ मनुष्यश्रेष्ठ, मातङ्गीने हाथी पुत्र उत्पन्न किए, और श्वेताने दिग्गजोंको पुत्र उत्पन्न किया ॥२६॥ देवी सुरभिने दो कन्याएँ उत्पन्न कीं, एक रोहिणी और दूसरी गन्धर्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौओंको उत्पन्न किया और गन्धर्वीने घोड़ोंको । सुरसाने नागोंको उत्पन्न किया और कद्रूने पन्नगोंको (साधारणतः नाग और पन्नग सांपको कहते हैं, पर यहां अधिक फनवाले सांपके लिए नाग शब्दका प्रयोग हुआ है और साधारण सर्पके लिए पन्नगका) ॥ २८ ॥ मनुने मनुष्योंको उत्पन्न किया, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ॥ २९ ॥ श्रुतिमें लिखा है कि मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंके बीजसे क्षत्रिय, जङ्घाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ अनलाने पवित्र फलवाले वृक्षोंको उत्पन्न किया । शुकीकी पौत्री विनताने सुरसा और कद्रू नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ ३१ ॥ कद्रूने हजारों नागोंको और पर्वतोंको उत्पन्न किया । विनताके दो पुत्रभी हुए, एक गरुड़ और दूसरा अरुण ॥ ३२ ॥ मैं उसी अरुणका पुत्र हूँ । मेरे बड़े भाईका नाम सम्पाति है, मेरा नाम जटायु है मैं श्येनीके वंशमें हूँ ॥ ३३ ॥ यहां तुम्हारे रहनेमें मैं सहायक होऊंगा, जैसा तुम चाहते हो, तुम्हारे और लक्ष्मणके जानेपर मैं सीताकी रक्षा करूंगा ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रने जटायुका अभिनन्दन किया

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवाञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो रिपून्दिधक्षन्स वनानि पालयन् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

——:०:——

पञ्चदशः सर्गः १५

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् । उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् । अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥ २ ॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि । आश्रमो कतरस्मिन्नो देशे भवति संमतः ॥ ३ ॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण । तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा । संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु संमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः । सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते । स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥ ७ ॥

और आलिङ्गन किया, जटायुके द्वारा कही हुई अपने पितासे उसकी मैत्रीकी बात बारबार उन्होंने सुनी ॥ ३५ ॥ रक्षाके लिए उस पक्षीके अधीन सीताको करके उस बलवान् पक्षीके साथ राम और लक्ष्मण रिपुओंको जलानेके लिए तथा वनकी रक्षा करनेके लिए पञ्चवटी गये ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौदहवां सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

——:०:——

जिसमें अनेक हिंस्रपशु और मृगा थे उस पञ्चवटीमें जाकर रामचन्द्र अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ जहां आना था, और जो स्थान मुनिने बतलाया था वहां हमलोग आगये। सौम्य, यही पञ्चवटी देश है, यहींका वन पुष्पित है ॥ २ ॥ चारोंओर देखो, वनके विषयमें तुम निपुण हो, किधरकी ओर आश्रम बनायाजाय, जिसे सबलोग पसन्द करें ॥ ३ ॥ जहां जानकी प्रसन्न रह सकें, हम और तुम प्रसन्न रह सकें, वैसा स्थान देखो, जिसके पास जलाशय हों ॥ ४ ॥ जहां वनकी तथा जलकी रमणीयता हो, और जहाँ लकड़ी, पुष्प, कुश तथा जल पास हों ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर सीताके सामने लक्ष्मण इसप्रकार बोले ॥ ६ ॥ रामचन्द्र, मैं तो पराधीन हूँ, सैकड़ों वर्षों तक के लिए आपके अधीन हूँ। जो स्थान आपको सुन्दर मालूम पड़े वहीं आश्रम बनानेकी आप मुझे आज्ञा दें ॥ ७ ॥ महाद्युति रामचन्द्र लक्ष्मणके इस वचनसे बहुत

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः । विमृशन्रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि । हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥
अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः । इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥१०॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः । अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥११॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना । इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१२॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता । नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥१३॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकंदराः । दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥१४॥
सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः । गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः ॥१५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसद्रुमैः । नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुंनागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥
चूतैरशोकैस्तिलकैः केतकैरपि चम्पकैः । पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥
स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि । धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः ॥१८॥
इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् । इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१९॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा । अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥२०॥
पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् । सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥२१॥

प्रसन्न हुए, ढूंढ़कर उन्होंने सबगुणोंसे युक्त स्थान देखा ॥ ८ ॥ आश्रमके लिए योग्य और सुन्दर स्थानपर जाकर रामचन्द्र लक्ष्मणका हाथ अपने हाथोंमें लेकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान समतल है, सुन्दर है, फूलवाले वृक्ष भी यहां हैं, यहां तुम सुन्दर आश्रम बना सकते हो ॥१०॥ पासही जलाशय है, जहां सूर्यके समान उज्ज्वल कमल खिले हुए हैं, जिनकी सुन्दर गन्ध है और कमलोंसे जिसकी शोभा होरही है ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञानी अगस्त्य मुनिने जो बतलाया है वह गोदावरी नदी यही है, इसके दोनों तटपर फूले हुए वृक्ष वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ यहां हंस और जलमुर्गे भरे हुए हैं, चक्रवाक इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं और जल पानेके लिए मृगोंका समूह इसमें पैठा हुआ है ॥ १३ ॥ मयूर बोल रहे हैं, रमणीय और ऊंचे पर्वत हैं, जिनमें अनेक कन्दराएँ हैं और विकसित पुष्पोंसे जो ढँके हुए हैं ॥ १४ ॥ सब स्थानोंमें प्राप्त होनेवाली सोना, चाँदी और तांबेके समान धातुओंसे हाथियोंके शरीरपर रचना सी बनगयी है, जो खिड़कीके समान मालूम होतीहै ॥ १५ ॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार, तिनिश और सुपारीके वृक्षोंसे जो पर्वत शोभित होरहा है ॥ १६ ॥ आम, अशोक, तिलक, केतक, चम्पक जिसमें फूलवाले गुल्म और लताएँ लिपटी हैं, उनसे यह पर्वत ढँका हुआ है ॥ १७ ॥ स्यन्दन, चन्दन, कदम, बड़हल, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और पाटल वृक्षभी इस पर्वतपर हैं ॥ १८ ॥ यह बहुतही पवित्र स्थान है, बड़ाही रमणीय है, यहां अनेक मृग और पक्षी हैं । हमलोग यहीं इस पक्षी जटायुके साथ निवासकरें ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाबली शत्रुहन्ता लक्ष्मणने शीघ्रही आश्रम बनाया ॥ २० ॥ लक्ष्मणने मिट्टी एकट्ठी करके दीवार बनाकर एक पर्णशाला बनायी, उसमें सुन्दर खम्भे लगाये, बड़े-बड़े बांसोंसे बांसका काम लिया । यह पर्णशाला बड़ी सुन्दर बनी ॥ २१ ॥ ऊपर शमीवृक्षकी शाखाएँ फैलाकर उसे खूब मज़बूत

शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशितम् । कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥२२॥
समीकृततलां रम्यां चकार सुमहाबलः । निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥२३॥
स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा । स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥२४॥
ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि । दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥२५॥
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया । राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत्परम् ॥२६॥
सुसंहृष्टो परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा । अति स्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७॥
प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो । प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः ॥२८॥
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण । त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥२९॥
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः । तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी ॥३०॥
कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च । अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथामरः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

——:o:——

षोडशः सर्गः १६

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः । शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तत ॥ १ ॥

बाँध दिया तथा उसपर कुश, कास सर और पत्ते रखकर छादिया ॥ २२ ॥ महाबली लक्ष्मणने नीचेकी जमीन बराबर करके सुन्दर बना दिया, रामचन्द्रके निवासके लिये वह स्थान अत्यन्त रमणीय बना ॥ २३ ॥ पुनः श्रीमान् लक्ष्मण गोदावरी तीरपर गये, वहां स्नान किया और कमल तथा फूल लेकर वहांसे वे लौट आये ॥ २४ ॥ उन्होंने पुष्पोंका बलिदान किया, पुनः विधिपूर्वक शान्ति की, तदनन्तर वह बनाया हुआ आश्रम उन्होंने रामचन्द्रको दिखाया ॥ २५ ॥ बनाया हुआ उस सुन्दर आश्रमको सीताके साथ देखकर रामचन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए ॥२६॥ रामचन्द्रने प्रसन्न होकर अपनी बाहुओंसे अतिकोमल और गाढ़ आलिङ्गन लक्ष्मणका किया और वे उनसे बोले ॥ २७ ॥ समर्थ लक्ष्मण, तुमने यह बहुत बड़ा काम किया, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ । इस समय तुमको कुछ इनाम देना चाहिए, इसके योग्य इनाम आलिङ्गनके अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता, इसी कारण वह मैंने दिया ॥२८॥ लक्ष्मण तुम अभिप्राय जाननेवाले हो, कृतज्ञ हो, धर्मज्ञ हो, तुम्हारे पिताके समान ही पुत्र होनेके कारण हमें उनका स्मरण नहीं होता ॥२९॥ लक्ष्मीवर्धन रामचन्द्र लक्ष्मणसे ऐसा कहकर प्रचुर फलवाले उस स्थानमें सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३० ॥ कुछ दिनोंतक धर्मात्मा रामचन्द्रने सीता और लक्ष्मणसे सेवित होकर वहां निवास किया जिस प्रकार देवता स्वर्गमें निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पन्द्रहवां सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

——:o:——

महात्मा रामचन्द्र सुखपूर्वक वहां निवास करने लगे । शरदृतुके बीतनेपर रामचन्द्रकी प्रिय हेमन्त ऋतु आई ॥ १ ॥ एक दिन रातके बीतनेपर रामचन्द्र स्नान करनेके लिए रमणीय

स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः । प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥ २ ॥
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् । पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद । अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥ ४ ॥
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी । जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ ५ ॥
नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः । कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥ ६ ॥
प्राज्यकामा जनपदाः संपन्नतरगोरसाः । विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥ ७ ॥
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् । विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च सांप्रतम् । यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥
अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः । दिवसा सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समाहिताः । शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति सांप्रतम् ॥
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः । शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति सांप्रतम् ॥ १२ ॥
रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः । निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ १३ ॥

गोदावरी नदीपर गये ॥ २ ॥ पराक्रमी और विनयी भाई लक्ष्मण हाथमें घड़ा लेकर सीताके साथ रामचन्द्रके पीछे जातेहुए बोले ॥ ३ ॥ प्रियंवद, यह वह काल आगया जो तुम्हारा प्रिय है । इस समयसे समस्त सम्वत्सर अलंकृतके समान मालूम पड़ता है ॥ ४ ॥ शीतसे शरीर रूखा हो जाता है, पृथिवी शस्यसे शोभित हो जाती है, जल उपभोग्य नहीं रहता, आग बड़ी सुहावनी मालूम पड़ती है ॥ ५ ॥ आग्रयणेष्टिके द्वारा पितरों देवताओंकी पूजा करके (नवीन अन्न ग्रहण करनेके पहले जो हवि दीजाती है वह आग्रयण है) सज्जन निष्पाप होते हैं ॥ ६ ॥ जनपद-वासियोंके सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं, बहुत अधिक दूध होता है, राजाभी प्रजारक्षा तथा विजयके लिए यात्रा करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य दक्षिण दिशामें चले जाते हैं इस कारण उत्तर दिशा तिलकहीन स्त्रीके समान शोभित नहीं होती ॥ ८ ॥ इस समय हिमवान् पर्वत यथार्थ हिमवान हो रहा है, एकतो स्वभावसे ही वह हिमका खजाना है, दूसरे इस समय सूर्य उससे बहुत दूर हो गये हैं ॥ ९ ॥ मध्यान्हके समय मनुष्य यहां सुखपूर्वक घूम फिर सकता है, धूपका लगना बड़ा अच्छा मालुम होता है, सूर्यकी धूपके कारण दिन बड़ेही रमणीय मालूम होते हैं और वृक्षोंकी छाया तथा जल अच्छे नहीं मालूम होते ॥ १० ॥ सूर्यकी किरण कोमल-सहने योग्य हो गयी हैं, हिमकी अधिकता है, सर्दी अधिक है, हिमसे लोग दुःखी हो गये हैं, इसी कारण यह वन मनुष्योंसे हीन हो गया है । इस समय इस प्रकारके दिन शोभित हो रहे हैं ॥ ११ ॥ रात्रिमें बाहर सोना लोगोंका बन्द हो गया है, पुष्य नक्षत्रके द्वारा रात्रिका अवसान समझा जाता है, बर्फसे रात्रिका रंग धुँधला हो गया है, शीतके कारण रात बहुत बड़ी हो गयी है, इस प्रकार इस समयकी रात बीत रहा है ॥ १२ ॥ चन्द्रमाका सौभाग्य सूर्यने लेलिया है, पहले चन्द्रमासे लोग जैसा प्रेम करते थे अब वे वैसा प्रेम सूर्यसे करने लगे हैं । बर्फके कारण सूर्यमण्डल धुंधला हो गया है । स्वाससे मलिन चन्द्रमाके समान इस समय चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होते ॥ १३ ॥ पूर्णमासीकी प्रकाशमयी रात्रि बर्फसे मलिन

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते । सीतेव चातपश्यामालक्ष्यते न च शोभते ॥१४॥
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम् । प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥१५॥
बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च । शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः ॥१६॥
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः । शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः १७।
मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः । दूरमप्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥१८॥
आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः । संसक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ ॥१९॥
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला । वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥२०॥
स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् । अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ।२१॥
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः । नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥२२॥
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः । प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥२३॥
बाष्पसंछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः । हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति सांप्रतम् ॥२४॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च । शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥२५॥
जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः । नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥२६॥

हो गयी है, धूपसे काली पड़ी हुई सीताके समान केवल दीख पड़ती है, शोभित नहीं होती ॥ १४ ॥ पश्चिम वायु स्वभावसेही शीतल है, इस समय वर्फसे मिल जानेके कारण प्रातःकालमें दुगुना शीतल हो गया है ॥ १५ ॥ इस वनमें जौ गेहूँ उगे हुए हैं, वे इस समय कुहरेसे ढँक गये हैं, वहां क्रौंच और सारस पक्षी बोल रहे हैं। यह वन और जौ गेहूँके खेत सूर्योदय होनेपर बहुतही शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके समान पीले धान, खजूर पुष्पके समान आकारवाले और चावलोंसे पूर्ण, अग्र भागसे कुछ नय गये हैं, वे बहुतही शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ वर्फ और कुहरासे आच्छादित सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, इस समय सूर्य आकाशमें बहुत दूर उठ जानेपर भी चन्द्रमाके समान मालूम पड़ता है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल सूर्यका प्रकाश कुछ मालूम ही नहीं पड़ता, मध्याह्नमें वह सुखकर मालूम होता है, अतएव लोगोंका प्रिय और थोड़ा धूसर वर्णका सूर्यप्रकाश पृथिवीमें फैला है ॥ १९ ॥ हरी घासोंवाली वनकी भूमि वर्फके गिरनेसे समा सी गयी है, इस समय सूर्यके तरुण प्रकाश पड़नेसे वह बहुतही शोभित हो रही है ॥ २० ॥ जल बहुतही ठंढा है, सुखकी आशासे बहुतही प्यासा यह हाथी अपनी सूंडसे जल छूता है और पुनः सूंड खींच लेता है ॥ २१ ॥ ये जलचर पक्षी जलके पास बैठे हुए हैं, पर जलमें प्रवेश नहीं करते, जिस प्रकार भीरु मनुष्य युद्धसे डरते हैं उसी प्रकार येभी डरते हैं ॥ २२ ॥ यह वनराजि रातको हिम और अन्धकारसे आच्छन्न हो जाती है और प्रातःकाल हिमसे ढँक जाती है, इनमें फूलभी नहीं हैं. ये निद्रितके समान इस समय मालूम होती हैं ॥ २३ ॥ नदियोंका जल कुहरोंसे ढँका हुआ है, बोलीसे वहां सारसोंका होना मालूम पड़ता है, वर्फसे तीरकी बालू भींग गयी है, इस समय नदियोंकी ऐसी शोभा होगयी है ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनेसे सूर्यकी कोमलतासे तथा सर्दीसे, निर्मल पत्थरपर पड़ा हुआ भी जल विषके समान अग्राह्य हो गया है ॥ २५ ॥ इस समय कमल-वनकी शोभा नष्ट हो गयी है, उसके

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः । तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥२७॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून्। तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२८॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः । वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२९॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः । कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते ॥३०॥
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् । धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥३१॥
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः । संत्यज्य विविधान्सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः ३२
जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना । वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥३३॥
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति । ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥३४॥
भर्ता दशरथो यस्य साधुश्च भरतः सुतः । कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३५॥
इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके । परिवादं जनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥३६॥
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन । तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३७॥
निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता । भरतस्नेहसंतप्ता बालिशीक्रियते पुनः ॥३८॥

पत्ते पुराने होनेके कारण पीले पड़ गये हैं, कमलपुष्पके केसर और कर्णिक मुरझा गये हैं, वर्फके कारण केवल डंडाही अवशिष्ट रह गया है ॥ २६ ॥ पुरुषव्याघ्र, इस समयमें दुखी और धर्मात्मा भरत आपमें भक्ति होनेके कारण तपस्या कर रहे हैं ॥ २७ ॥ भरतने राज्य, मान तथा अनेक प्रकारके भोग छोड़ दिये हैं, वे तपस्वी इस शीतकालमें नियमित आहार करके जमीनपर सोते हैं ॥ २८ ॥ वे भरत भी इस समय प्रातःकालमें स्नानके लिए तयार होते हैं और अपने मन्त्री आदिके साथ सरयू तीरपर जाते हैं ॥ २९ ॥ सुखसे पले हुए सुकुमार भरत हिमसे पीड़ित होकर रात्रिके अन्तिम भागमें सरयूमें स्नान कैसे करते हैं ॥ ३० ॥ कमलनयन श्याम श्रीमान भरत मोटे नहीं हैं, उनका पेट बड़ा नहीं है, वे धर्मात्मा सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, वे लज्जाके कारण बुरे भावोंसे बचे रहते हैं ॥ ३१ ॥ प्रियभाषी, सुन्दर, दीर्घबाहु, शत्रुओंके दमन करनेवाले, महात्मा भरतने सब प्रकारके सुखकी सामग्रियोंका त्याग करदिया है और सर्वात्मना आपहीका आश्रय ग्रहण किया है ॥ ३२ ॥ आपके भाई भरतने स्वर्ग जीत लिया, क्योंकि वह वनवासी आपका अनुसरण तपस्याके द्वारा कर रहा है ॥ ३३ ॥ दो पैरवाले प्राणी पिताके गुणोंका अनुवर्तन नहीं करते, किन्तु माताके गुणोंका वे अनुवर्तन करते हैं, इस लौकिक उक्तिको भरतने विपरीत कर दिया, उन्होंने माताके गुण नहीं लिये, किन्तु पिताके गुण लिये ॥ ३४ ॥ जिसके पति राजादशरथ हैं और पुत्र साधु भरत हैं वह माता केकयी ऐसी क्रूर कर्म करनेवाली कैसे हो गयी ? ॥ ३५ ॥ राम और भरतमें स्नेहके कारण धार्मिक लक्ष्मणने माता केकयीके सम्बन्धमें ऐसी निन्दाकी बात कही, रामचन्द्र इस बातको नहीं सह सके और वे बोले ॥ ३६ ॥ भाई, माता केकयीकी निन्दा तुम्हें कभी नहीं करनी चाहिए, तुम राजादशरथ और भरतकोही बातें करो ॥ ३७ ॥ मेरी बुद्धि वनवासमें दृढ है, मैं वनमें रहना चाहता हूँ, फिरभी भरतके स्नेहसे व्याकुल होकर वह कभी-कभी चञ्चल हो जाती है, वह भरतके देखनेके लिए व्याकुल हो जाती है ॥ ३८ ॥ मैं भरतके प्रिय और प्रचुर

संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च । हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ॥३९॥
कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना । शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥४०॥
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् । चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया॥४१॥
तर्पयित्वाथ सलिलैस्तैः पितॄन्दैवतानपि । स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघा ॥४२॥

कृताभिषेकः स रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्या रुद्रः स नन्दिर्भगवानिवेशः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

——:o:——

सप्तदशः सर्गः १७

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च । तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥
आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः । कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥
उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः । स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ॥ ३ ॥
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः॥ ४ ॥
तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः । तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥ ५ ॥

वचन स्मरण करता हूँ, जो अमृतके समान हृदयको प्रिय हैं तथा मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ महात्मा भरत वीर शत्रुघ्न और तुम्हारे साथ मैं कब मिलूंगा, हम चारोभाई कब एक साथ रहेंगे ॥ ४० ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणके साथ गोदावरी नदीके तीरपर पहुंचे और उन्होंने स्नान किया ॥ ४१ ॥ पिता और देवताओंका उन्होंने जलसे तर्पण किया, सूर्योदय होनेपर सूर्य और अन्य देवताओंकी स्तुति की ॥ ४२ सीता और लक्ष्मणके साथ स्नान करनेपर रामचन्द्र शोभित होने लगे, जिस प्रकार भगवान् रुद्र पार्वती और नन्दीके साथ स्नान करनेपर शोभित होते हैं ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सोलहवां सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

——::o——

राम, लक्ष्मण और सीता स्नान करके उस गोदावरी तीरसे अपने आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ आश्रममें आकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने पूर्वाह्णके कृत्य-ब्रह्मयज्ञ आदि किये, पुनः वे दोनों पर्णशालामें आये ॥ २ ॥ उस पर्णशालामें सीताके साथ निवास करते हुए रामचन्द्र महर्षियोंका आदर पाकर सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्र वहां शोभित हुए जिस प्रकार चित्राके योगसे चन्द्रमा शोभित होते हैं । रामचन्द्र वहां लक्ष्मणसे अनेक प्रकारकी पुराण इतिहासकी कथाएं कहा करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन रामचन्द्र वहां बैठे किसी कथाके कहनेमें लगे हुए थे,

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः। भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥ ६ ॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम्। गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्। राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता। सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ९ ॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्द्धजा। प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी। न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत्। जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥१२॥
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्। किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१३॥
एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पनख्या परंतपः। ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१४॥
आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः। तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः। इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥१६॥
नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः। धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥१७॥
त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा। त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे ॥१८॥

उसी समय एक राक्षसी बिना किसी कारणके उस स्थान पर आयी ॥ ५ ॥ वह राक्षसी रावणकी बहिन शूर्पणखा थी, वहां आकर उसने देवताके समान सुन्दर रामचन्द्रको देखा ॥ ६ ॥ दीप्तमुख, महाबाहु, कमल पत्रके समान विशाल नयन, हाथीके समान चलनेवाले और जटाधारी सुकुमार महाबली, राजलक्षण युक्त, नील कमलके समान श्याम और कामके समान सुन्दर रामको उसने देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ सुन्दर मुखवाले पतली कमरवाले और इन्द्रके समान रामचन्द्रको देखकर दुर्मुखी और बड़े पेटवाली राक्षसी काम-मोहित हो गयी ॥ ९ ॥ (आगेके दो श्लोकोंमें दोनोंकी विभिन्नता दिखायी जाती है) रामचन्द्र विशालाक्ष हैं और वह विरूपाक्षी है, रामन्द्रके बाल बड़े सुन्दर हैं और उसके बाल लाल हैं, राम सुन्दर हैं वह कुरूपा हैं, रामका स्वर मधुर हैं और उसका स्वर भयानक है, राम युवा हैं और वह बहुतही बूढी, राम मधुर भाषी हैं और वह कठोर भाषिणी, रामचन्द्र सदाचारी हैं और वह दुराचारिणी, राम प्रियदर्शन हैं और वह अप्रियदर्शना ॥ १०॥११ ॥ कामसे मोहित होकर वह राक्षसी रामसे बोली—जटा और धनुषबाण धारण करके स्त्रीके साथ तपस्वीके वेषमें ॥ १२ ॥ राक्षसोंके इस देशमें तुम कैसे आये, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है, वह ठीक-ठीक मुझसे कहो ॥ १३ ॥ राक्षसी शूर्पणखाके ऐसा कहने पर सरल बुद्धि होनेके कारण रामचन्द्र सब वृतान्त कहने लगे ॥ १४ ॥ देवताओंके समान पराक्रमी दसरथ नामके एक राजा थे, मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ, रामनामसे मैं प्रसिद्ध हूँ ॥ १५ ॥ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है, यह मेरा अनुगामी है, यह मेरी स्त्री सीता है, यह विदेह राजपुत्री है ॥ १६ ॥ पिताकी आज्ञा और माताकी प्रेरणसे धर्मार्थ मैं यहां वनवास करनेके लिए आया हूँ, क्योंकि मैं धर्माचरण करना चाहता हूँ ॥ १७ ॥ मैं तुमको जानना चाहता हूँ, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है, किस देशकी हो, हे सुन्दर शरीरवाली, मुझे तुम राक्षसीके समान मालुम पड़ती हो ॥ १८ ॥ यहां तुम किस कारणसे

इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः । साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥१९॥
श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम । अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ॥२०॥
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा । रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः ॥२१॥
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः । प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥२२॥
विभिषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः । प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥२३॥
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् । समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥२४॥
अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी । चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥२५॥
विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव । अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥२६॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥२७॥
ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च । पश्यन्सह मया कामी दण्डकान्विचरिष्यसि ॥२८॥
इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणाम् । इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

——:o:——

आयी हो, यह तुम मुझसे सच-सच कहो । रामके वचन सुनकर कामपीड़ित वह राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ राम, तुम मेरी बात सुनो, मैं यथार्थ बातें कहती हूँ, मेरा शूर्पणखा नाम है, मैं राक्षसी हूँ और इच्छानुसार रूप धारण करती हूँ ॥ २० ॥ सबको भयभीत करनेवाली मैं अकेली इस वनमें विचरण करती हूँ । मेरा भाई रावण है । शायद तुमने उसका नाम सुना हो ॥ २१ ॥ विश्रवाके पुत्र महाबली वीर कुम्भकर्णका भी नाम तुमने सुना होगा, वह बहुत सोता है ॥ २२ ॥ विभीषण धर्मात्मा, है उसका स्वभाव राक्षसों जैसा नहीं है, रणमें प्रसिद्ध पराक्रमी खर और दूषण भी हमारे भाई हैं ॥२३॥ मैं उन सबसे बड़ी हूँ, बलवती हूँ, राम, तुम्हारे पहलेही दर्शनसे मैं तुमपर आसक्त हो गयी हूँ । पुरुषश्रेष्ठ, तुममें पतिका भाव रखकर मैं आयी हूँ अर्थात् तुमको पति वरण करनेके लिए आयी हूँ ॥ २४ ॥ राम मैं तेजस्विनी हूँ, मैं अपने स्वाधीन बलसे सर्वत्र विचरण करती हूँ, सदाके लिए तुम मेरे पति बन जाओ, सीताको लेकर क्या करोगे ॥ २५ ॥ यह सीता विकृत और विरूप है, यह तुम्हारे योग्य नहीं है, मैं ही तुम्हारे योग्य हूँ, तुम मुझे स्त्री समझो ॥ २६ ॥ यह तुम्हारे योग्य नहीं है, यह असती भयानक स्वरूपवाली तथा पतली कमरवाली है । मैं तुम्हारे इस भाईके साथ इस मानुषीको खा लूंगी ॥ २७ ॥ तब कामी तुम मेरे साथ पर्वत शिखरों तथा अनेक वनोंको देखते हुए दण्डक वनमें भ्रमण करना ॥ २८ ॥ शूर्पणखाके ऐसा कहने पर बोलनेमें चतुर रामचन्द्र उससे, जिसकी आंखें घूम रही थीं, इस प्रकार बोलने लगे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्रहवां सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् । स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत्॥१॥
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम । त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥ २ ॥
अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः । श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥
अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः । अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥ ४ ॥
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ५ ॥
इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता । विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ६ ॥
अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी । मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः । ततः शूर्पणखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीद् ॥८॥
कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि । सोऽहमार्येण परवान्भ्रात्रा कमलवर्णिनि ॥ ९ ॥
समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी । आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥१०॥
एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥११॥
को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि । मानुषीषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः ॥१२॥
इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी । मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥१३॥

कामपाशसे बँधी हुई उस शूर्पनखासे मधुर स्वरमें साफ-साफ हँसकर रामचन्द्र बोले ॥ १ ॥ श्रीमति, मेरा व्याह हो चुका है, यह मेरी प्यारी स्त्री है और यह वर्तमान है, तुम्हारे समान स्त्रियोंके लिए सौतका होना बड़ाही दुःखदायी है ॥ २ ॥ यह लक्ष्मण मेरा छोटा भाई है, इसका शील बड़ा सुन्दर है, यह देखनेमें भी सुन्दर है, सब प्रकारकी सम्पत्ति भी इसके पास है, इसका व्याह भी अभी नहीं हुआ है और यह पराक्रमी भी है ॥ ३ ॥ इसने आजतक स्त्रीका मुंह नहीं देखा है, अतएव यह सुन्दर युवक स्त्री चाहता है, तुम्हारे इस सुन्दर रूपके अनुरूप यही तुम्हारा पति हो सकता है ॥ ४ ॥ विशालाक्षि, तुम मेरे इस भाईको अपना पति बनाओ, यहां तुम विना सौतकी रहोगी, जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा मेरुमें रहती है ॥ ५ ॥ काममोहित वह राक्षसी रामचन्द्रके ऐसा कहने पर उनको छोड़ शीघ्रही लक्ष्मणके पास आकर उनसे बोली ॥६॥ तुम्हारे इस रूपके योग्य मैं ही सुन्दरी तुम्हारी स्त्री हो सकती हूँ, मेरे साथ समस्त दण्डक वनमें तुम सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे ॥ ७ ॥ राक्षसीके ऐसा कहने पर बोलनेमें निपुण सुमित्रानन्दन लक्ष्मण हँसकर शूर्पनखासे युक्तियुक्त बोले ॥ ८ ॥ मैं दास हूँ, तुम दासकी स्त्री दासी क्यों बनना चाहती हो, कमलके समान वर्णवाले मैं अपने बड़े भाई रामचन्द्रके अधीन हूँ ॥ ९ ॥ रामचन्द्रको सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हैं, विशालाक्षि, तुम इन्हींकी छोटी स्त्री बनो, रक्तकमलके समान शरीरवाली तुम प्रसन्न रहोगी, तुम्हारे मनोरथ पूरे होंगे ॥ १० ॥ रामचन्द्रकी स्त्री सीता विरूप है, असती है, भयानक और पतली कमरवाली है, रामचन्द्र उस बूढ़ीको छोड़कर तुमको ही अपनावेंगे ॥ ११ ॥ सुन्दरि, कौन बुद्धिमान ऐसा सुन्दर रूप छोड़कर मानुषीसे प्रेम करेगा ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर भयानक उस राक्षसीने उनकी बात सत्य समझी, क्योंकि वह परिहासमें चतुर न थी ॥ १३ ॥

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम् । सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे ॥१५॥
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम् । त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥१६॥
इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा । अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥१७॥
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः । निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१८॥
क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन । न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित्सौम्य जीवतीम् ॥१९॥
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् । राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥२०॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः । उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः॥२१॥
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च । यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥२२॥
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता । ननाद विविधान्नादान्यथा प्रावृषि तोयदः॥२३॥
सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना । प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥२४॥

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं पपात भूमौ गगनाद्यथाऽशनिः ॥ २५ ॥

शत्रुओंके द्वारा पराजित न होनेवाले और शत्रुओंको पराजित करनेवाले रामचन्द्र सीताके साथ पर्णशालामें बैठे थे, काममोहित शूर्पनखा जाकर उनसे बोली ॥ १४ ॥ इस विरूप, असती, कराल और बूढ़ी स्त्रीके कारण तुम मेरा आदर नहीं कर रहे हो ॥ १५ ॥ तुम्हारे देखते ही देखते इस मानुषीको मैं आज खा लेती हूँ और सौतके न रहनेसे सुखपूर्वक मैं तुम्हारे साथ विचरण करूँगी ॥ १६ ॥ ज्वालाहीन अग्निकाष्ठके समान आँखवाली शूर्पनखा ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक बालमृगनेत्रा सीतापर झपटी, जिस प्रकार महोल्का (उत्पात विशेष) रोहिणीपर झपटती है ॥ १७ ॥ मृत्युपाशके समान आक्रमण करनेके लिए आती हुई उसको महाबली रामचन्द्रने रोका और क्रोधपूर्वक वे लक्ष्मणसे बोले ॥ १८ ॥ अनार्य क्रूरोंसे परिहासभी नहीं करना चाहिए । देखो, वैदेहीका जीवन किसी-किसी प्रकार रक्षित हुआ है ॥ १९ ॥ पुरुषव्याघ्र, इस कुरूपा, दुराचारिणी, लम्बे पेटवाली उन्मादिन राक्षसीको तुम विरूप करदो, इसका अङ्ग भङ्ग कर दो ॥ २० ॥ रामके ऐसा कहनेपर उनके सामनेही लक्ष्मणने क्रोध करके तलवार निकाली और उन्होंने उसकी नाक और कान काट डाले ॥ २१ ॥ कान नाकके काटे जानेपर भयानक चीत्कारसे वह रोयी और जिधरसे आयी थी उधरही वह भयानक राक्षसी चली गयी ॥ २२ ॥ वह महाभयानक और कुरूप राक्षसी खूनसे नहा गयी और वर्षाके मेघके समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ महाभयानक वह राक्षसी रुधिर चुआती हुई और अपनी बाहुओंको समेटकर वनमें गयी ॥ २४ ॥ वह विरूप की गयी शूर्पनखा, राक्षसोंकी सेनाके साथ जनस्थानमें रहनेवाले अतितेजस्वी अपने भाई खरके पास जाकर जमीनमें गिर पड़ी, जैसे आकाशसे बिजली गिरी हो ॥ २५ ॥ भयजनित मोहसे मूर्च्छित और

ततः सभार्यं भयमोहमूर्च्छिता सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम् ।
विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

——:o:——

एकोनविंशः सर्गः १९

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् । भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि संभ्रमम् । व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता ॥ २ ॥
कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् । तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया ॥ ३ ॥
कालपाशं समासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते । यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥
बलविक्रमसंपन्ना कामगा कामरूपिणी । इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां विरूपां चकार ह ॥ ६ ॥
नहि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम् । अमरेषु सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ॥ ७ ॥
अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तगैः । सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ॥ ८ ॥
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः । सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति ॥ ९ ॥

खूनसे सनी, खरकी बहिन उस शूर्पनखाने लक्ष्मण और स्त्रीके साथ रामचन्द्रका वनमें आना तथा अपना अङ्ग भङ्ग किया जाना सब बतलाया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

——:o:——

उस प्रकार खूनसे सनी और विरूप अपनी भगिनीको सामने जमीनमें पड़ी देखकर खर राक्षसको बड़ा क्रोध आया और वह बोला ॥ १ ॥ उठो, सब बातें मुझसे कहो, बेहोशी दूर करो, घवड़ाहट हटाओ, साफ-साफ कहो, किसने तुम्हें इस प्रकार विरूप बनाया है ॥ २ ॥ कौन अनपराधी कृष्णसर्पको—जिसकी दाढ़में विषभरा हुआ है—सामने आनेपर खेलके तौरपर अपनी अंगुलियोंसे खोद रहा है ॥ ३ ॥ किसने तुमको पाकर बहुतही जहरीला विष पीया है, उसने अपने गलेमें कालपाश बाँध लिया है, पर मूर्खतावश इस बातको समझता नहीं ॥ ४ ॥ तुम बल-विक्रमसे सम्पन्न हो, इच्छानुसार जहां चाहो जा आ सकती हो, इच्छानुसार रूप धर सकती हो, तुम स्वयं यमराजके समान हो, तुम किसके पास गयी थी, जिसने तुम्हारी यह अवस्था की ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, अन्य प्राणियोंमें का और महात्मा ऋषियोंमें का वह कौन ऐसा पराक्रमी है, जिसने तुम्हारा ऐसा रूप बनाया ॥ ६ ॥ इस लोकमें मैं तो ऐसा किसीको नहीं देखता जो मेरा अप्रिय कर सके। देवताओंमें पाकशासन सहस्राक्ष इन्द्रभी ऐसा नहीं कर सकता, फिर दूसरोंकी कौन बात ? ॥ ७ ॥ आज मैं प्राण लेनेवाले अपने बाणोंसे अपराधीके प्राण ले लूंगा, जिस प्रकार हंस जलमें मिला दूध ले लेता है ॥ ८ ॥ पृथिवी किस मनुष्यका फेनवाला रुधिर पीना चाहती है, किसके मर्म मेरे बाणोंसे कट जांयगे और रणमें कौन मेरे द्वारा मारा जायगा ॥ ९ ॥

कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य संगताः । प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे ॥१०॥
तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः । मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे ॥११॥
उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि । येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता ॥१२॥
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः । ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥१३॥
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१४॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥
गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ । देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे ॥१६॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥१७॥
ताभ्यामुभाभ्यां संभूय प्रमदामधिकृत्य ताम् । इमामवस्थां नीताहं यथाऽनाथाऽसती तथा ॥१८॥
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् । सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥१९॥
एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् । तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥२०॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् । व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥२१॥
मानुषौ शस्त्रसंपन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ । प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥२२॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ । इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति ॥२३॥

मेरे द्वारा निहत किसके शरीरसे मांस नोचकर पक्षी एकत्र होकर खायंगे ॥ १० ॥ मैं जिस अपराधीको मारनेके लिये युद्धमें अपनी तलवार खींचूंगा, उसकी रक्षा करनेमें देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षसभी समर्थ न हो सकेंगे ॥ ११ ॥ धीरे-धीरे होशमें आकर तुम उस आदमीका नाम बतलाओ, जिसने वनमें बलप्रकाश करके तुम्हें पराजित किया है ॥ १२ ॥ क्रुद्ध अपने भाईके ये वचन सुनकर शूर्पनखा रोती-रोती इस प्रकार बोली ॥ १३ ॥ रूपवान्, सुकुमार और महाबली दो तरुण हैं, कमलके समान उनकी बड़ी-बड़ी आंखे हैं और चीर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए हैं, फल-मूल खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं, दशरथके पुत्र हैं, दोनो भाई हैं, उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ वे गन्धर्वराजके समान हैं, राजाके लक्षण उनमें वर्तमान हैं, वे देवता हैं या दानव इसका निश्चय मैं नहीं कर सकती ॥ १६ ॥ उन दोनोंके साथ एक तरुणी रूपवती और सब आभूषणोंसे भूषित स्त्री देखी है ॥ १७ ॥ उसी स्त्रीके कारण उन दोनोंने मिलकर मेरी ऐसी दशा की है, जैसी दशा अनाथा असतीकी होती है ॥ १८ ॥ रणमें उस कुटिल चरित्रवाली स्त्रीके तथा उन पुरुषोंके मारे जानेपर उनका फेनयुक्त रुधिर मैं पीना चाहती हूँ ॥१९॥ उस स्त्री तथा उन पुरुषोंका रुधिर मैं युद्धमें पीऊंगी, मेरे इस प्रधान मनोरथको तुम पूरा कर सकोगे ? ॥ २० ॥ शूर्पनखाके ऐसा कहनेपर बड़े क्रोधसे खरने यमराजके समान चौदह राक्षसोंको आज्ञा दी ॥ २१ ॥ चीर और कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाले शस्त्रधारी दो मनुष्य एक स्त्रीके साथ इस भयानक दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ २२ ॥ उन दोनोंको मारकर पुनः उस दुराचारिणी स्त्रीको मारो । मेरी यह बहिन उन लोगोंका रुधिर पान करेगी ॥ २३ ॥ राक्षसो, मेरी इस भगिनीका यही प्रिय मनोरथ है, तुमलोग जाकर और उन दोनोंको मारकर शीघ्र इसका

मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः। शीघ्रं संपाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा॥२४॥
युष्माभिर्निहितौ दृष्ट्वा तावुभौ भ्रातरौ रणे। इयं प्रहृष्टा मुदिता रुधिरं युधि पास्यति ॥२५॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश। तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

——:o:——

विंशः सर्गः २०

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता। राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥ १ ॥
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम्। ददृशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेवितम् ॥ २ ॥
तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान्। अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः। इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह ॥ ४ ॥
वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः। तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयत् ॥ ५ ॥
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम्। चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ६
पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम् ॥ ७ ॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ। वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥

यह मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ युद्धमें वे दोनों भाई तुम लोगोंके द्वारा मारे गये देखकर यह प्रसन्न होकर युद्धभूमिमें उनका रुधिर पीएगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वे चौदहो राक्षस उस शूर्पनखाके साथ वहां गये, मानों पवन प्रेरित मेघ जा रहे हों ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उन्नीसवां सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

——:o:——

तदनन्तर भयानक राक्षसी शूर्पणखा रामचन्द्रके आश्रमपर आयी और सीताके साथ दोनों भाइयोंका परिचय राक्षसोंको उसने दिया ॥ १ ॥ राक्षसोंने देखा कि महाबली रामचन्द्र पर्णशाला-में बैठे हैं और सीता तथा लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे हैं ॥ २ ॥ शूर्पणखाको और राक्षसोंको आया हुआ देखकर रामचन्द्रने अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे कहा ॥ ३ ॥ लक्ष्मण थोड़ी देर तुम सीताके पास रहो, इस शूर्पनखाके साथ आए हुए इनको मैं मारूँगा ॥ ४ ॥ अपने पराक्रमको समझनेवाले रामचन्द्रके ये वचन सुनकर लक्ष्मणने स्वीकार किया और उन्होंने उनकी आज्ञाका पालन किया ॥५॥ रामचन्द्रने भी सुवर्णसज्जित अपने बड़े धनुषपर रौदा चढ़ाया और वे उन राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हमलोग दशरथके पुत्र हैं, राम और लक्ष्मण दोनों भाई हैं, दुःखसे विचरण करने योग्य इस दण्डक वनमें सीताके साथ आये हैं ॥ ७ ॥ फलमूल हमारा भोजन है, हमलोग जितेन्द्रिय तपस्वी ब्रह्मचारी हैं, दण्डकारण्यमें रहते हैं, हमको तुम क्यों मार रहे हो अर्थात् हम निरपराध हैं, फिर तुम हमें मारनेकी इच्छासे क्यों आए हो ॥ ८ ॥ वध करने योग्य तो तुमलोग हो, क्योंकि तुम

युष्मान्पापात्मकान्हन्तुं विप्रकारान्महाहवे । ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ॥ ९ ॥
तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ । यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥१०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश । ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥११॥
संरक्तनयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् । परुषा मधुराभाषं हृष्टा दृष्टपराक्रमम् ॥१२॥
क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः । त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतो युधि ॥
का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि । अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥१४॥
एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्च परिघैः शूलपट्टिशैः । प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम्॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः ॥१६॥
चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् । तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश१७
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः । ततः पश्यन्महातेजा नाराचान्सूर्यसंनिभान् ।१८।
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् । गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् १९
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः । ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ।२०।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः । तैर्भग्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ॥२१॥

लोगोंने ऋषियोंका बड़ा अपकार किया है, उन्हीं ऋषियोंकी आज्ञासे तुम पापियोंको युद्धमें मारनेके लिये मैं धनुष लेकर आया हूँ ॥ ९ ॥ यदि तुमलोग युद्ध करना चाहते हो तो ठहरो लौटो मत, यदि तुमलोग प्राण बचाना चाहते हो तो राक्षसो, यहाँसे लौट जाओ ॥ १० ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर वे चौदहों राक्षस बड़ेही क्रोधसे बोले, वे ब्राह्मणोंको मारनेवाले राक्षस हाथोंमें शूल लिये हुए थे ॥ ११ ॥ उन भयानक राक्षसोंकी आँखें लाल हो गयी थीं, वे रूखे स्वभाववाले तथा प्रसन्न राक्षस, अरुणनयन, मधुरभाषी और प्रसिद्ध पराक्रमी रामचन्द्रसे बोले ॥ १२ ॥ हम लोगोंके स्वामी महात्मा खरको क्रोधित करके तुम्हीं हम लोगोंके हाथोंसे युद्धमें अपने प्राण गँवाओगे ॥१३॥ हमलोग बहुत हैं, हम लोगोंके सामने युद्धमें ठहरनेकी भी तो तुम्हारी शक्ति नहीं है, फिर तुम युद्ध क्या कर सकोगे ॥ १४ ॥ हम लोगोंकी बाहुओंसे फेंके गए इन परिघों, शूलों (एक तरह की गदा), पट्टिशों (एक तरह की तलवार) से तुम अपने प्राण, पराक्रम और हाथसे खूब पकड़ा हुआ यह धनुष छोड़ोगे अर्थात् शीघ्रही तुम हम लोगोंके हाथसे मारे जाओगे ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर युद्धके आवेशसे वे चौदहों राक्षस आयुध और तलवार उठाकर रामचन्द्रकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ उन लोगोंने दुर्जय रामचन्द्रकी ओर शूल फेंके, रामचन्द्रने भी उन समस्त चौदह शूलोंको अपने सुवर्ण-भूषित सोलह बाणोंसे काट गिराया । तदनन्तर महातेजस्वी रामचन्द्रने सूर्यके समान चमकीले अपने बाण देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामचन्द्रने क्रोध करके पत्थरोंके लिए भी तीखे, चौदह बाण लिये और धनुषपर चढ़ाकर राक्षसोंको लक्ष्य करके छोड़े, जैसे इन्द्र वज्र छोड़ते हैं । वे बाण राक्षसोंकी छाती फाड़कर रुधिरसे सनेहुए पृथिवी पर गिरे, जिस प्रकार वल्मीकसे साँप निकलते हैं । उन बाणोंसे राक्षसोंके हृदय फट गए और वे कटे पेड़के समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥१९॥२०॥२१॥ वे राक्षस निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिरे, वे रुधिरसे नहाये हुए थे, वे विकृत हो

निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः । तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता २२
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता । पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥२३॥
भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत् । सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा ॥२४॥
निपातितान्प्रेक्ष्य रणे तु राक्षसान्प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसां शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

——:o:——

एकविंशः सर्गः २१

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः । उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥ १॥
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाःपिशिताशनाः । त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥२॥
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः । हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥ ३॥
किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः । हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥ ४॥
अनाथवद्विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति ॥५॥
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता । विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ६॥

गये थे। उनका पृथिवीमें गिरना देखकर राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छित हो गयी ॥ २२ ॥ वह दुःखित होकर खरके पास गयी और वहाँ पृथिवीपर गिर पड़ी। उसके कटे नाक कानसे खून निकलकर जम गया था, जिससे वह गोंदवाली लताके समान मालूम पड़ती थी ॥ २३ ॥ शोकसे पीड़ित शूर्पनखा, जिसका मुँह उतरा हुआ था, अपने भाईके समीप कुछ बोलती हुई आँसू बहाने लगी और बहुत बोलने लगी ॥ २४ ॥ युद्धमें राक्षसोंको गिरे देखकर वह दौड़ी खरके पास गयी। वह खरकी बहिन उन राक्षसोंके मारे जानेका समस्त वृत्तान्त कह गयी ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बीसवां सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

——:o:——

राक्षसकुलके अनर्थके लिए आयी और पृथिवीमें पड़ी हुई शूर्पनखाको देखकर खर क्रोध करके स्पष्टवाणी से बोला ॥ १ ॥ मैंने तो तुम्हारी मनोरथपूर्तिके लिए मांस खानेवाले वीर राक्षसोंको नियुक्त कर ही दिया, अब तुम रोती क्यों हो ॥२॥ वे राक्षस मेरे भक्त हैं, अनुरक्त हैं, सदा मेरे हित चाहनेवाले हैं, शत्रुओंके द्वारा मारे जाने परभी वे मर नहीं सकते, वे हमारी आज्ञाका पालन अवश्य करेंगे ॥ ३ ॥ यह क्या है, मैं जानना चाहता हूँ, वह कौन कारण है जिसके लिए "हा नाथ" कहती हुई तुम सांपके समान पृथिवीमें रेंग रही हो ॥ ४ तुम यह अनाथके समान विलाप कर रही हो, क्यों, मैं तो तुम्हारा रक्षक हूँ, उठो उठो, इस प्रकार व्याकुल मत होओ ॥ ५ ॥ खरके द्वारा ऐसा कह कर समझाने पर उसने आंसू भरी आंखें पोछीं और अपने भाई खरसे बोली ॥ ६ ॥ नाक

अस्मीदानीमहं प्राप्ता हृतश्रवणनासिका । शोणितौघपरिक्लिन्ना त्वया च परिसान्त्विता ॥७॥
प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश । निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः । समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् । रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥१०॥
सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर। शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ॥११॥
विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि । किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे ॥१२॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः । ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥
मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च । रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर १४
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् । यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि ॥१५॥
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा । बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ॥१६॥
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि महारणे । शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥
अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः । जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन ॥१८॥
मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ । निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह ।१९।
रामतेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि । स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥२०॥

और कानके काटे जानेसे रुधिरसे गीली होकर मैं इस समय तुम्हारे पास आई हूँ और तुमने मुझे ढाढस दिया है ॥ ७ ॥ मेरी मनोरथपूर्तिके लिए राम और लक्ष्मणके वध करनेके लिए चौदह वीर राक्षस तुमने भेजे थे ॥ ८ ॥ वे किसीका अपराध न सहनेवाले शूल पट्टिश हाथोंमें धारण करने वाले वीर मर्मभेदी बाणोंसे रामके द्वारा मारे गये ॥ ९ ॥ अति वेगशाली उन राक्षसोंको क्षणही भरमें पृथिवीमें गिरा देखकर-रामचन्द्रका वह महान् कर्म देखकर, मुझे बड़ा भय हो गया है ॥ १०॥ निशाचर, इससे मैं भयभीत उद्विग्न और विषण्ण हो गयी हूँ, मैं चारो ओर भय देख रही हूँ, इसीसे पुनः तुम्हारी शरण आयी हूँ ॥ ११ ॥ मैं अथाह शोकसागरमें डूब रही हूँ, विषादरूपी मगर इसमें निवास करता है, भयकी तरंगें उठती है, तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस मेरे पक्षसे गये थे, वे रामके द्वारा तीखे बाणोंसे मारे गये और इस समय भूमिमें पड़े हुए हैं ॥ १३ ॥ यदि मुझपर तथा उन राक्षसोंपर तुम्हारी दया हो, निशाचर, यदि रामके साथ युद्ध करनेकी तुम्हारी शक्ति हो, पराक्रम हो, ॥ १४ ॥ तो राक्षसोंके शत्रु दण्डकारण्यमें रहनेवाले रामको मारो । यदि तुम शत्रुओंका वध करनेवाले रामचन्द्रका वध आज न करोगे ॥ १५ ॥ तो तुम्हारे आगेही लज्जा त्याग करके मैं अपने प्राण त्याग दूंगी । पर मैं अपनी बुद्धिसे देख रही हूँ कि बलवान् होनेपर भी तुम युद्धमें रामचन्द्रके सामने ठहर नहीं सकते, क्योंकि तुमने अपनेको व्यर्थही पराक्रमी समझ रखा है, तुम्हें अपनी शूरताका केवल अहङ्कार है, तुम शूर नहीं हो ॥ १६-१७ ॥ अतएव अपने बान्धवोंके साथ जनस्थानसे शीघ्र निकलो । हे मूढ़, हे कुलकलङ्क, युद्धमें रामचन्द्रको मारो ॥ १८ ॥ यदि युद्धमें तुम मनुष्य राम और लक्ष्मणको न मार सको, तो तुम्हारे समान बलहीन, अल्प पराक्रमी मनुष्य यहां कैसे रह सकता है ॥ १९ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्र तेजस्वी हैं,

भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता। एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्रदरोदरी ॥२१॥
भ्रातुः समीपे शोकार्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह। कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोद भृशदुःखिता ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥२१॥

——:o:——

द्वाविंशः सर्गः २२

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पनख्या खरस्ततः। उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १ ॥
तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम। न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्बणम् ॥ २ ॥
न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम्। आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥३॥
बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्। अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले। रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ ५ ॥
संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम्। प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ६ ॥
तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः। अब्रवीद्दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ॥ ७ ॥
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम्। रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

उसके तेजसे तुम शीघ्रही नष्ट हो जाओगे ॥ २० ॥ उसका भाई बड़ा पराक्रमी है, जिसने हमारी यह दशा की है, इस प्रकार गहरे पेटवाली राक्षसीने बहुत विलाप किया ॥ २१ ॥ बहुत दुःखिनी होकर हाथोंसे छाती पीटती हुई रोने लगी और शोकसे पीड़ित होकर भाईके सामने बेहोश हो गयी ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकीसवां सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

——:o:——

शूर्पनखाके द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर खर राक्षसोंके बीचमें अति तीखा वचन बोला ॥ १ ॥ तुम्हारे अपमानसे मुझे अतुलनीय क्रोध उत्पन्न हो गया है। पूर्णिमाके दिन बढ़े हुए लवण समुद्रके समान मैं उसे रोक नहीं सकता ॥ २ ॥ पराक्रमकी दृष्टिसे मैं रामचन्द्रको कुछ भी नहीं समझता, वह क्षणभर जीनेवाला मनुष्य है, वह अपनेही अपराधोंसे मारा जायगा और वह प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ आंसू रोको, घबड़ाहट दूर करो, मैं भाईके साथ रामको यमपुर भेजता हूँ ॥ ४ ॥ दुर्बल रामचन्द्र मेरे परश्वधसे मरकर पृथिवी पर लोटेगा, राक्षसि, तब तुम उसका गर्म खून पीना ॥ ५ ॥ खरके मुंहसे निकली बातें सुनकर शूर्पनखा बहुतही प्रसन्न हुई, मूर्खतावश राक्षस-श्रेष्ठ अपने भाईकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६ ॥ शूर्पनखाने पहले खरको क्रोध दिलाया, पुनः उसने उसकी प्रशंसा की, उस समय खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ मेरी आज्ञामें रहने-वाले चौदह हजार राक्षसोंको युद्धके लिए तयार करो, जो राक्षस बड़े भयानक वेगवाले तथा-युद्धसे पीछे पैर नहीं रखनेवाले हैं, जो नीलमेघके समान काले हैं, प्राणि-हिंसामें जो आनन्द मनाने

नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम् । सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ॥ ९ ॥
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च । शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः १०
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् । वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥ ११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् । सदश्वैः शवलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥१२॥
तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् । हेमचक्रमसंवाधं वैदूर्यमयकूवरम् ॥१३॥
मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकान्तैश्च काञ्चनैः । माङ्गल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम् ॥१४॥
ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किंकिणीवरभूषितम् । सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥१५॥
खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम् । निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान् ॥१६॥
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् । निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥१७॥
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः । खड्गैश्चक्रै रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः ॥१८॥
शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः । गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥१९॥
राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश । निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम्॥२०॥
तांस्तु निर्धावतो दृष्ट्वा राक्षसान्भीमदर्शनान् । खरस्याथ रथः किंचिज्जगाम तदनन्तरम् ॥२१॥
ततस्ताञ्छवलानश्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् । खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः पर्यचोदयत् ॥२२॥

वाले हैं और युद्धमें जो उत्साह रखनेवाले हैं, सौम्य, उनको सब सामग्रियोंसे सज्जित करो ॥८-९॥ शीघ्रही मेरा रथ, धनुष, वाण, विचित्र तलवारें, अनेक प्रकारकी तीखी शक्तियां ले आओ ॥ १० ॥ रणदक्ष, दुर्विनीत रामके वधके लिए पुलस्त्य-कुलवाले महात्मा राक्षसोंके आगे-आगे मैं जाना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ उसके ऐसा कहतेही 'चित्रवर्ण वाले उत्तम घोड़े जिसमें जुते हैं और सूर्यके समान चमकीला महारथ आया है' यह दूषणने खरसे कहा ॥ १२ ॥ वह रथ मेरुशिखरके समान ऊँचा था तथा वह सुवर्णसे भूषित था, सोनेके पहिए थे, उस विशाल रथके युगन्धर वैदूर्यके बने हुए थे ॥ १३ ॥ उस रथपर सुवर्ण और चन्द्रकान्त मणिकी मछलियां, पुष्प, वृक्ष, मङ्गलसूचक पक्षी और ताराओंके चित्र बने हुए थे ॥ १४ ॥ ध्वजा फहरा रही थी तथा तलवार आदि उस रथमें रखे हुए थे, उत्तम घुंघुरु लगे हुए थे और अच्छे घोड़े जुते हुए थे। खर क्रोधपूर्वक उस रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खर और दूषण दोनोंने रथ, ढाल, शस्त्र तथा ध्वजासे युक्त उस बड़ी सेनाको देखकर सब राक्षसोंसे चलनेके लिए कहा ॥ १६ ॥ वह राक्षसोंकी सेना भयानक ढाल, शस्त्र और ध्वजाके साथ, महानाद करती हुई, जनस्थानसे बड़े वेगसे चली ॥ १७ ॥ मुद्गर, पट्टिश, तीक्ष्ण शूल, परश्वध, खड्ग, चक्र और चमकीले तोमर रथपर रखे हुए थे ॥ १८ ॥ शक्ति, भयानक परिघ, अनेक धनुष, गदा, तलवार, मुसल, वज्र को, जो देखनेमें भयानक थे, राक्षस लिये हुए थे ॥ १९ ॥ ऐसे चौदह हजार भयानक राक्षस, जो खरकी आज्ञा मानते थे, जनस्थानसे निकले ॥ २० ॥ भयानक राक्षस दौड़ रहे हैं यह देखकर खरका रथ थोड़ी देर ठहर कर चला ॥ २१ ॥ खरका अभिप्राय जानकर सारथिने सुवर्णभूषित चित्रवर्णके घोड़ोंको

संचोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः । शब्देनापूरयामास दिशः समदिशस्तथा ॥२३॥
प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वरो रिपोर्वधार्थं त्वरितो यथान्तकः ।
अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलो मेघ इवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

——०::——

त्रयोविंशः सर्गः २३

तत्प्रयातं बलं घोरमशिवं शोणितोदकम् । अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलो गर्दभारुणः ॥ १ ॥
निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः । समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया ॥ २ ॥
श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् । अलातचक्रप्रतिमं प्रतिगृह्य दिवाकरम् ॥ ३ ॥
ततो ध्वजमुपागम्य हेमदण्डं समुच्छ्रितम् । समाक्रम्य महाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ॥ ४ ॥
जनस्थानसमीपे च समाक्रम्य खरस्वनाः । विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः॥५॥
व्याजहुरभिदीप्तायां दिशि वै भैरवस्वनम् । अशिवं यातुधानानां शिवा घोरा महास्वनाः ॥६॥
प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः । आकाशं तदनाकाशं चक्रुर्भीमाम्बुवाहकाः ॥ ७ ॥
बभूव तिमिरं घोरमुद्धतं रोमहर्षणम् । दिशो वा प्रदिशो वापि सुव्यक्तं न चकाशिरे॥

हांका ॥२२॥ प्रेरित किया हुआ रिपुघाती खरके रथने दिशा और विदिशाओंको शब्दसे भर दिया ॥२३॥ प्रवृद्ध क्रोध, तीक्ष्णस्वर, शत्रु-वधके लिए शीघ्रता चाहनेवाला, यमराजके समान और आंधीवाले, पत्थर बरसाने तथा गर्जनेवाले मेघके समान खरने सारथिको शीघ्र चलनेके लिए प्रेरित किया ॥२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

——:o:——

खरकी वह भयानक सेना चली, उस समय गधेके समान धूसर रंगके अतिभयानक तुमुल शब्द करनेवाले मेघने अमंगल-सूचक लाल जलकी वृष्टि की ॥ १ ॥ उसके रथमें जुते हुए बड़े वेगवाले घोड़े सड़कपर समतल भूमिमें, जहां फूल बिखरे हुए थे, सहसा गिरपड़े ॥ २ ॥ सूर्यके चारो ओर निर्धूम जलते हुए अँगारेके समान गोलाकार परिधि हो गयी, वह काले रंगकी थी और उसका प्रान्त लाल था ॥ ३ ॥ खरके रथकी ध्वजा सोनेके दण्डेमें बहुत ऊपर उठी थी, उसपर एक भयानक शरीरवाला गीध बैठ गया॥ ४ ॥ जनस्थानके समीप आनेपर भयानक शब्दवाले और मांस खानेवाले पशु तथा पक्षी अनेक प्रकारके अमंगल-सूचक भयानक शब्द करने लगे ॥ ५ ॥ जिस दिशामें सूर्य प्रकाशित हो रहा था, उस दिशामें राक्षसोंके अमंगल-सूचक भयानक शब्द शृगाली बोलने लगी ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंके समान विशाल और लाल जल धारण करनेवाले भयानक मेघोंने उस समय आकाशको ढँकलिया ॥ ७ ॥ अतएव अत्यन्त बढ़ा हुआ भयानक और रोमहर्षण अन्धकार हुआ, जिससे दिशा और विदिशाएँ साफ-साफ दिखायी न पड़ने लगीं ॥ ८ ॥

क्षतजार्द्रसवर्णाभा संध्या कालं विना बभौ । खरं चाभिमुखं नेदुस्तदा घोरा मृगाः खगाः ।९।
कङ्कगोमायुगृध्राश्च चुक्रुशुर्भयशंसिनः । नित्याशिवकरा युद्धे शिवा घोरनिदर्शनाः ॥१०॥
नेदुर्बलस्याभिमुखं ज्वालोद्गारिभिराननैः । कबन्धः परिघाभासो दृश्यते भास्करान्तिके ॥११॥
जग्राह सूर्यं स्वर्भानुरपर्वणि महाग्रहः । प्रवाति मारुतः शीघ्रं निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥१२॥
उत्पेतुश्च विना रात्रिं ताराः खद्योतसप्रभाः । संलीनमीनविहगा नलिन्यः शुष्कपङ्कजाः ॥१३॥
तस्मिन्क्षणे बभूवुश्च विना पुष्पफलैर्द्रुमाः । उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरारुणः ॥१४॥
चीचीकूचीति वाश्यन्तो बभूवुस्तत्र सारिकाः । उल्काश्चापि सनिर्घोषा निपेतुर्घोरदर्शनाः ॥१५॥
प्रचचाल मही चापि सशैलवनकानना । खरस्य च रथस्थस्य नर्दमानस्य धीमतः ॥१६॥
प्राकम्पत भुजः सव्यः स्वरश्चास्यावसज्जत । सास्रा संपद्यते दृष्टिः पश्यमानस्य सर्वतः ॥१७॥
ललाटे च रुजो जाता न च मोहान्न्यवर्तत । तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् १८
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्स खरस्तदा । महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ।१९।
न चिन्तयाम्यहं वीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव । तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयेयं नभस्तलात् ॥
मृत्युं मरणधर्मेण संक्रुद्धो योजयाम्यहम् । राघवं तं बलोत्सिक्तं भ्रातरं चापि लक्ष्मणम् २१
अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे । यन्निमित्तं तु रामस्य लक्ष्मणस्य विपर्ययः ॥२२॥

विना समयके ही खूनसे रँगे वस्त्रके समान सन्ध्या हो गयी, और खरके आगे भयानक पशु तथा पक्षी बोलने लगे ॥ ९ ॥ भय उत्पन्न करनेवाले कंक, शृगाल और गीध बोलने लगे और भय उत्पन्न करनेवाली शृगाली भी, जिसका शब्द निश्चय युद्धमें अमंगल करने वाला होता है, वह ज्वाला निकलनेवाले मुंहसे खरकी सेनाके सामने बोलने लगी। सूर्यके पास परिघके समान कबन्ध (विना मस्तकका शरीर) दीख पड़ने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ विना पूर्णिमाके ही महाग्रह राहुने सूर्यको ग्रहण किया। जोरसे हवा चलने लगी और सूर्यका प्रकाश धीमा पड़ गया ॥ १२ ॥ खद्योतके समान प्रकाशवाली ताराएँ विना रातके ही उग गयीं। तालाबमें मछलियां और पक्षी छिप गये तथा कमल सूख गये ॥ १३ ॥ उस समय वृक्षोंके फल-फूल नष्ट हो गये और विना हवाके ही धूसर रंगकी धूल उड़ने लगी ॥ १४ ॥ सारिकाएँ " चीं चीं, कूँ चीं " शब्द करने लगीं। देखनेमें भयानक उल्काएँ घोर शब्दके साथ गिरने लगीं ॥ १५ ॥ गर्जन करनेवाले रथपर बैठे हुए बुद्धिमान खरके आस-पासकी भूमि, पर्वत और वन कांपने लगे ॥ १६ ॥ उसकी बायीं भुजा फरकने लगी, आवाज धीमी पड़ गयी, वह जिधर देखता उसकी आंखे आंसूसे भर जाने लगीं ॥ १७ ॥ मस्तकमें पीड़ा होने लगी, फिरभी अज्ञानके कारण वह लौटा नहीं। वह खर उन महाभयानक अमंगल-सूचक उत्पातोंको देखकर ॥ १८ ॥ हँसता हुआ सब राक्षसोंसे बोला। इन भयानक उत्पन्न हुए उत्पातोंको मैं कुछभी नहीं सोचता, जिस प्रकार बलवान् मनुष्य दुर्बलकी चिन्ता नहीं करता। मैं अपने तीखे बाणोंसे ताराओंको भी आकाशसे गिरा दूंगा ॥ १९ ॥ २० ॥ मैं क्रोध करके मृत्युको भी मार दूंगा, बल्कि अभिमान रखनेवाले रामचन्द्र और उसके भाई लक्ष्मणको अपने तीखे बाणोंसे विना मारे मैं न लौटूंगा। जिस मेरी भगिनीके कारण राम

सकामा भगिनी मेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः। न क्वचित्प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः ॥२३॥
युष्माकमेतत्प्रत्यक्षं नानृतं कथयाम्यहम्। देवराजमपि क्रुद्धो मत्तैरावतगामिनम् ॥२४॥
वज्रहस्तं रणे हन्यां किं पुनस्तौ च मानवौ। सा तस्य गर्जितं श्रुत्वा राक्षसानां महाचमूः ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे मृत्युपाशावपाशिता। समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ॥२६॥
ऋषयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः। समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः २७
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकानां ये च संगताः। जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥
चक्रहस्तो यथा विष्णुः सर्वानसुरसत्तमान्। एतच्चान्यच्च बहुशो ब्रुवाणाः परमर्षयः ॥२९॥
जातकौतूहलास्तत्र विमानस्थाश्च देवताः। ददृशुर्वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ॥३०॥
रथेन तु खरो वेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः। श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥३१॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः। हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥३२॥

द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम्।
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥
चत्वार एते सेनाग्रे दूषणं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणमें ऐसा विपर्यय हुआ है अर्थात् उसके नाक-कान काटकर उन लोगोंने निन्दित काम किये हैं, ॥ २१ ॥ २२ ॥ यह मेरी भगिनी उन दोनोंके खून पीकर कृतार्थ हो। आज तक किसी युद्धमें मेरा पराजय नहीं हुआ है ॥ २३ ॥ यह तुम लोगोंको भी प्रत्यक्ष है, तुम्हें भी मालूम है, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। मैं क्रोध करके मतवाले हाथीपर चलनेवाले और वज्र धारण करनेवाले देवराज इन्द्रको भी मार सकता हूँ, फिर उन दो मनुष्योंकी कौन बात? खरका यह गर्जन सुनकर राक्षसोंकी वह बड़ी सेना बहुत ही प्रसन्न हुई, क्योंकि उसपर मृत्युकी छाया पड़ चुकी थी। युद्ध देखनेकी इच्छा रखनेवाले महात्मा भी वहां आये ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व और चारणोंके साथ सिद्ध वहां आये, ये पुण्यकर्मा आपसमें मिलकर बोले ॥ २७ ॥ गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो, तथा जो लोकके हितकर हैं उनकाभी कल्याण हो। रामचन्द्र पुलस्त्य-वंशी राक्षसोंको युद्धमें जीतें ॥ २८ ॥ जिस प्रकार चक्रधारण करनेवाले विष्णु सब राक्षसोंको जीतते हैं। यह तथा इसी प्रकारकी और बहुतसी बातें करते हुए वे ऋषिश्रेष्ठ वहां आये और कौतूहलाक्रान्त होकर विमानस्थ देवता भी वहां आये, इन लोगोंने मरनेवाले राक्षसोंकी सेना देखी ॥ २९ ॥ ३० ॥ खर रथके द्वारा अपनी सेनाके अग्रभागसे कुछ आगे बढ़ गया। श्वेतगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष कालकार्मुक हेममाली, महामाली, सर्पास्य, और रुधिराशन नामके ये बारह बड़े परक्रमी राक्षस खरके दोनों तरफ चले। महाकपाल स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा ये चार सेनाके आगे दूषणके पीछे-पीछे चले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ग्रहोंकी माला जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यको घेरे रहती है, उसी

सा भीमवेगा समराभिकाङ्क्षिणी सुदारुणा राक्षसवीरसेना ।
तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता माला ग्रहाणामिव चन्द्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

——:o:——

चतुर्विंशः सर्गः २४

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे । तानेवौत्पातिकान्रामः सह भ्रात्रा ददर्श ह ॥१॥
तानुत्पातान्महाघोरान्रामो दृष्ट्वात्यमर्षणः । प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत्॥ २ ॥
इमान्पश्य महाबाहो सर्वभूतापहारिणः । समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुं सर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥
अमी रुधिरधारास्तु विसृजन्ते खरस्वनाः । व्योम्नि मेघा विवर्तन्ते परुषा गर्दभारुणाः ॥ ४ ॥
सधूमाश्च शराः सर्वे मम युद्धाभिनन्दिताः । रुक्मपृष्ठानि चापानि विचेष्टन्ते विचक्षण ॥ ५ ॥
यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः । अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ॥ ६ ॥
संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः । अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ॥७॥
संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् । सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ८ ॥
उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण । निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥
रक्षसां नर्दतां घोरः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः । आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥१०॥

प्रकार युद्ध चाहनेवाली भयानक वह राक्षसोंकी सेना बड़े वेगसे राम लक्ष्मणके पास पहुंची ।३४।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

——:o:——

आश्रमपर तीक्ष्णपराक्रम खरके जानेपर रामचन्द्रने उत्पात-स्वरूप उन सबको देखा ॥ १ ॥ भयानक उत्पात, रूप तथा प्रजाके अहितकारी उन सबको देखकर मुनियोंके कष्ट न सह सकनेवाले रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ २ ॥ महाबाहो, सब प्राणियोंके विनाशकी सूचना देनेवाले और समस्त राक्षसोंके संहारके लिए उठे हुए इन उत्पातोंको देखो ॥ ३ ॥ ये तीक्ष्ण गर्जन करनेवाले और गधेके समान धूसर वर्णके मेघ आकाशमें फैल रहे हैं और रुधिरकी धारा बरसा रहे हैं ॥ ४ ॥ ये मेरे सब बाण जो धूममय हो गये हैं, युद्धके लिए प्रसन्न दीख पड़ते हैं। सोनेकी पीठवाले धनुष फरकाते हैं ॥ ५ ॥ ये वनपक्षी जैसा बोल रहे हैं उससे हमलोगोंके आगे बहुत बड़ा भय दीख पड़ता है, प्राणोंका भी संकट दिखायी पड़ता है ॥ ६ ॥ यह मेरी बाहु बार-बार फरक रही है जिससे मालूम होता है कि अवश्यही युद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ शीघ्रही हमलोगोंकी जय और शत्रुओंकी पराजय होनेवाली है, क्योंकि लक्ष्मण तुम्हारा मुख बड़ाही कान्तिमान् और प्रसन्न दीख पड़ता है ॥ ८ ॥ युद्धके लिए उद्यत जिन मनुष्योंका मुंह कान्तिहीन हो जाता है, उनकी मृत्यु होती है ॥ ९ ॥ राक्षसोंके गर्जनकी यह भयानक ध्वनि सुन पड़ती है और क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता । आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥११॥
तस्माद्गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः । गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥१२॥
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया । शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम् ॥
त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः । स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ।१४।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया । शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥१५॥
तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया । हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् १६
स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः । बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः ॥१७॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् । संबभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः ॥१८॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षया ॥१९॥
ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः । समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः॥
स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां चेति संस्थिता। जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान्॥२१॥
चक्रहस्तो यथा युद्धे सर्वानसुरपुंगवान् । एवमुक्त्वा पुनः प्रोचुरालोक्य च परस्परम् ।२२।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥२३॥
इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः । जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्च देवताः ॥२४॥

द्वारा बजायी गयी भेरीकी भी ध्वनि सुन पड़ती है॥१०॥ आपत्तिकी आशङ्का होनेपर आपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान पुरुषको पहलेसेही उपाय कर लेना चाहिए ॥११॥ अतएव तुम धनुष बाण लेकर वैदेहीके साथ पर्वतकी गुफामें चले जाओ, जहां दूसरोंका जाना कठिन हो, जो वृक्षोंसे घिरी हो ॥ १२ ॥ मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे इस वाक्यका प्रतिकूलाचारण करो, मैं तुम्हे अपने पैरोंकी शपथ देता हूँ, बच्चा, जाओ देर मत करो ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि तुम वीर हो और इन सबको मार सकते हो, पर मैं इन सब राक्षसोंको स्वयं मारना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहने पर लक्ष्मणने सीताके साथ धनुषबाण लेकर दुर्गम गुफाका आश्रय लिया ॥ १५ ॥ सीताके साथ लक्ष्मणके गुफामें चले जाने पर रामचन्द्र, अपनी आज्ञाके शीघ्र पालित होनेके कारण, प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वयं कवच धारण किया ॥ १६ ॥ अग्निके समान प्रकाशमान उस कवचके धारण करने पर रामचन्द्र उस अन्धकारमें प्रज्वलित एक महान् अग्निके समान मालूम हुए ॥ १७ ॥ पराक्रमी रामचन्द्र बड़ा धनुष और बाण लेकर वहां तैयार हो बैठे और धनुषके टंकारसे दिशाओंको गुंजाने लगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, चारण और सिद्ध युद्ध देखनेकी इच्छासे वहां आये ॥ १९ ॥ ऋषि, महात्मा तथा त्रिलोकप्रसिद्ध श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि ये सब पुण्यात्मा वहां आये और इस प्रकार आपसमें बातें करने लगे ॥ २० ॥ गौ ब्राह्मणोंका कल्याण हो तथा जो लोकके हितकारी हों उनका कल्याण हो, रामचन्द्र पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको युद्धमें जीते ॥ २१ ॥ जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु युद्धमें सब राक्षसोंको जीतते हैं। ऐसा कहकर तथा परस्पर देखकर वे पुनः बोले ॥ २२ ॥ इधर भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस हैं, इधर एक धर्मात्मा राम हैं। यह युद्ध कैसे होगा ॥ २३ ॥ राजर्षि, गणोंके साथ सिद्ध, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा विमानस्थ देवता इसी कुतूहलके वश हो गये ॥ २४ ॥ तेजसे आविष्ट रामचन्द्रको रणक्षेत्रमें खड़े देखकर सब प्राणी भयसे व्याकुल हो

आविष्टं तेजसा रामं सङ्ग्रामशिरसि स्थितम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्विव्यथिरे तदा ॥२५॥
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ॥२६॥
इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः । ततो गम्भीरनिर्ह्रादं घोरचर्मायुधध्वजम् ॥२७॥
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत । वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् ॥२८॥
चापानि विस्फारयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्णशः । विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥२९॥
तेषां सुविपुलः शब्दः पूरयामास तद्वनम् । तेन शब्देन वित्रस्तास्त्रासिता वनचारिणः ॥३०॥
दुद्रुवुर्यत्र निःशब्दं पृष्ठतो नावलोकयन् । तच्चानीकं महावेगं रामं समनुवर्तत ॥३१॥
धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् । रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः ॥३२॥
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धायाभिमुखो गतः । वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् ॥३३॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् । दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥३४॥
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवता । तस्य रुष्टस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा ॥
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ॥३५॥
तत्कार्मुकैराभरणै रथैश्च तद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ।
बभूव सैन्यं पिशिताशनानां सूर्योदये नीलमिवाभ्रजालम् ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

गये ॥ २५ ॥ किसीको दुःख न पहुंचानेवाले रामचन्द्रका वह अद्भुत रूप क्रुद्ध महात्मा रुद्रके रूपके समान हो गया ॥ २६ ॥ देव, गन्धर्व, चारण आदि इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय भयानक शब्द करनेवाली और भयानक ढाल, आयुध तथा ध्वजावाली राक्षसोंकी सेना चारो ओरसे रामचन्द्रके पास आ गयी। राक्षस वीरता-सूचक शब्द कह रहे थे, परस्पर मिल रहे थे ॥ २७, २८ ॥ वे धनुषका टंकार कर रहे थे, बार-बार जँभाई ले रहे थे, जोर-जोरसे चिल्ला रहे थे और नगाड़े बजा रहे थे ॥ २९ ॥ उन सबके इस महान् शब्दसे समूचा वन भर गया और उस शब्दसे डरे हुए वनचारी और भी डर गये ॥ ३० ॥ वे उस स्थानमें गये, वहां किसी प्रकारका शब्द नहीं था और भागते समय उन लोगोंने पीठकी ओर फिर कर देखा भी नहीं। वह महावेगवाली सेना रामचन्द्रके पास आ गयी ॥ ३१ ॥ समुद्रके समान विशाल और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उन लोगोंने धारण किये हुए थे। रण-पण्डित रामचन्द्रने भी खरकी उस सेनाको देखा और युद्धके लिए वे उसके सामने गये। रामचन्द्रने अपना भयानक धनुष खींचा और तूणीसे बाण निकाले ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंका वध करनेके लिए उन्होंने महान् क्रोध किया। प्रलय कालकी जलती हुई अग्निके समान वे दुष्प्रेक्ष्य हो गये, उनकी ओर देखना कठिन हो गया ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रके तेजका प्रकाश देखकर वनदेवता दुखी हुए। क्रोधित रामचन्द्रका रूप उस समय, दक्ष-यज्ञके नाशके लिए उद्यत महादेवके रूपके समान मालूम होता था ॥ ३५ ॥ अग्निके समान चमकीले धनुष भूषण रथ और कवचोंसे युक्त वह मांस खानेवाले राक्षसोंकी सेना, सूर्योदयके समयके नीले मेघ-समूहके समान मालूम होती थी ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौबीसवां सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

---:०:---

पञ्चविंशः सर्गः २५

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् । ददर्शाश्रमपागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम् । रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥
स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान्समचोदयत् । यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन्धनुः स्थितः ॥ ३ ॥
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वतो रजनीचराः । मुञ्चमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः । बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोद्धतः ॥ ५ ॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥ ६ ॥
ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः । रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैरायसैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः । राक्षसाः समरे शूरं निजघ्नू रोषतत्पराः ॥ ८ ॥
ते बलाहकसंकाशा महाकाया महाबलाः । अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रथैर्वाजिभिरेव च ॥ ९ ॥
गजैः पर्वतकूटाभै रामं युद्धे जिघांसवः । ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन्रक्षसां गणाः ॥१०॥
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः । सर्वैः परिवृतो रामो राक्षसैः क्रूरदर्शनैः ॥११॥
तिथिष्विव महादेवो वृतः पारिषदां गणैः । तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः ॥१२॥
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः । स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे ॥१३॥

आश्रममें आकर खरने अपने साथियोंके साथ रिपुघाती रामचन्द्रको देखा, वे क्रोधित थे और धनुष लिये हुए थे ॥ १ ॥ उनको देखकर रूखा शब्द करनेवाला रौंदावाला धनुष लेकर खरने सारथिसे रामचन्द्रके सामने रथ ले चलनेके लिए कहा ॥ २ ॥ खरकी आज्ञासे सारथिने घोड़ोंको हाँका, जिधर रामचन्द्र अकेले धनुषका टंकार कर रहे थे ॥ ३ ॥ खरको रामचन्द्रके समीप गया देखकर उसके सलाहकार राक्षसोंने उसे चारो ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ उन राक्षसोंके बीचमें रथ पर बैठा हुआ खर, ताराओंके बीचमें भौम (मंगल) के समान मालूम होता था ॥ ५ ॥ अप्रतिम पराक्रमी रामचन्द्रको हजार बाणसे पीड़ित करके खरने घोर गर्जन किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर भयानक धनुष धारण करनेवाले और जीतनेके अयोग्य रामचन्द्रपर सब राक्षस क्रोध करके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ राक्षस क्रोधित होकर रणमें लोहेके मुद्गर, शूल, प्रास, खड्ग, परश्वध आदिसे वीर रामचन्द्रको मारने लगे ॥ ८ ॥ मेघके समान काले विशाल शरीर और महाबली वे राक्षस रथों और घोड़ोंपर रामचन्द्रकी ओर दौड़े ॥ ९ ॥ पर्वत-शिखरके समान ऊँचे हाथियोंपरसे युद्धमें रामचन्द्रको मारनेकी इच्छासे राक्षसोंने उनपर बाणोंकी वृष्टि की ॥ १० ॥ मानों महामेघ पर्वतराजपर धारा बरसा रहे हों । भयानक स्वरूपवाले राक्षसोंसे रामचन्द्र घिर गये ॥ ११ ॥ मानो प्रदोष तिथिमें महादेव अपने गणसे घिरे हों । राक्षसोंके छोड़े उन शस्त्रोंको रामचन्द्रने अपने बाणोंसे पकड़ लिया, जिस प्रकार समुद्र नदियोंके वेगको ग्रहण करता है । राक्षसोंके अस्त्र शस्त्रोंसे रामचन्द्रका शरीर छिद

रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः । स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ॥१४॥
बभूव रामः संध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः । विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१५॥
एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् । ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ॥१६॥
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः । दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥१७॥
मुमोच लीलया कङ्कपत्रान्काञ्चनभूषणान् । ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया ॥१८॥
आददू रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव । भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा रुधिराप्लुताः॥१९॥
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः । असंख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात्॥२०॥
विनिष्पेतुरतीवोग्रा रक्षःप्राणापहारिणः । तैर्धनूंषि ध्वजाग्राणि चर्माणि कवचानि च ॥२१॥
बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् । चिच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥
हयान्काञ्चनसंनाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् । गजांश्च सगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥२३॥
चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः । पदातीन्समरे हत्वा अनयद्यमसादनम् ॥२४॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । भीममार्तस्वरं चक्रुश्छिद्यमाना निशाचराः ॥२५॥
तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः । न रामेण सुखं लेभे शुष्कं नमिवाग्निना ॥२६॥
केचिद्भीमबलाः शूराः प्रासाञ्शूलान्परश्वधान् । चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः ॥२७॥

गया, पर वे दुःखी न हुए ॥ १२-१३ ॥ अनेक प्रदीप्त वज्रोंसे आहत महान अचलके समान रामचन्द्र राक्षसोंके वाणोंसे सर्वाङ्गमें विद्ध हुए और उनके उन स्थानोंसे रुधिर निकलने लगा ॥ १४ ॥ सायंकालीन मेघोंसे ढके हुए सूर्यके समान रामचन्द्र हो गये, यह देखकर सिद्ध गन्धर्व देवता और ऋषि दुखी हुए ॥१५॥ क्योंकि उन लोगोंने देखा कि एक रामचन्द्र कई हजार राक्षसोंसे घिर गये हैं, तब रामचन्द्रने क्रोध कर अपने धनुषको खींचा, जिससे वह गोलाकार हो गया ॥१६॥ और उससे सैकड़ों हजारों तीखे वाण छोड़े । वे वाण असह्य थे, कालपाशके समान, निवारण करनेके अयोग्य थे॥१७॥रामचन्द्र अनायासही सुवर्णभूषित वाण छोड़ने लगे । रामचन्द्रने शत्रुकी सेनापर वे बाण बिना परिश्रमके ही छोड़े ॥१८॥ यमराजके चलाये पाशके समान उन वाणोंने राक्षसोंके शरीर छेदकर उनके प्राण ले लिये और वे खुद रुधिरसे सन गये ॥१९॥ रामचन्द्रके धनुषसे निकले हुए, अग्निके समान दीप्तिमान् अनगिनत वाण आकाशमें जाकर शोभने लगे॥२०॥वे उग्र और राक्षसोंके प्राण लेनेवाले बाण रामचन्द्रके धनुषसे निकले । रामचन्द्रने अपने उन वाणोंसे राक्षसोंके सैकड़ों-और हजारों धनुष, ध्वजा, ढाल, कवच, हाथ और गहनेसे युक्त बाहु, हाथीके सूंडके समान उरू रणमें काट डाले ॥२१ ॥२२ ॥ रथमें जुते हुए तथा सोनेका सन्नाह पहने हुए घोड़ोंको, सारथिको, सवारके साथ हाथी और घोड़ोंको, धनुषसे छूटे रामचन्द्रके वाणोंने काटा और मारा, पैदलोंको मारकर यमलोक भेजा ॥ २३ , २४ ॥ नालीक (जिनका मुँह लोहेका हो), नाराच (जो पूरे लोहेके हों) और तीखे विकर्णी (जिनका मुँह टेढ़ा हो) नामक, रामचन्द्रके वाणोंसे छिदे हुए राक्षस भयानक विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ मर्मभेदी रामचन्द्रके अनेक वाणोंके द्वारा पीड़ित, वह सेना सुखी नहीं हुई, जिस प्रकार सूखा वन आगसे सुखी नहीं होता ॥ २६ ॥ अतिबली

तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य वीर्यवान्। जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान् ॥२८॥
ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः। सुपर्णवातविक्षिप्ता जगत्यां पादपा यथा ॥२९॥
अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णास्ते निशाचराः। खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शराहताः ॥३०॥
तान्सर्वान्धनुरादाय समाश्वास्य च दूषणः। अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः क्रुद्धं क्रुद्ध इवान्तकः ॥३१॥
निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः। राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥३२॥
शूलमुद्गरहस्ताश्च पाशहस्ता महाबलाः। सृजन्तः शरवर्षाणि शस्त्रवर्षाणि संयुगे ॥३३॥
द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः। तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥३४॥
रामस्यास्य महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम्। ते समन्तादभिक्रुद्धा राघवं पुनरार्दयन् ॥३५॥
ततः सर्वा दिशो दृष्ट्वा प्रदिशश्च समावृताः। राक्षसैः सर्वतः प्राप्तैः शरवर्षाभिरावृतः ॥३६॥
स कृत्वा भैरवं नादमस्त्रं परमभास्वरम्। समयोजयद्गान्धर्वं राक्षसेषु महाबलः ॥३७॥
ततः शरसहस्राणि निर्ययुश्चापमण्डलात्। सर्वा दश दिशो बाणैरापूर्यन्त समागतैः ॥३८॥
नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं शरोत्तमान्। विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥३९॥
शरान्धकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम्। बभूवावस्थितो रामः प्रक्षिपन्निव ताञ्छरान् ॥४०॥

किसी वीर राक्षसने बहुत क्रोधकरके रामचन्द्रपर भाला, शूल, और परश्वध, नामके अस्त्र चलाये ॥ २७ ॥ महाबाहु, पराक्रमी रामचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके शस्त्रोंका निवारण करके उनके प्राण ले लिए और गला काट दिये ॥२८॥ ढाल, धनुष और मस्तकके कट जानेपर वे पृथिवी पर गिर पड़े, जिस प्रकार गरुड़के पांखकी हवासे टूटे हुए वृक्ष पृथिवीमें गिर जाते हैं ॥ २९ ॥ जो राक्षस वहाँ बच गये थे—वे बाणोंके लगनेसे दुखित होकर, खरके ही पास शरणके लिए गये ॥ ३० ॥ उन सबको निर्भय होनेके लिए कहकर और धनुष लेकर, बड़े क्रोधसे, वह क्रोधित रामचन्द्रकी ओर दौड़ा, मानो क्रुद्ध यमराजही दौड़ा चला आता हो ॥ ३१ ॥ दूषणके आश्रय मिलनेसे निर्भय होकर लौटे हुए राक्षस भी साल, ताल आदि वृक्षों तथा पत्थरोंको लेकर रामकी ही ओर दौड़े ॥३२॥ महाबली राक्षस शूल, मुद्गर और पाश हाथमें लेकर युद्धमें, बाण तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगे। कोई वृक्षोंकी वर्षा करताथा और कोई पत्थरों की। अतएव यह युद्ध बड़ाही अद्भुत, तुमुल और रोंगटे खड़े कर देनेवाला हुआ ॥ ३३, ३४ ॥ रामचन्द्र और दूषण, रामचन्द्र और वे राक्षस परस्पर युद्ध करने लगे। क्रोध करके उन राक्षसोंने रामचन्द्रको पुनः दबाया॥३५॥ रामचन्द्रने देखा कि समस्त दिशा और विदिशाएँ बाणोंसे ढक गयी हैं, चारों ओरसे आए राक्षस बाण-वर्षासे मुझको ढक रहे हैं ॥ ३६ ॥ तब उन्होंने भयानक गर्जन करके बहुतही चमकीला गान्धर्व अस्त्र राक्षसोंपर चलाया ॥ ३७ ॥ उस समय रामचन्द्रके धनुषसे हजार बाण निकले और उन बाणोंसे दसों दिशाएँ भर गयीं ॥ ३८ ॥ रामचन्द्र कब बाण लेते हैं और कब चलाते हैं, यह बात राक्षसोंको नहीं मालूम होती थी। रामचन्द्रके बाणोंसे पीड़ित राक्षस केवल यही देख सकते थे कि वे धनुष खींच रहे हैं ॥ ३९ ॥ उन बाणोंके अन्धकारने सूर्य सहित आकाशको ढँक लिया। उस समय चुपचाप बैठे हुए रामचन्द्र मानो बाणोंको फेंक रहे हों, ऐसा मालूम हुआ ॥ ४० ॥ एक ही

युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् । युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥४१॥
निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः । तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ॥४२॥
सोष्णीषैरुत्तमाङ्गैश्च साङ्गदैर्बाहुभिस्तथा । ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥
हयैश्च द्विपमुख्यैश्च रथैर्भिन्नैरनेकशः । चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥४४॥
रामेण बाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूलपट्टिशैः । विच्छिन्नैः समरे भूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥४५॥
तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः । न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च । संदिदेश महाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥
राक्षसान्पञ्चसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः । ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥
शरवर्षैरविच्छिन्नं ववर्षुस्तं समन्ततः । तद्द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ॥ ३ ॥
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः । प्रतिगृह्य च तद्वर्षं निमीलित इवर्षभः ॥ ४ ॥
रामः क्रोधं परं लेभे वधार्थं सर्वरक्षसाम् । ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ॥ ५ ॥
शरैरभ्यकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम् । ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ॥ ६ ॥

बार गिरते हुए, एकही बार मारे हुए और एकही बार गिरे हुए, अनेक राक्षसोंसे पृथिवी भर गयी ॥४१॥ मरे हुए, गिरे हुए, मरते हुए, कटे हुए और छिदे हुए हजारों राक्षस जहां तहां दिखायी पड़ने लगे ॥ ४८ ॥ किसीका पगड़ीवाला माथा कट गया था, किसीका गहनेवाला हाथ कट गया था, इस प्रकार अनेक भूषणभूषित राक्षसोंके भिन्न-भिन्न अंग कट गये थे ॥४३॥ रामके बाणसे घायल, शूल और परशुके द्वारा कटे हुए हाथी, घोड़े, टूटे हुए अनेक रथ, चँवर, पंखे, छत्ते और ध्वजाओंसे समरभूमि भर गयी औरभयानक मालूम पड़ने लगी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इन मृतकोंको देखकर अन्य राक्षस बहुत दुःखी हुए और वे रामचन्द्रके सम्मुख जानेके समर्थ न हो सके ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२५॥

दूषणने अपनी सेनाको निहत होती देख, भयानक आक्रमण करनेवाले, अजेय, युद्ध में न लौटनेवाले, पाँच हजार राक्षसोंको आज्ञा दी । वे शूल, पट्टिश, तलवार, पत्थर, वृक्ष और बाणोंकी रामचन्द्रपर सतत वृष्टि करने लगे । पत्थरों और वृक्षोंकी वह वर्षा प्राण लेनेवाली थी ॥ १, २, ३ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने अपने तीखे बाणोंसे उन सबको रोक दिया और नरश्रेष्ठ रामचन्द्रने समस्त राक्षसोंका वध करनेके लिए नितान्त क्रोध किया । क्रोधित रामचन्द्र तेजसे प्रज्वलित हुए ॥४,५ ॥ दूषणके साथ समस्त सेनापर रामचन्द्रने बाणोंकी वृष्टि की, इससे शत्रुओंको दूषित करनेवाला

शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् । ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ॥ ७ ॥
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । हत्वा चाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ॥ ८ ॥
शिरो जहार तद्रक्षास्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि । स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ९ ॥
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् । वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥१०॥
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम् । वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ॥११॥
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे । दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥१२॥
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ॥१३॥
भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि । परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः ॥१४॥
कराभ्यां च विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः । विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः॥१५॥
दृष्ट्वा तं पातितं भूमौ दूषणं निहतं रणे । साधुसाध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन्॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः । संहत्याभ्यद्रवन्रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥१७॥
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः । महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥१८॥
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् । दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ॥१९॥
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव । महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥२०॥

सेनापति दूषण बहुतही क्रुद्ध हुआ ॥ ६ ॥ वज्रके समान बाणोंसे उसने रामचन्द्रको ढँक दिया, तब क्रुद्ध होकर रामचन्द्रने क्षुर अस्त्रसे उसका धनुष काट दिया। चार बाणोंसे उसके चार घोड़े मार डाले और अर्द्धचन्द्र बाणसे उसके सारथिका मस्तक काट डाला और उस राक्षसके छातीमें तीन बाण मारे। इससे उस राक्षसका धनुष कट गया, घोड़े मारे गये और सारथि मारा गया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्तर पर्वतशिखरके समान भयानक परिघ उसने उठाया, जो सोनेसे मढ़ा हुआ था तथा जो देवताओंकी सेनाको भय देनेवाला था ॥ १० ॥ उसमें लोहेके तीखे काँटे लगे हुए थे, जो शत्रुओंकी चर्बीसे भींगे थे, वज्रके समान वह कठिन था और शत्रुओंके नगर-द्वारको वह तोड़नेवाला था ॥ ११ ॥ महा भयानक सर्पके समान उस परिघको लेकर क्रूर कर्म करनेवाला दूषण रामपर टूट पड़ा ॥ १२ ॥ अपनी ओर आते हुए दूषणके गहनेवाले दोनों हाथ बाणोंसे रामने काट डाले ॥१३॥ हाथके कट जानेपर वह विशाल परिघ, इन्द्रध्वजके समान पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ हाथोंके कट जानेसे दूषण पृथिवीमें गिर पड़ा, जिस प्रकार दाँतोंके टूटनेसे हाथी गिर जाता है ॥ १५ ॥ घायल होकर रणभूमिमें गिरे सब प्राणियोंने रामचन्द्रकी प्रशंसा की ॥ १६ ॥ इसी समय सेनाके आगे चलनेवाले महाकपाल, स्थूलाक्ष, और महाबली प्रमाथी, ये तीनों बड़े क्रोधसे रामचन्द्रकी ओर चले, मानों इनपर भी मृत्युकी छाया पड़ गयी हो। राक्षस महाकपालने विशाल शूल उठाया, स्थूलाक्षने पट्टिश और प्रमाथीने परश्वध। अपनी ओर आते हुए इन राक्षसोंको देखकर आये हुए अतिथिके समान, रामचन्द्रने अपने तीखे बाणोंसे इनका स्वागत किया, और महाकपालका मस्तक

असंख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् । स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ॥२१॥
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः । दूषणस्यानुगान्पञ्चसाहस्रान्कुपितः क्षणात् ॥२२॥
हत्वा तु पञ्चसाहस्रैरनयद्यमसादनम् । दूषणं निहतं श्रुत्वा तस्य चैव पदानुगान् ॥२३॥
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान्महाबलान् । अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः ॥२४॥
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम् । शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसाः ॥२५॥
एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे । श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥२६॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः । हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥२७॥
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षाः ससैनिकाः । राममेवाभ्यधावन्त विसृजन्तः शरोत्तमान् ॥२८॥
ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः । जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥२९॥
ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः । निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥३०॥
रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना । सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥३१॥
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥३२॥
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः । विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥३३॥
तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् । बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥३४॥

काट डाला ॥ १७, १८, १९, २० ॥ असंख्य बाणोंसे प्रमाथीको मथित किया और बड़ी-बड़ी आँखों वाले, स्थूलाक्षकी आँखोंमें बाण भर दिया ॥ २१ ॥ यह तीनोंका समूह, कटे वृक्षके समान पृथिवी-में गिर पड़ा । तदनन्तर क्रोध करके दूषणके पाँच हजार राक्षसोंको, पाँच हजार बाणोंके द्वारा शीघ्र ही रामचन्द्रने यमपुर भेज दिया । दूषण और उसके अनुयायी मारे गये, यह सुनकर खर क्रुद्ध हुआ और उसने बड़े बलवान सेना-नायकोंको आज्ञा दी—यह दूषण अपने साथियोंके साथ मारा गया । तुम लोग बहुत बड़ी सेना लेकर उस नीच मनुष्य रामसे युद्ध करो और सब राक्षस मिलकर विविध अस्त्रोंसे उसे मार डालो ॥२२, २३, २४, २५॥ ऐसा कहकर खर क्रोध करके रामचन्द्रकी ओर चला । तदनन्तर श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, कालकार्मुक, परुश, हेममाली, महामाली, सर्पास्य और रुधिराशन, ये महाबली बारह सेनानायक अपने सैनिकोंके साथ बाण छोड़ते हुए रामचन्द्रकी ओर चले ॥ २६, २७, २८ ॥ तदनन्तर अग्निके समान उज्ज्वल, सुवर्ण और वज्रसे विभूषित बाणोंके द्वारा, तेजस्वी रामचन्द्रने बचे हुए सैनिकों-को मारा ॥ २९ ॥ सोनेके पंखवाले ज्वालाहीन सधूम अग्निके समान उन बाणोंने राक्ष-सोंको मारा, जिस प्रकार वज्र बड़े-बड़े वृक्षोंको मारता है ॥ ३० ॥ रामचन्द्रने सौ कर्णिक बाणोंसे सौ राक्षसोंको मारा और हजार राक्षसोंको हजार बाणोंसे ॥ ३१ ॥ उन बाणोंसे राक्षसोंके कवच टूट गये, गहने टूट गये, धनुष कट गये । वे रुधिरसे सने हुए राक्षस पृथिवी-पर गिरे ॥ ३२ ॥ रुधिरलिप्त, मुक्तकेश, समरमें गिरे हुए उन राक्षसोंसे पृथिवी भर गयी, जिस प्रकार कुशोंसे वेदी ॥ ३३ ॥ उस समय राक्षसोंके मारे जानेसे उस वनमें मांस और रुधिरका कीचड़ बन गया, जिससे वह वन महाभयानक और नरकके समान हो गया ॥ ३४ ॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥३५॥
तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः । राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥३६॥
शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि । घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥३७॥
ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे समीक्ष्य धर्मेण हतं बलीयसा ।
रथेन रामं महता खरस्ततः समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥
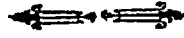
सप्तविंशः सर्गः २७

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः । राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥
मां नियोजय विक्रान्तं त्वं निवर्तस्व साहसात् । पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥ २ ॥
प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे । यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥
अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम । विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ४ ॥
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि । मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ॥ ५ ॥
खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः । गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥

भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको एक मनुष्य, रामचन्द्रने पैदल होकर मारा ॥३५॥ उस समस्त सेनामें महारथ खर और त्रिशिरा दो राक्षस तथा शत्रुघाती राम ये ही तीन बचे ॥३६॥ और सब पराक्रमी राक्षस युद्धमें मारे गये। जो बड़े भयानक और प्रचण्ड थे, उन्हें लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्रने मार डाला ॥ ३७ ॥ उस बहुत बड़ी सेनाको बलवान रामचन्द्रने धर्मपूर्वक मारा यह देखकर खर बहुत बड़े रथपर चढ़कर वज्रहस्त इन्द्रके समान रामके पास गया ॥३८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

खर रामचन्द्रकी ओर जा रहा है, यह देखकर, सेनापति त्रिशिरा उसके पास आकर इस प्रकार बोला ॥१॥ पराक्रमी मेरे जिम्मे इस कामको सौंपो । तुम इस, साहसपूर्ण कामसे अलग हो जाओ । मेरे द्वारा युद्धमें मारे गये रामचन्द्रको देखो॥२॥ मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, शस्त्र छूता हूँ कि सब राक्षसोंके वध्य रामचन्द्रका मैं अवश्यही वध करूँगा ॥३॥ युद्धमें मैं इसका मृत्युस्वरूप होऊंगा या यह मेरा मृत्यु स्वरूप होगा । तुम थोड़ी देरतक युद्धोत्साह रोककर मध्यस्थ बन जाओ, अर्थात् हमारा युद्ध देखो ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके मारे जानेपर खुश होकर जनस्थान लौट जाना, अथवा मेरे मारे जानेपर युद्धके लिए रामचन्द्रके सामने आना ॥ ५ ॥ इसप्रकार अपनी मृत्युके लिए

त्रिशिरास्तु रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता । अभ्यद्रवद्रणे रामं त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ७ ॥
शरधारासमूहान्स महामेघ इवोत्सृजन् । व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्येव दुन्दुभेः ॥ ८ ॥
आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः । धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥ ९ ॥
स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोस्तदा । संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥१०॥
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः । अमर्षी कुपितो रामः संरब्ध इदमब्रवीत् ॥११॥
अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् । पुष्पैरिव शरैर्योऽहं ललाटेऽस्मि परिक्षतः ॥१२॥
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणाच्च्युतान् । एवमुक्तस्तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान् ॥१३॥
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश । चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥१४॥
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः । अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ॥१५॥
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् । ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ॥१६॥
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः । सायकैश्चाप्रमेयात्मा सामर्षात्तस्य रक्षसः ॥१७॥
शिरांस्यपातयत्त्रीणि वेगवद्भिस्त्रिभिः शरैः । स धूमशोणितोद्गारी रामबाणाभिपीडितः ॥१८॥
न्यपतत्पतितैः पूर्वं समरस्थो निशाचरः । हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः ॥१९॥

त्रिशिराने खरको प्रसन्न किया । उसने कहा जाओ लड़ो । उसकी आज्ञा पाकर त्रिशिरा युद्धके लिए रामचन्द्रके सामने चला ॥६॥ घोड़ेके चमकीले रथपर चढ़कर त्रिशिराने रामचन्द्रपर चढ़ाई की, मानो तीन सिरवाला कोई पर्वत हो ॥ ७ ॥ वह महामेघके समान बाणधाराकी वृष्टि करने लगा और भींगे नगाड़ेके समान गर्जकर शब्द करने लगा ॥८॥ राक्षस त्रिशिरा सामने आ रहा है, यह देखकर रामचन्द्रने तीखे बाणोंको छोड़कर धनुषसे उसे रोका ॥ ९ ॥ अतिबली राम और त्रिशिराका वह युद्ध बड़ाही घनघोर हुआ, जैसे सिंह और हाथी लड़ते हों ॥ १० ॥ त्रिशराने तीन बाणोंसे रामचन्द्रके माथेमें मारा । अतएव असहनशील रामचन्द्र क्रोध करके राक्षसोंका क्रोध बढ़ानेवाले शब्द बोले ॥ ११ ॥ विजय करनेका गर्व रखनेवाले राक्षसका यही बल है, जिसके पुष्पके समान बाणोंसे मेरे मस्तकपर आघात पहुँचा है ॥ १२ ॥ धनुषसे छूटे हुए मेरे बाणोंको भी ग्रहण करो—ऐसा कहकर और राक्षसको क्रोध दिखाकर सर्पके समान भयानक चौदह बाण उन्होंने त्रिशिराकी छातीमें मारे ॥ १३ ॥ सन्नतपर्व चार बाणोंसे तेजस्वी रामचन्द्रने उसके चार घोड़े गिरा दिये । आठ बाणोंसे सारथिको रथके नीचे गिरा दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रने अपने बाणोंसे ऊँचे उठी उसकी ध्वजा काट डाली । टूटे रथसे उठते हुए उस राक्षसके हृदयमें बाण मारे और वह जड़के समान हो गया है । अमित धैर्यवाले रामचन्द्रने उस राक्षसपर क्रोध करके शीघ्रगामी तीन बाणोंसे उसके मस्तक काट डाले । रामबाणसे पीड़ित होकर वह धुंआ और खून उगलने लगा ॥१६, १७, १७. १८॥ वह राक्षस अपने तीनों मस्तकोंके पृथिवीपर गिरनेके कारण

द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याधत्रस्ता मृगा इव । तान्खरो द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्य रुषितस्त्वरन् ।
रामेमेवाभिदुद्राव राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह । खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १ ॥
स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम् । हतमेकेन रामेण दूषणस्त्रिशिरा अपि ॥ २ ॥
तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः । आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥ ३ ॥
विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्तभोजनान् । खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥
ज्यां विधुन्वन्सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन् । चचार समरे मार्गाञ्शरैः रथगतः खरः ॥ ५ ॥
स सर्वाश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः । पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः ॥ ६ ॥
स सायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिङ्गैरिवाग्निभिः । नभश्चकार विवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥ ७ ॥
तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः । पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ ८ ॥
शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते । अन्योन्यवधसंरम्भादुभयोः संप्रयुध्यतोः ॥ ९ ॥

स्वयं भी गिर पड़ा ॥१६॥ जो रणमें बचे हुए थे और घायल हो गये थे, वे—व्याधसे डरे हुए मृगके समान, खरके आश्रित—राक्षस भाग गये। उनको भागते हुए देखकर खर क्रोध करके शीघ्रतापूर्वक उन्हें लौटाकर रामचन्द्रकी ओर दौड़ा, जैसे राहू चन्द्रमाकी ओर दौड़ा हो ॥ २०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्ताइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

त्रिशिराके साथ दूषणको रणमें मरा देखकर और रामचन्द्रका पराक्रम देखकर खरको भी भय हुआ ॥ १ ॥ महाबली और असहनीय राक्षसोंकी सेना, तथा दूषण और त्रिशिराको, एकही रामचन्द्रने मारा यह देखकर तथा अपनी सेनाके बहुतसे वीरोंको मरा हुआ जानकर राक्षस खर बहुतही दुःखी हुआ और रामचन्द्रके सामने गया, जिस प्रकार नमुचि नामक राक्षस इन्द्रके सामने गया था ॥ २, ३ ॥ उसने रक्त पीनेवाले क्रुद्ध सर्पके समान बाण रामचन्द्रपर फेंका ॥ ४ ॥ रौंदाका टंकार करता हुआ और अस्त्र सम्बन्धी अपनी निपुणता दिखलाता हुआ, खर रणक्षेत्रमें अनेक प्रकारसे विचरण करने लगा ॥ ५ ॥ महारथ खरने अपने बाणोंसे समस्त दिशाओं तथा विदिशाओंको भर दिया। यह देखकर रामचन्द्रने भी बड़ा धनुष लिया ॥ ६ ॥ रामचन्द्रने भी अग्निकी चिनगारियोंके समान और असहनीय बाणोंसे आकाशको भर दिया, जिस प्रकार मेघ वृष्टिसे भर देता है ॥ ७ ॥ खर और रामचन्द्रके छोड़े तीखे बाणोंसे वह सूना आकाश खूब भर गया ॥ ८ ॥ एक दूसरेके वध करनेके आग्रहपूर्ण क्रोधसे

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । आजघान रणे रामं तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥१०॥
तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् । ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवान्तकम् ॥११॥
हन्तारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम् । परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा ॥१२॥
तं सिंहमिव विक्रान्तं सिंहविक्रान्तगामिनम् । दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥१३॥
ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः । आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥१४॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः । खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥१५॥
स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय मर्मणि । निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥१६॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥१७॥
ततस्तत्प्रहतं बाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः । पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसम् ॥१८॥
स शरैरर्पितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः । रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥१९॥
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः । चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः ॥२०॥
सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा । वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावतः ॥२१॥
ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः संनतपर्वभिः । चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥२२॥
स दर्शनीयो बहुधा विच्छिन्नः काञ्चनो ध्वजः । जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामिवाज्ञया ॥२३॥

युद्ध करनेवाले उन दोनोंके बाणजालसे सूर्य छिप गये और वे प्रकाशित न हुए ॥ ९ ॥ खरने नालीक, नाराच और तीखे विकर्णि नामक शरोंसे रामचन्द्रको मारा, मानों अंकुशसे हाथी मारा जाता हो ॥ १० ॥ हाथमें धनुष लेकर रथपर बैठे हुए उस राक्षसको सब लोगोंने पाशधारी यमराजके समान देखा ॥ ११ ॥ सब सेनाको मारनेवाले, महापराक्रमी और पुरुषार्थसे भरे हुए रामचन्द्रको खरने उस समय थका हुआ जाना ॥ १२ ॥ सिंहके समान पराक्रमी और सिंहके समान चलनेवाले खरको देखकर रामचन्द्र कुछ भी भयभीत नहीं हुए, जैसे सिंह किसी छोटे पशुको देखकर भयभीत नहीं होता ॥ १३ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान विशाल रथपर बैठकर खर रामचन्द्रके पास गया जैसे पतिंगे आगके पास जाते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर महात्मा रामचन्द्रके बाण और धनुषको, मुट्ठी पकड़नेके स्थान पर, अपने हाथकी शीघ्रता दिखाता हुआ खरने काट दिया ॥ १५ ॥ पुनः दूसरे सात बाण लेकर, जो इन्द्रके वज्रके समान थे, रामचन्द्रके मर्मस्थानमें मारा ॥ १६ ॥ पुनः हजार बाणोंसे अमितपराक्रमी रामचन्द्रको पीड़ित करके खरने गर्जन किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सुन्दर पर्ववाले खरके छोड़े बाणोंसे कटा हुआ रामचन्द्रका सूर्यके समान उज्ज्वल कवच पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १८ ॥ रामचन्द्रका समस्त शरीर बाणोंसे बिंध गया । उस समय रामचन्द्र रणक्षेत्रमें धूम-रहित अग्निके समान मालूम पड़ने लगे ॥ १९ ॥ तदनन्तर शत्रुओंको नष्ट करनेवाले रामचन्द्रने खरके नाशके लिये दूसरा चढ़ा हुआ धनुष लिया । जिसकी ध्वनि बड़ी गंभीर थी ॥ २० ॥ महर्षि अगस्त्यने जो विशाल वैष्णव धनुष दिया था, उसको लेकर रामचन्द्र खरकी ओर दौड़े ॥ २१ ॥ नतपर्व, सुवर्णपंख बाणोंसे रामचन्द्रने रणमें खरकी ध्वजा काट दी ॥ २२ ॥ वह सोनेकी ध्वजा देखनेमें बड़ीही सुन्दर थी, वह पृथिवीपर गिर पड़ी, मानों

तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः । विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोयदैः ॥२४॥
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः । विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् ॥२५॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः संगृह्य परमाहवे । मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान् ॥२६॥
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत् । त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह ॥२७॥
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्भास्करोपमान् । जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥२८॥
रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान् । षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः ॥२९॥
त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः । द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः ॥३०॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव । त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम् ॥३१॥
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥३२॥

तत्कर्म रामस्य महारथस्य समेत्य देवाश्च महर्षयश्च ।
अपूजयन्प्राञ्जलयः प्रहृष्टास्तदा विमानाग्रगताः समेताः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे ऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

देवताओंके तिरस्कारसे सूर्य्य पृथिवीपर गिर पड़ा हो ॥ २३ ॥ खरने क्रोध करके रामचन्द्रके शरीरमें चार बाण मारे । मर्मस्थानोंको जाननेवाले खरने रामचन्द्रके हृदयमें मारा, जिस प्रकार हाथी तोमरसे मारे जाते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार खरके धनुषसे निकले अनेक बाणोंसे रामचन्द्र विध गये, उनका शरीर रुधिरसे भर गया, उस समय उन्होंने बहुत क्रोध किया ॥ २५ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र उस भयानक युद्धक्षेत्रमें धनुष लेकर प्रसिद्ध छ बाण छोड़े ॥ २६ ॥ एक बाण मस्तकपर, दो बाण दोनों बाहुओंपर, अर्द्धचन्द्रके समान टेढ़े तीन बाणोंसे छातीपर रामचन्द्रने मारा ॥ २७ ॥ पुनः क्रोध करके महातेजस्वी रामचन्द्रने सूर्यके समान चमकीले और तीखे तेरह नाराचोंसे राक्षसको मारा ॥ २८ ॥ एक बाणसे रथके पहिये, चार बाणोंसे उसके चित्रित घोड़े और छठे बाणसे खरके सारथिका मस्तक रामचन्द्रने युद्धमें काट दिया ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथका बम्बा, दो से रथका धुरा और बारह बाणोंसे खरका हाथ युक्त धनुष काट दिया ॥३०॥ धनुष कट गया, रथ टूट गया, घोड़े मारे गये और सारथि मारा गया, तब हाथमें गदा लेकर रामचन्द्रके सामने खर कूद पड़ा ॥ ३२ ॥ ३१ ॥ विमानके अग्रभागमें प्रसन्नतापूर्वक एकत्र होकर देवता और ऋषियोंने रामचन्द्रके इस कामकी प्रशंसा की ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अट्ठाइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् । मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता । कृतं ते दारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् । त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ ३ ॥
कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर । तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥
लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते । हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ॥ ५ ॥
वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । किं नु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥ ६ ॥
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः । ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥ ७ ॥
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः । घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥
नाचिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् । सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ ९ ॥
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् । अहमासादितो राज्ञा प्राणान्हन्तुं निशाचर ॥१०॥
अद्य भित्वा मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः । विदार्यापि पतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ॥११॥
ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः । तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि॥१२॥
अद्य त्वां निहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः । निरयस्थं विमानस्था ये त्वया निहताः पुरा ॥१३॥

रथहीन और गदा लेकर रणभूमिमें स्थित खरसे महातेजस्वी रामचन्द्रने पहले कोमल मालूम होनेवाले कठोर वचन बोले ॥ १ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे युक्त विशाल सेनाके जब तुम स्वामी थे, उस समय तुमने सबसे निंदित, बड़ाही क्रूर कर्म किया है ॥ २ ॥ प्राणियोंको उद्विग्न करनेवाला, क्रूर पापी, तीनों लोकोंका स्वामी भी हो तो वह नहीं रह सकता ॥३॥ लोकनिन्दित कठोर कर्म करनेवाला मनुष्य यदि घरमें आवे तो लोग घरमें आये दुष्ट सर्पके समान उसे मार डालते हैं ॥४॥ अविवेकसे, अथवा जान-बूझकर जो पाप करता है और प्रसन्न होकर उन पापोंसे निवृत्त नहीं होता, वह अपने पापोंका परिणाम शीघ्रही देखता है, जैसे ब्राह्मणी नामका कीड़ा ओलोंके कारण नष्ट होता है (कहते हैं कि ब्राह्मणी ओले खाकर मर जाती है) ॥ ५ ॥ राक्षस जो धर्माचरण करनेवाले तपस्वी दण्डक वनमें रहते हैं, उनको मारनेसे तुम लोगोंको क्या फल मिलेगा ॥ ६ ॥ पाप कर्म करनेवाले लोकनिन्दित, क्रूर मनुष्य, ऐश्वर्य पाकर भी बहुत दिनों तक नहीं रह सकते, जिस प्रकार नदी-तीरका खोखला जड़वाला वृक्ष ॥ ७ ॥ कर्ता अपने पापोंका कठोर फल अवश्य पाता है, जिस प्रकार वृक्ष, ऋतु आनेपर पुष्पित होते हैं ॥ ८ ॥ राक्षस, पाप कर्मोंके फल लोकमें बहुत देरसे नहीं मिलते, जिस प्रकार विषयुक्त अन्नके खानेका फल ॥ ९ ॥ निशाचर, लोकका अकल्याण करनेवाले पापियोंके मारनेके लिए राजाने मुझे वनमें भेजा है ॥१०॥ आज मेरे छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाण तुम्हारे शरीरको काटकर पृथिवीमें चले जायँगे, जिस प्रकार सर्प वल्मीकमें चले जाते हैं ॥ ११ ॥ जिन धर्मात्माओंको दण्डकारण्य वनमें तुमने खा डाला है, आज सेनाके साथ युद्धमें मर कर, तुम उनका अनुगमन करोगे ॥ १२ ॥ जिनको तुमने पहले मारा

प्रहरस्व यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम । अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा ॥१४॥
एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः । प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥१५॥
प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज । आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥१६॥
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः । कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥१७॥
प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्रियपांसनाः । निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे ॥१८॥
कुलं व्यपदिशन्वीरः समरे कोऽभिधास्यति । मृत्युकाले तु संप्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् ॥१९॥
सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम् । सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥२०॥
न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् । धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् ॥२१॥
पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव । त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः ॥२२॥
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम् । अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥२३॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते । त्वद्विनाशात्करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम् । खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥२५॥
खरबाहुप्रमुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा । भस्म वृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वागात्तत्समीपतः ॥२६॥

है, वे महर्षि विमानसे मेरे बाणोंके द्वारा मारे गये और नरकमें पड़े हुए तुमको देखेंगे ॥ १३ ॥ कुलाधम, जितना चाहो प्रहार करो, जो चाहो प्रयत्न करो। आज तालफलके समान तुम्हारा सिर मैं गिरा दूँगा ॥ १४ ॥ रामके ऐसा कहनेपर खरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। हँसता हुआ वह रामचन्द्रसे बोला ॥ १५ ॥ दसरथपुत्र राम, छोटे-छोटे राक्षसोंको युद्धमें मारकर स्वयं तुम अपनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो। यह तो कोई प्रशंसाकी बात नहीं है ॥ १६ ॥ जो बलवान् होते हैं, पराक्रमी होते हैं और तेजसे तेजस्वी होते हैं, वे नरश्रेष्ठ स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥ १७ ॥ जो छोटे हैं, चंचल हैं, वे ही क्षत्रियकलंक, निरर्थक अपनी तारीफ किया करते हैं, राम, जैसे तुम अपनी तारीफ कर रहे हो ॥१८॥ मृत्युके समान भयदायी रणमें बिना किसी प्रसंगके स्वयं अपने कुलका परिचय देकर कौन अपनी स्तुति कर सकता है ॥ १९ ॥ अतएव इस प्रशंसाके द्वारा तुमने सर्वथा अपनी लघुताही बतलायी, जिस प्रकार सुवर्णके समान मालूम पड़नेवाली दीप्त कुशकी आग ॥ २० ॥ पर्वतके समान अचल, गदा धारण करके और धातुओंसे चित्रित पर्वतके समान मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं, यह तुम नहीं जानते अर्थात् मेरे पराक्रमका तुम्हें ज्ञान नहीं है ॥ २१ ॥ पाशधारी यमराजके समान, गदाधारी मैं तुम्हारे और तीनों लोकोंके प्राण लेनेकी शक्ति रखता हूँ ॥ २२ ॥ यद्यपि तुम्हारे सम्बन्धमें बहुत सी बातें कहनी हैं, पर मैं नहीं कहता। शीघ्रही सूर्यास्त हो जायगा, जिससे युद्ध रुक जायगा ॥ २३ ॥ चौदह हजार राक्षसोंको तुमने मारा है, तुमको मारकर उनका बदला मैं चुकाऊँगा ॥ २४ ॥ इस प्रकार कहकर बड़े क्रोधसे खरने वह गदा रामचन्द्रपर चलायी, जो सोनेसे मढ़ी गयी थी और जो प्रदीप्त वज्रके समान थी ॥२५॥ खरकी छोड़ी हुई वह प्रदीप्त विशाल गदा वृक्षों और लताओंको जलाती हुई रामचन्द्रके

तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम्। अन्तरिक्षेगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥२७॥
सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले। गदा मन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः। स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम। शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमुपगर्जसि ॥ २ ॥
एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता। अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥
यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम्। राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ॥ ४ ॥
नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः। प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ॥ ५ ॥
अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम्। विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ॥ ६ ॥
पांसुरूषितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः। स्वप्स्यसे गां समाश्लिष्य दुर्लभां प्रमदामिव ॥ ७ ॥
प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने। भविष्यन्ति शरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ॥ ८ ॥

समीप आयी ॥ २६ ॥ मृत्युपाशके समान अपने पास आती हुई उस विशाल गदाको आकाशमें ही बाणोंसे रामचन्द्रने कई टुकड़े कर दिये ॥ २७ ॥ बाणसे कटी हुई वह गदा टुकड़े-टुकड़े होकर पृथिवीपर गिर पड़ी, मानो मन्त्र और औषधिके प्रयोगसे साँपिन पृथिवीपर गिरा दी गयी हो ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

धर्मप्रेमी रामचन्द्र, खरकी उस गदाको टुकड़े-टुकड़े करके हँसते हुए, घबड़ाए खरसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ राक्षसाधम, यही तुम्हारा बल सर्वस्व है, जिसे तुमने अभी दिखाया है तो तुम मुझसे कमजोर हो। झूठेही बढ़-बढ़कर बातें करते हो ॥ २ ॥ यह बाणसे कटी हुई तुम्हारी गदा भूमिपर पड़ी है। इस गदाने तुम्हारे विश्वासका अर्थात् इससे अवश्यही शत्रुको मारूँगा—इस विश्वासका—नाश किया इससे मालूम होता है कि तुम केवल बोलना जानते हो ॥ ३ ॥ तुमने जो यह कहा था कि तुमको मारकर मरे हुए वीर राक्षसोंका बदला चुकाऊँगा तुम्हारी वह बात भी झूठी हुई ॥ ४ ॥ नीच, क्षुद्र स्वभाव तथा मिथ्या व्यवहार रखनेवाले राक्षस, तुम्हारे प्राणोंको, जिस प्रकार गरुड़ने अमृत निकाला था, मैं निकालता हूँ ॥५॥ आज मेरे बाणोंसे कटे हुए तुम्हारे फेन और बुदबुदयुक्त रुधिरको पृथिवी पीवेगी ॥ ६ ॥ तुम्हारे समस्त शरीरमें धूल लग जायगी। तुम्हारी भुजाएँ पृथिवीपर कटकर गिर पड़ेंगी और दुर्लभ प्रमदाके समान पृथिवीका आलिंगन कर तुम सो जाओगे ॥ ७ ॥ राक्षस-कलंक, तुम्हारे चिरनिद्रामें सोनेपर यह दण्डक वन शरणा-

जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षस मच्छरैः। निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ॥९॥
अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः। बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः ॥१०॥
अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निरर्थिकाः। अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ॥११॥
नृशंसशील क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक। त्वत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥१२॥
तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं वने। खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वरः ॥१३॥
दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः। वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्योर्वश्यो न बुध्यसे ॥१४॥
कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये। कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः। स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः ॥१६॥
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन्। स तमुत्पाटयामास संदष्टदशनच्छदम् ॥१७॥
तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः। राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् ॥१८॥
तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान्। रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् ॥१९॥
जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः। निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥२०॥
तस्य बाणान्तराद्रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम्। गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः ॥२१॥

थियोंके लिए शरण देनेवाला होगा ॥ ८ ॥ जनस्थानमें रहनेवाले राक्षसोंके निवासस्थान, जब मेरे बाणके द्वारा नष्ट किए जाएंगे, तब मुनिगण सर्वत्र निर्भय होकर विचरण करेंगे ॥ ९ ॥ दूसरोंको भयभीत करनेवाली राक्षसियाँ अपने बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखी हो जायगी, उनके मुँह आँसूसे भींग जायगे और वे यहाँसे भाग जायँगी ॥ १० ॥ जिनके तुम्हारे समान पापी पति हैं, वे अपने कुलके अनुसार दुराचार करनेवाली स्त्रियाँ आज शोकका रस जान सकेंगी ॥ ११ ॥ क्योंकि अब वे निरर्थक हो गयी हैं, क्रूर स्वभाव, नीच, ब्राह्मणशत्रु, तुम्हारे डरसे डरे हुए मुनि अग्निमें हवन करते थे ॥ १२ ॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक बोलते हुए रामचन्द्रको झिड़िक कर क्रोधसे रूखे स्वरमें खर बोला ॥ १३ ॥ तुम तो बड़े अहंकारी मालूम पड़ते हो, जो भयके समयमें भी निर्भय बने हुए हो। जिसपर मृत्युकी छाया पड़ जाती है, वह नहीं जानता है कि क्या बोलना चाहिए, क्या न बोलना चाहिए ॥ १४ ॥ कालके कौरमें आये हुए मनुष्य नहीं जानते कि क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है, क्योंकि उनकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहकर रामचन्द्रकी ओर भौंहें तरेरकर उस राक्षसने पासही एक बहुत बड़ा सालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ वह रणमें अस्त्र बनानेके लिए कोई चीज ढूँढ़ रहा था। ओठ चबाकर उसने वह वृक्ष उखाड़ लिया॥१७॥महाबली राक्षसने गर्जन करके और हाथोंसे उखाड़कर वह वृक्ष रामचन्द्रपर फेंका और 'तुम मारे गये' यह कहा ॥ १८ ॥ प्रतापी रामचन्द्रने उस वृक्षको काटकर रणमें खरको मारनेके लिये तीव्र क्रोध किया ॥१९॥ उस समय रामचन्द्रके शरीरसे पसीना निकलने लगा, क्रोधसे आंखोंके प्रान्त भाग लाल होगये, उन्होंने हजारों बाणोंसे खरको छेदा ॥ २०॥ बाणसे छिदे हुए उसके अंगोंसे फेनवाला बहुत खून निकला, जिसप्रकार प्रस्रवण पर्वतसे धारा निकलती

विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे । मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥२२॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् । अपासर्पद्द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥२३॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् । खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥२४॥
स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता । संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥२५॥
स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः । रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥२६॥
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना । रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥२७॥
स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा । बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः । दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥२९॥
रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा । अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः ॥३०॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् । खरदूषणमुख्यानां निहतानि महामृधे ॥३१॥
अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः । अहो वीर्यमहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥३२॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम् । ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ॥३३॥
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् । एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ॥३४॥
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः । आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ॥३५॥

है ॥ २१ ॥ रामचन्द्रके बाणोंसे खर विकल हो गया, पर रुधिरकी गन्धसे मत्त होकर वह पुनः रामचन्द्रकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ अस्त्रवेत्ता रामचन्द्रने जब देखा कि रुधिरसे सना हुआ खर मेरी ही ओर आ रहा है, तब शीघ्र पराक्रम करनेवाले रामचन्द्र दो-तीन पैर हट गये ॥ २३ ॥ खरको मारनेके लिए अग्निके समान बाण रामचन्द्रने लिया, मानों दूसरा ब्रह्मदण्ड हो २४ ॥ देवराज बुद्धिमान इन्द्रका दिया हुआ बाण धर्मात्मा रामचन्द्रने खरपर छोड़ा ॥ २५ ॥ वज्रके टक्करके समान भयानक शब्द करनेवाला वह महाबाण, धनुष खींचकर रामचन्द्रने छोड़ा और वह खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ शरकी आगसे जलता हुआ वह खर जमीनपर गिरपड़ा, जिस प्रकार श्वेतारण्यमें अन्धकको शिवने जलाया था । अन्धकासुरको शिवजीने श्वेतारण्यमें मारा था, यह पुराणोंकी कथा है ॥ २७ ॥ वज्रके द्वारा वृत्र, फेनके द्वारा नमुचि, वज्रके द्वारा बलके समान वह खर रामचन्द्रके बाणोंसे निहत होकर गिर पड़ा ॥२८॥ इसी समय देवता और चारण एकत्र होकर दुन्दुभी बजाने लगे और पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ २९ ॥ प्रसन्न और विस्मित होकर उन लोगोंने रामचन्द्रपर पुष्पवृष्टि की, तीन मुहूर्तमें तीखे बाणोंसे रामचन्द्रने स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले खरदूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंको युद्धमें मारा ॥३०॥ ॥ ३१ ॥ आत्मविश्वासी रामचन्द्रका यह अद्भुत कर्म है, इनका अद्भुत पराक्रम है, विष्णुके समान इनकी दृढ़ता दीख पड़ती है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर देवता अपने स्थानको गये, तब राजर्षि और ब्रह्मर्षि एकत्र होकर आये ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रकी पूजा करके अगस्त्य आदि मुनि प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार बोले—महातेजस्वी पाकशासन इन्द्र इसीलिए शरभंगके पवित्र आश्रममें आये थे और इन्हीं पापी राक्षसोंके वधके लिए महर्षि तुमको उपाय करके यहां ले आये हैं ।

एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् । तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥३६॥
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः । एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ॥३७॥
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी । ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ॥३८॥
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः । तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ॥३९॥
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे । मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान्हतान् ।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥४०॥

ततस्तु तं राक्षससङ्घमर्दनं संपूज्यमानं मुदितैर्महात्मभिः ।
पुनः परिष्वज्य मुदान्विताननाबभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः । प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
जनस्थानस्थिता राजन्राक्षसा बहवो हताः । खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः ॥ २ ॥
एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव तेजसा ॥ ३ ॥
तेन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना । को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं नाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥

दसरथतनय, तुमने हम लोगोंका वह काम किया ॥ ३४, ३५, ३६ ॥ अब महर्षिगण दण्डकारण्यमें धर्मानुष्ठान करेंगे । इसी समय पर्वतकी कन्दरासे निकलकर लक्ष्मण और सीताने सुखपूर्वक आश्रममें प्रवेश किया । तदनन्तर, विजयी और महर्षियोंके द्वारा पूजित रामचन्द्रने आश्रममें प्रवेश किया । शत्रुओंको मारनेवाले और महर्षियोंको सुख देनेवाले रामचन्द्रकी लक्ष्मणने पूजा की ॥ ३७, ३८, ३९ ॥ राक्षस मारे गये, यह देखकर बड़ी प्रसन्नतासे सीताने अपने पतिका आलिंगन किया और रामको अक्षत देखकर सीता प्रसन्न हुई ॥ ४० ॥ राक्षसोंके समूहको नष्ट करनेवाले प्रसन्न महात्माओंके द्वारा पूजित पतिका, जानकीने प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन किया और वे अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३०॥

तदनन्तर अकम्पन नामका राक्षस शीघ्रताके साथ जनस्थानसे चला, वेगसे लंकामें जाकर रावणसे वह इस प्रकार बोला, ॥ १ ॥ राजन्, जनस्थानमें रहनेवाले बहुतसे राक्षस मारे गये । युद्धमें खर भी मारा गया, मैं यहां किसी तरह आया हूँ ॥ २ ॥ ऐसा कहनेपर क्रोधसे आँखें लालकर रावण अकम्पनसे बोला । मानो अपने तेजसे वह जलाना चाहता हो ॥ ३ ॥ किस मरनेकी इच्छा रखनेवालेने मेरे भयानक जनस्थानका नाश किया है, कौन इस समस्तलोकमें रहना नहीं चाहता । मेरा विरोध करके इन्द्र, कुवेर, यम और विष्णु भी सुखपूर्वक नहीं रह-

न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम्। प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन च विष्णुना ॥ ५ ॥
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम्। मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥
वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमपि चोत्सहे। दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसादित्यपावकौ ॥ ७ ॥
तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः। भयात्संदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम् ॥ ८ ॥
दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः। स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकम्पनः ॥ ९ ॥
पुत्रो दशरथस्यास्ते सिंहसंहननो युवा। रामो नाम महास्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः ॥१०॥
श्यामः पृथुयशाः श्रीमानतुल्यबलविक्रमः। हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः ॥११॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः। नागेन्द्र इव निःश्वस्य इदं वचनमब्रवीत ॥१२॥
स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह। उपायातो जनस्थानं ब्रूहि कच्चिदकम्पन ॥१३॥
रावणस्य पुनर्वाक्यं निशम्य तदकम्पनः। आचचक्षे बलं तस्य विक्रमं च महात्मनः ॥१४॥
रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्। दिव्यास्त्रगुणसंपन्नः परं धर्मं गतो युधि ॥१५॥
तस्यानुरूपो बलवान्रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनः। कनीयाँल्लक्ष्मणो भ्राता राकाशशिनिभाननः ॥१६॥
स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा। श्रीमान्राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् ॥१७॥
नैव देवा महात्मानो नात्र कार्या विचारणा। शरा रामेण तूत्सृष्टा रुक्मपुङ्खाः पतत्रिणः ॥१८॥
सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान्। येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः॥१९॥

सकते ॥ ४-५ ॥ मैं कालका काल हूँ, आगको भी जला सकता हूँ, मैं उत्साह रखता हूँ कि मृत्युको भी मार डालूँ ॥ ६ ॥ वायुका वेग अपने वेगसे बलपूर्वक रोक सकता हूँ, क्रोध करके मैं सूर्य और अग्निको भी जला सकता हूँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार दसग्रीवको क्रुद्ध देखकर हाथ जोड़कर और भयके कारण सन्देहयुक्त वचनसे, रावणसे, अकम्पनने अभय माँगा ॥ ८ ॥ राक्षस-श्रेष्ठ रावणने उसे अभय दिया, तब अकम्पन विश्वस्त होकर, सन्देहरहित वचन बोला ॥ ९ ॥ राजा दसरथके पुत्र युवा रामचन्द्र हैं, सिंहके समान उनके शरीरका गठन है, लम्बे कन्धे हैं, गोल और लम्बी भुजाएँ हैं ॥ १० ॥ वे श्याम वर्णके हैं, बड़े यशस्वी है, सुन्दर हैं, और अतुलनीय पराक्रमी हैं, उन्होंनेही जनस्थानमें खरके साथ दूषणको मारा है ॥ ११ ॥ अकम्पनके वचन सुनकर राक्षसाधिप रावण गजराजके समान सांस छोड़ताहुआ इस प्रकार बोला ॥१२॥ अकम्पन, कहो, क्या सब देवताओं और इन्द्रके साथ रामचन्द्र जनस्थानमें आया है ॥ १३ ॥ रावणके वचन सुनकर अकम्पनने पुनः महात्मा रामचन्द्रके बल और विक्रमका वर्णन किया ॥ १४ ॥ राम बड़े तेजस्वी और सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ हैं, उन्हें देवताओंके अस्त्रोंका अच्छा ज्ञान है, वे युद्धमें बड़े पराक्रमी हैं ॥ १५ ॥ उन्हींके समान बलवान उनका छोटा भाई लक्ष्मण है, पूर्णचन्द्र-माके समान उसका सुन्दर मुख है, उसकी आंखें लाल हैं, और नगाड़ेके समान उसका शब्द है ॥ १६ ॥ उसी अपने भाईके साथ रामचन्द्र हैं, मानों अग्नि वायुके साथ हो, उसी राजश्रेष्ठ रामचन्द्रने जनस्थानका नाश किया है ॥१७॥ कोई देवता या महात्मा न था, इसका विचार आप न करें, रामचन्द्रने सोना जड़े हुए और पाँखवाले बाण छोड़े थे ॥ १८ ॥ वे ही बाण पांचमुख

तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम् । इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ ॥२०॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् । गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम् ॥२१॥
अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः । शृणु राजन्यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम् ॥२२॥
असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः । आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥२३॥
सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् । असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥२४॥
भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः । वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥२५॥
संहृत्य वा पुनर्लोकान्विक्रमेण महायशाः । शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥२६॥
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया । रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥२७॥
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि । अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥२८॥
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा । श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता ॥२९॥
नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न च पन्नगी । तुल्या सीमन्तिनी तस्य मानुषी तु कुतो भवेत् ॥३०॥
तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने । सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति ॥३१॥
अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः । चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह ॥३२॥

वाले सर्प होकर राक्षसोंको खागये । डरे हुए राक्षस जिस मार्गसे जाते थे, उधरही अपने आगे रामचन्द्रको स्थित देखते थे । इस प्रकार हे निष्पाप, रामचन्द्रने आपके जनस्थानका विनाश किया ॥ १९ ॥२०॥ अकम्पनकी बात सुनकर रावण बोला—मैं लक्ष्मण और रामको मारनेके लिए जनस्थान जाऊंगा ॥ २१ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर अकम्पन बोला—राजन्, रामचन्द्रका बल और पराक्रम जैसा है वह यथार्थ आप मुझसे सुनें ॥ २२ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र यदि कुपित होकर रणक्षेत्रमें आवें तो पराक्रमके द्वारा उन्हें कोई रोक नहीं सकता । रामचन्द्र भरी नदीका वेग अपने बाणोंसे रोक सकते हैं, या अपनी इच्छाके अनुसार उसे चला सकते हैं ॥ २३ ॥ तारा, ग्रह और नक्षत्रोंके साथ आकाशको भी नष्ट कर सकते हैं, वे रामचन्द्र दुखमें पड़ी हुई समस्त पृथिवीका उद्धार कर सकते हैं, समुद्रका तीर काटकर समस्त संसारको डुबा सकते हैं, समुद्र और वायुके वेगको अपने शरोंसे रोक सकते हैं ॥ २५ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र अपने पराक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करसकते हैं, और पुनः वे समस्त संसारकी सृष्टि कर सकते हैं ॥२६॥ रावण, रामचन्द्रको तुम युद्धमें नहीं जीत सकते, समस्त राक्षसोंके साथ भी तुम उन्हें नहीं जीत सकते, जिस प्रकार पापी स्वर्गको नहीं जीत सकता ॥ २७ ॥ समस्त देवता और असुर भी मिलकर उनको नहीं मार सकते । उनके मारनेका मैं दूसरा उपाय बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २८ ॥ उनकी स्त्री सीता बड़ी सुन्दरी और युवती है, उसके अंग प्रत्यंग बड़े सुन्दर हैं । वह रत्नोंसे विभूषित स्त्रियोंमें एक रत्न हैं ॥ २९ ॥ देवी, गन्धर्वी, अप्सरा, पन्नगी कोई भी स्त्री सीताके समान नहीं है, फिर मानुषी सीताके समान कैसे होसकती है ॥ ३० ॥ उस घोर वनमें रामचन्द्रको धोखा देकर तुम उनकी स्त्रीको हर लाओ, सीताके विना रामचन्द्र जी नहीं सकते ॥ ३१ ॥ राक्षसाधिपति रावणने अकम्पनकी बातें पसन्द कीं । महाबाहु रावण सोचकर अकम्पन-

बाढं कल्यं गमिष्यामि एकः सारथिना सह। आनेष्यामि च वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ॥३३॥
तदेवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः। रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ॥३४॥
स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान्। चञ्चूर्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ॥३५॥
स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत्। मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥३६॥
तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च। अर्थोपहितया वाचो मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥३७॥
कच्चित्सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसाधिप। आशङ्के नाधिजाने त्वं यतस्तूर्णमुपागतः ॥३८॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः। ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥३९॥
आरक्षो मे हतस्तात रामेणाक्लिष्टकारिणा। जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम् ॥४०॥
तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे। राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥
आख्याता केन वा सीता मित्ररूपेण शत्रुणा। त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः ॥४२॥
सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे। रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति ॥४३॥
प्रोत्साहयति यश्च त्वां स च शत्रुरसंशयम्। आशीविषमुखाद्दंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया ॥४४॥
कर्मणानेन केनासि कापथं प्रतिपादितः। सुखसुप्तस्य ते राजन्प्रहृतं केन मूर्धनि ॥४५॥

से बोला ॥ ३२ ॥ ठीक है, कल सवेरे सारथिके साथ मैं अकेला जाऊंगा और प्रसन्नतापूर्वक जानकीको इस नगरीमें ले आऊँगा ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रावण गदहेके रथपर चढ़कर, जो सूर्यके समान प्रकाशमान था तथा जिससे सब दिशा प्रकाशित होरही थीं, चला । स्वर्गसे भी प्रशंसा पाया हुआ वह राक्षसराजका रथ मेघमें चन्द्रमाके समान चलता हुआ शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ वह दूर जाकर ताड़काके पुत्र मारीचके आश्रममें पहुँचा । मनुष्योंके लिए दुर्लभ भक्ष्य भोज्यके द्वारा मारीचने अपने राजाका सत्कार किया ॥ ३६ ॥ आसन और जलसे स्वयं राक्षसराजकी पूजा करके मारीच अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ३७ ॥ राक्षसाधिप, आपके सब लोगोंकी कुशल है, इसका मुझे निश्चय नहीं है, अतएव मैं शंकित हो रहाहूँ, आप शीघ्रतापूर्वक क्यों आये हैं, इसका भी कारण मैं नहीं समझ रहा हूँ ॥ ३८ ॥ मारीचके ऐसा कहनेपर महा· तेजस्वी और बोलनेमें चतुर रावण इस प्रकार बोला ॥ ३९ ॥ कठोर कर्म न करनेवाले रामचन्द्रने मेरे अन्तपाल (सीमाकी रक्षा करनेवाला सेनापति) को मार डाला, जो जनस्थान अवध्य था, उसको रामचन्द्रने मारडाला ॥ ४० ॥ मैं उस रामचन्द्रकी स्त्रीका हरण करना चाहता हूँ, तुम मेरी सहायता करो । राक्षसराजकी बातें सुनकर मारीच बोला ॥ ४१ ॥ किसने सीताके हरनेकी बात तुमसे कही है, वह तुम्हारा मित्ररूपी शत्रु है, वह कौन है जिसको तुमने बढ़ाया है और वह तुम्हारी बढ़ती देखना नहीं चाहता ॥ ४२ ॥ सीताको यहां ले आओ, यह कौन कह रहा है, मुझे बतलाओ , कौन राक्षसोंके गौरवका नाश करना चाहता है ॥ ४३ ॥ इस काममें जो तुम्हें प्रोत्साहित करता है, वह तुम्हारा निश्चय शत्रु है । सांपके मुंहसे उसकी दाढ़ तुम्हारे द्वारा उखड़वाना चाहता है ॥४४॥ राजन्, किस शत्रुने तुम्हें इस कुमार्गका उपदेश दिया है, सुखसे

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः ।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः स संयुगे राघवगन्धहस्ती ॥४६॥
असौ रणान्तःस्थितिसंधिवालो विदग्धरक्षोमृगहा नृसिंहः ।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः ॥४७॥
चापापहारे भुजवेगपङ्के शरोर्मिमाले सुमहाहवौघे ।
न रामपातालमुखेऽतिघोरे प्रस्कन्दितुं राक्षसराजयुक्तम् ॥४८॥
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु ॥४९॥
एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः । न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम् ॥५०॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश । हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १ ॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे । दृष्ट्वा पुनर्महानादान्ननाद जलदोपमा ॥ २ ॥

सोए हुए आपके मस्तकपर किसने यह आघात किया है ॥ ४५ ॥ रावण, वह रामचन्द्र गन्धहस्ती है (जिसकी गन्धसे दूसरे हाथी भाग जाते हैं), रणमें उसकी ओर देखाभी नहीं जासकता ॥ ४६ ॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न होना इसकी सूँढ़ है, इसका प्रताप मद है और सुन्दर दो हाथ इसके दाँत हैं ॥ ४७ ॥ यह मनुष्य-सिंह सो रहा है, इसको जगाना अच्छा नहीं । (सिंहके समान रामचन्द्रके धर्म ये हैं) रणस्थलमें इसका अवस्थान करनाही सन्धि और बाल हैं, रणचतुर राक्षसरूपी मृगोंको यह मारनेवाला है । शररूपी अंगोंसे यह पूर्ण है, तीखी तलवारही इसकी दांत है ॥ ४७ ॥ रामचन्द्र एक भयानक पातालमुख है (विना ओर छोरका खड्डा), धनुष उसके हिंसकजन्तु हैं, भुजाओंका वेग कीचड़ है, वाण तरंगे हैं, घनघोर संग्राम धारा है । उस भयानक रामरूपी पातालमुखमें गिरना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥ लंकेश्वर, आप प्रसन्न हों और लंकाको प्रसन्न करें, आप सुखसे लौट जायँ, आप अपनी स्त्रियोंके साथ रमण करें और रामचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ ॥ ४९ ॥ मारीचके ऐसा कहनेपर दसग्रीव लंका लौट आया और अपने उत्तम घरमें गया ॥ ५० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

भीमकर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको अकेले रामचन्द्रने मार डाला, यह शूर्पणखाने देखा ॥ १ ॥ रणमें दूषण, खर और त्रिशिराको मारे जाते देखकर मेघके समान घोर गर्जन

सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम् । जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ ३ ॥
सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् । उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ॥ ४ ॥
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने । रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । अजेयं समरे घोरं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
देवासुरविमर्देषु वज्राशनिकृतव्रणम् । ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥
विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम् । विशालवक्षसं वीरं राजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥
नद्धवैदूर्यसंकाशं तप्तकाञ्चनभूषणम् । सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥ ९ ॥
विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे । अन्यैः शस्त्रैः प्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम् ॥१०॥
अहताङ्गैः समस्तैस्तं देवप्रहरणैस्तदा । अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् ॥११॥
क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम् । उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम् ॥१२॥
सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारं यज्ञविघ्नकरं सदा । पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥१३॥
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः । कैलासं पर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् ॥१४॥

करनेवाली शूर्पणखा, शोकसूचक गर्जन करने लगी ॥ २ ॥ दूसरोंके द्वारा न होसकने योग्य रामचन्द्रका यह अद्भुत कर्म देखकर शूर्पणखा बहुत ही उद्विग्न हुई और रावणके द्वारा पालित लंकामें गयी ॥ ३ ॥ उसने अतितेजस्वी रावणको मन्त्रियोंके साथ सतमहलेपर बैठे देखा, जैसे इन्द्र देवताओंके साथ बैठे हों ॥ ४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान, सुवर्णके उत्तम आसनपर वह बैठा था । सोनेकी वेदीपर जलते हुए अग्निराशिके समान वह मालुम होता था ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, अन्यप्राणी तथा महात्मा ऋषियोंके द्वारा रणमें वह अजेय था, वह मुंह फैलाये यमराजके समान भयानक था ॥ ६ ॥ देवासुर संग्राममें वज्रके लगनेसे जिसके शरीरमें चिन्ह होगया है, ऐरावतके दांतोंके आघातका चिन्ह जिसकी छातीमें आजतक वर्तमान है ॥७॥ उसको बीस भुजाएँ हैं और दस मस्तक, उत्तम वस्त्र पहने हुए है, चौड़ी छाती है और राजाके चिन्होंसे युक्त है ॥८॥ वैदूर्यके समान उसका शरीर है, सोनेके गहने धारण किये हुए है, सुन्दर भुजाएँ हैं, सफेद दांत हैं, विशाल मुख है और पर्वतके समान ऊँचा है ॥९॥ विष्णुके साथ युद्धमें तथा दूसरे बड़े युद्धोंमें विष्णुके चक्रके सैकड़ों घाव तथा अन्य शस्त्रोंके प्रहारसे वह ताड़ित हुआ है ॥ १० ॥ वह देवताओंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे ताड़ित हुआ है । विकृत न होनेवाले समुद्रोंको भी वह विकृत करदेनेवाला है । तथा कार्योंको बड़ी शीघ्रतापूर्वक सम्पादित करता है ॥ ११ ॥ पर्वतोंको तोड़नेवाला, देवताओंको नष्ट करनेवाला, धर्मको विनाश करने वाला तथा परस्त्रियोंसे बलात्कार करनेवाला है ॥१२॥ वह समस्त दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग जानता है तथा यज्ञमें सदा विघ्न करता है । एक वार भोगवती नगरीमें जाकर वासुकिको परास्त कर ॥ १३ ॥ तक्षककी प्रिय स्त्रीको वह हर ले आया । कैलाश पर्वतपर जाकर कुवेरको जीत लिया और स्वेच्छानुसार चलनेवाला उनका पुष्पक विमान हर ले आया । कुवेरका चैत्ररथ नामक वन नलिनी नामकी उनकी दिव्य नगरी,

विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः । वनं चैत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् ॥१५॥
विनाशयति यः क्रोधाद्देवोद्यानानि वीर्यवान् । चन्द्रसूर्यौ महाभागावुत्तिष्ठन्तौ परंतपौ ॥१६॥
निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः । दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ॥१७॥
पुरा स्वयंभुवे धीरः शिरांस्युपजहार यः । देवदानवगन्धर्वपिशाचपतगोरगैः ॥१८॥
अभयं यस्य सङ्ग्रामे मृत्युतो मानुषादृते । मन्त्रैरभिष्टुतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ॥१९॥
हविर्धानेषु यः सोममुपहन्ति महाबलः । प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम् ॥२०॥
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् । रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥२१॥
राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् । तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥२२॥
आसने सूपविष्टं तं काले कालमिवोद्यतम् । राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम् ॥२३॥
उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला । रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् ॥२४॥

तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनं प्रदर्शयित्वा भयलोभमोहिता ।
सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणी महात्मना शूर्पणखा विरूपिता ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

इन्द्रका नन्दनवन जो पराक्रमी क्रोध करके नष्ट करदेता है, उदय होते हुए शत्रुतापी चन्द्रमा और सूर्यको पर्वतशृङ्गके समान जो रावण अपने हाथोंसे रोक देता है, जिस धीर रावणने दसहजार वर्षोंतक तपस्या करके अपने सिर शिवको चढ़ाए, देवता, दानव, गंधर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प इन सबसे, केवल मनुष्य छोड़कर, संग्राममें मृत्यु न होनेका जिसको अभयदान मिल चुका है, यज्ञोंमें द्विजातियोंके द्वारा जिसकी स्तुति मंत्रोंसे होती है, ॥ १४, १५, १६, १७, १८, १९ ॥ जो महाबली सोम तयार करनेके स्थानमें जाकर सोम नष्ट कर देता है, जो समाप्तप्राय यज्ञमें विघ्न डालता है, जो ब्राह्मणोंको मारता है, जो क्रूर कर्म करनेवाला है, जो कठोर है, दयारहित है, प्राणियोंका सदा अकल्याण किया करता है, सब प्राणियोंको भय देनेवाला तथा रोआनेवाला है, उस क्रूर महाबली भाईको राक्षसीने देखा। वह दिव्य वस्त्र-आभूषण पहिने हुए था तथा दिव्य मालासे सुशोभित था ॥ २०, २१, २२ ॥ आसनपर बैठे हुए पौलस्त्यकुलनन्दन राक्षसराजको शूर्पणखाने देखा, जो प्रलयकालमें प्रदीप्त यमराजके समान मालूम होता था ॥ २३ ॥ भयसे घबड़ायी हुई राक्षसी शूर्पणखा शत्रुओंको मारनेवाले और मन्त्रियोंसे युक्त रावणके समीप जाकर बोली ॥ २६ ॥ निडर होकर चारो ओर घूमनेवाली, भय और लोभसे मोहित, रामचन्द्रके द्वारा विरूप की गयी शूर्पणखा अपनेको दिखाकर रावणसे कठोर वचन बोली, जिस-रावणकी विशाल आंखें प्रदीप्त होरही थीं ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

ततः शूर्पणखा दीप्ता रावणं लोकरावणम् । अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः । समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥ २ ॥
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् । लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः । स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ ४ ॥
अयुक्तचारं दुर्दर्शमस्वाधीनं नराधिपम् । वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥ ५ ॥
ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः । ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ६ ॥
आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः । अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि ॥ ७ ॥
त्वं तु बालस्वभावश्च बुद्धिहीनश्च राक्षस । ज्ञातव्यं तन्न जानीषे कथं राजा भविष्यसि ॥ ८ ॥
येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर । अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ ९ ॥
यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः । चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥१०॥
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्युतः । स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥११॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥१२॥

क्रोधसे भरी हुई शूर्पणखा लोकको पीड़ित करनेवाले रावणसे अमात्योंके बीचमें यह कठोर वचन बोली ॥१॥ स्वाधीन होकर, बिना रोक-टोकके कामभोगमें तुम मस्त हो रहे हो और राक्षसोंके लिए कैसा कठोर भय उपस्थित हुआ है, यह नहीं जानते हो ॥२॥ जो राजा स्त्री आदिमें आसक्त होकर कामपरवश हो जाता है, लोभी हो जाता है, प्रजा उस राजाका आदर नहीं करती, जिस प्रकार श्मशानकी अग्निका ॥३॥ जो राजा समयपर कार्योंको स्वयं नहीं करता, वह राजा उन कार्यों तथा अपने राज्यके साथ नष्ट हो जाता है॥४॥ जिस राजाके गुप्त दूत नहीं होते, जो राजा उचित समयपर प्रजासे मिलता नहीं और जो स्त्रियोंके अधीन है, वैसे राजाका त्याग प्रजा दूरहीसे करती है, जिस प्रकार हाथी नदीके पंकका ॥५॥ जो राजा अपने अधीन देशोंकी रक्षा नहीं करता, उस राजाकी वृद्धि नहीं होती, जिस प्रकार समुद्रमें पर्वतोंकी वृद्धि नहीं होती ॥ ६ ॥ अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार रखने वाले, देवता गन्धर्व और दानवोंसे तुमने विरोध किया है और तुम्हारा कोई गुप्त दूत नहीं है, तुम स्त्रियोंमें आसक्त, इस प्रकारके चंचल तुम कैसे राजा हो सकोगे ॥७॥ तुम्हारी बुद्धि नहीं है, तुम्हारा स्वभाव बालकोंसा है, जो बात तुम्हें जाननी चाहिए वह तुम नहीं जानते, फिर तुम राजा कैसे हो सकोगे ॥ ८ ॥ श्रेष्ठ विजयी रावण, जिन राजाओंके गुप्त दूत, खजाना और नीति उसके अधीन नहीं रहते, वे साधारण मनुष्योंके समान हो जाते हैं॥९॥ चारोंके द्वारा राजालोग दूरकी सब बातोंको जान लिया करते हैं, इसी कारण वे दीर्घचक्षु कहे जाते हैं ॥ १० ॥ तुम्हारे मन्त्री भी मूर्ख ही हैं, अतएव तुमने गुप्तदूत नहीं नियुक्त किये हैं, अतएव मारे गये अपने बन्धुओं तथा जनस्थानकी तुम्हें कुछ भी खबर नहीं है ॥ ११ ॥ भीमकर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः । धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा ॥१३॥
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस । विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥१४॥
तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् । व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥१५॥
अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितं नरम् । क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥१६॥
नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च । क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥१७॥
शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः । न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥१८॥
उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा । एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥१९॥
अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः । कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥२०॥
नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा । व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥२१॥
त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः । यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान्वधः ॥२२॥

परावमन्ता विषयेषु सङ्गवान्न देशकालप्रविभागतत्त्ववित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये विपन्नराज्यो नचिराद्विपत्स्यते ॥२३॥

और दूषणके साथ खरको एक रामचन्द्रने मार डाला ॥ १२ ॥ ऋषियोंको अभयदान दिया, दण्डकारण्यको कुशली बना दिया । पुण्यात्मा रामने इस प्रकार जनस्थानको नष्ट किया ॥ १३ ॥ पर तुम लोभी हो, स्त्रियोंमें आसक्त हो, विषयभोगके अधीन हो, अतएव तुम्हारे राज्यमें जो भय हुआ है, उसकी तुम्हें खबर नहीं है ॥ १४ ॥ जो राजा अपने अमात्योंके विषयमें कठोर होता है, उन्हें बहुत थोड़ा देता है, सदा असावधान रहता है, अहंकारी होता है और छिपकर बुराइयाँ करता है, उस राजाके दुःखमें उसकी प्रजा साथ नहीं देती ॥ १५ ॥ जो राजा बहुत ही अहंकारी होता है, किसीकी बात नहीं सुनता, अपनेको सबसे ऊँचा समझता है तथा क्रोधी होता है, वैसे राजाको विपत्तिके समय अपने ही आदमी मार डालते हैं ॥ १६ ॥ जो राजा अपने कर्तव्योंको नहीं करता, भयसे नहीं डरता, वह शीघ्रही राज्यच्युत होकर तृणके समान दीन हो जाता है ॥ १७ ॥ सूखी लकड़ीसे, मिट्टीके ढोकोंसे तथा धूलसे भी लोगोंकी कार्यसिद्धि होती है, पर राज्यभ्रष्ट राजासे कुछ भी नहीं होता ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पहना हुआ कपड़ा उपभोग की हुई माला, निरर्थक है, उसी प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा भी, समर्थ होकर भी, निरर्थक हो जाता है ॥ १९ ॥ जो राजा सदा सावधान रहता है । अपने राज्यकी पूरी खबर रखता है, जिसका अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार रहता है, वह कृतज्ञ धर्मात्मा राजा बहुत दिनोंतक राज करता है ॥ २० ॥ जो इन आँखोंसे सोता भी हो पर नीतिकी आँखोंसे जागता रहे, जिसके क्रोध और प्रसन्नताका फल प्रकट हो, लोकमें उस राजाकी पूजा होती है ॥ २१ ॥ रावण, तुम तो बुद्धिहीन हो, तुममें ये गुण नहीं है, राक्षसोंका ये बहुत बड़ा वध तुम्हारे चारोंने अभी तुम्हें नहीं बतलाया ॥ २२ ॥ दूसरोंका अपमान करनेवाले, विषयोंमें आसक्त, देश और कालका विभाग न रखनेवाले, गुण-दोषके निश्चयमें बुद्धिका उपयोग न करनेवाले तुम शीघ्रही विपत्ति उठाओगे और राज्यको भी विपत्तिग्रस्त करोगे ॥ २३ ॥

इति स्वदोषान्परिकीर्तितांस्तया समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेनचान्वितो विचिन्तयामास चिरं स रावणः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः । अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥ १ ॥
कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः । किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥ २ ॥
आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः । खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥
तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता । इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥
ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे । दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ५ ॥
कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः । चक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् ॥ ६ ॥
दीप्तान्क्षिपति नाराचान्सर्पानिव महाविषान् । नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ७ ॥
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे । हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥
इन्द्रेणेवोत्तमं सस्यमाहतं त्वश्मवृष्टिभिः । रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ ९ ॥
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना । अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः ।
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ॥१०॥

राक्षसोंके राजा रावणने शूर्पणखाके बतलाये अपने दोषोंका बुद्धिसे विचार किया । धन, दर्प, और बलसे युक्त रावण बहुत देरतक सोचता रहा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

अमात्योंके बीचमें शूर्पणखाको इसप्रकार कठोर वचन कहती देखकर रावणने क्रोधसे पूछा ॥१॥ यह कौन राम है, कैसा है, कैसा उसका स्वरूप है, कैसा पराक्रम है, किस लिए दुर्गम दण्डकारण्य वनमें वह आया है ॥ २ ॥ उसके पास कौनसा अस्त्र है, जिससे उसने राक्षसोंको मारा । खर, दूषण, त्रिशिराको उसने युद्धमें मारा ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी यह सब तुम मुझसे ठीक-ठीक कहो । तुमको विरूप किसने बनाया ? राक्षसराजके यह कहनेपर राक्षसी शूर्पणखा बहुतही क्रुद्ध हुई ॥ ४ ॥ तदनन्तर, सिलसिलेसे वह रामचन्द्रका वर्णन करने लगी-रामचन्द्रकी भुजाएँ लम्बी हैं और आँखें बड़ी हैं, वे कृष्णमृगचर्म धारण करते हैं ॥ ५ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्र कामके समान सुन्दर हैं, सुवर्णमण्डित, चक्रके समान गोला धनुष खींचकर वे महाविषधर सर्पके समान, जलते हुए अपने बाणोंको फेंकते हैं, भयानक बाणोंको लेते समय, छोड़ते समय और धनुषको खींचते समय युद्धमें महाबली रामचन्द्रको कोई नहीं देखता, किन्तु उनकी बाणवृष्टिसे मरे सैनिकही देखे जाते हैं ॥ ६, ७, ८ ॥ जिस प्रकार इन्द्र पत्थरोंकी वृष्टि करके उत्तम खेतीको नष्ट कर देता है, उसी

एका कथंचिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना । स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना ॥११॥
भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः । अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥१२॥
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली । रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥१३॥
रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना । धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ॥१४॥
सा सुकेशी सुनासोरुः सुरूपा च यशस्विनी । देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा ॥१५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा । सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥१६॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी । तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥१७॥
यस्य सीता भवेद्भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् । अभिजीवेत्स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् ॥१८॥
सा सुशीला वपुः श्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि । तवानुरूपा भर्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः ॥१९॥
त्वां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् । भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् ॥२०॥
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज । तां तु दृष्ट्वाद्य वैदेहीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥२१॥
मन्मथस्य शराणां च त्वं विधेयो भविष्यसि । यदि तस्यामभिप्रायो भार्यात्वे तव जायते ।
शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः ॥२२॥
रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद्राक्षसेश्वर । क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम रावण ॥२३॥

प्रकार भीमपराक्रमी चौदह हजार राक्षसोंको पैदल अकेले रामने तीन घड़ीमें अपने तीखे बाणोंसे मार डाला । दूषणके साथ खरको भी मार डाला । ऋषियोंको अभयदान दिया और दण्डकारण्य-का कल्याण किया ॥ ९, १०, ११ ॥ स्त्रीवध हो जानेके भयसे प्रसिद्ध महात्मा रामचन्द्रने मेरा अपमान करके मुझे छोड़ दिया ॥ १२ ॥ रामका भाई तेजस्वी गुणोंमें उन्हींके समान है । वह राम-चन्द्रका प्रेमी और उनका भक्त है, लक्ष्मण उसका नाम है ॥ १३ ॥ क्रोधी, अजेय, जीतनेवाला, पराक्रमी, बुद्धिमान और बलवान है, रामका वह दहिना बाहु है और बाहर रहनेवाले प्राण है ॥ १४ ॥ विशालाक्षी, पूर्णचन्द्रानना रामचन्द्रकी धर्मपत्नी सीता है, वह अपने पतिके प्रिय करनेमें सदा तत्पर रहती है ॥ १५ ॥ उसके सुन्दर केश, सुन्दर नाक और ऊरू हैं, उसका सुन्दर रूप है, यशस्विनी सीता दूसरी लक्ष्मीके समान इस वनकी देवी मालूम होती है ॥ १६ ॥ तपाये सुवर्णके समान उसका रङ्ग है, लाल और ऊँचे उसके नख हैं, वह सुन्दरी जनकराजकी कन्या है और उसका नाम सीता है ॥ १७ ॥ देवी, गन्धर्वी, यक्षी और किन्नरी, इस प्रकारकी कोई भी स्त्री पहले मैंने पृथिवीमें नहीं देखी थी ॥ १८ ॥ सीता जिसकी स्त्री हो, वह प्रसन्न होकर जिसका आलिंगन करे, वही लोकोंमें इन्द्रसे भी बढ़कर जीवित रहे (अन्यथा जीवन निष्फल है) ॥ १९ ॥ वह सुशील है, उसके सुन्दर अंग हैं, उसके समान सुन्दरी पृथिवीमें दूसरी नहीं है, तुम्हारे योग्य वही स्त्री है और उसके योग्य तुमही पति हो ॥ २० ॥ विशालजघना (जंघा), पीनोच्चपयोधरा सीताको तुम्हारी स्त्री बनानेके लिए ले आने मैं गयी थी ॥ २१ ॥ क्रूर लक्ष्मणने मुझे विरूप कर दिया । पूर्ण चंद्रानना सीताको देखकर तुम कामदेवके बाणोंके वशवर्ती हो जाओगे । यदि तुम्हारी इच्छा उसको स्त्री बनानेकी हो तो रामचन्द्रको जीतनेके लिए शीघ्र ही दहिना पैर बढ़ाओ अर्थात्

विज्ञायैषामशक्तिं च क्रियतां च महाबल। सीता तवानवद्याङ्गी भार्यात्वे राक्षसेश्वर ॥२४॥
निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगतान्निशाचरान्।
खरं च दृष्ट्वा निहतं च दूषणं त्वमद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम्। सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह ॥ १ ॥
तत्कार्यमनुगम्यान्तर्यथावदुपलभ्य च। दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् ॥ २ ॥
इतिकर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः। स्थिरबुद्धिस्ततो रम्यां यानशालां जगाम ह ॥ ३ ॥
यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः। सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति ॥ ४ ॥
एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः। रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥
कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम्। पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ॥ ६ ॥
मेघप्रतिमनादेन स तेन धनदानुजः। राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥ ७ ॥
स श्वेतवालव्यजनः श्वेतच्छत्रो दशाननः। स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥ ८ ॥

युद्धके लिए प्रस्थान करो ॥ २२, २३ ॥ राक्षसेश्वर, यदि तुम्हें मेरी यह बात पसन्द हो तो निःशंक होकर मेरे कहनेके अनुसार काम करो ॥ २४ ॥ राम असमर्थ हैं, इस बातको जान करके, हे महाबल राक्षसेश्वर, सुन्दरी सीताको अपनी स्त्री बनानेका प्रयत्न करो ॥ २५ ॥ रामचन्द्रने सीधे चलनेवाले अपने बाणोंसे जनस्थानके रहनेवाले समस्त राक्षसोंको मार डाला, खर और दूषणको भी मार डाला, यह जानकर तुम अपना कर्तव्य निश्चित करो ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

शूर्पणखाके वे रोंगटे खड़े कर देनेवाले वचन सुनकर, मन्त्रियोंसे सलाह लेकर तथा उन्हें आज्ञा देकर रावण चला ॥ १ ॥ रावणने सीताहरणरूपी कार्यपर अपने मनमें विचार किया, उसके गुण-दोषोंका निश्चय किया, उसके बलाबलको स्थिर किया, अन्तमें उसने निश्चय किया कि यह काम करनाही चाहिए। ऐसा निश्चय करके वह रथशालामें गया ॥ २३ ॥ धीरे-धीरे रथशालामें जाकर राक्षसाधिपति रावणने रथ जोतनेके लिए सारथिसे कहा ॥ ४ ॥ शीघ्र काम करनेवाले सारथिने रावणके ऐसा कहनेपर एकही क्षणमें, उसके मनके अनुसार उत्तम रथ जोता ॥ ५ ॥ इच्छानुसार चलनेवाले, रत्नभूषित, सोनेके रथपर रावण बैठा। उस रथमें पिशाचोंके-से मुखवाले और सुवर्णभूषण गधे जुते हुए थे ॥ ६ ॥ मेघके समान शब्द करनेवाले, उस रथपर चढ़कर कुबेरका छोटा भाई, राक्षसराज रावण समुद्रको पार करके चला ॥७॥ श्वेत चँवर और श्वेतछत्रसे रावण सुशोभित था। वह स्वयं वैदूर्य (लाल और काले रङ्गका मणि) के समान था और सुवर्ण-

दशग्रीवो विंशतिभुजो दर्शनीयपरिच्छदः। त्रिदशारिर्मुनीन्द्रघ्नो दशशीर्ष इवाद्रिराट् ॥ ९ ॥
कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः। विद्युन्मण्डलवान्मेघः सबलाक इवाम्बरे ॥१०॥
सशैलसागरानूपं वीर्यवानवलोकयन्। नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः ॥११॥
शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः। विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥१२॥
कदल्यटविसंशोभं नारिकेलोपशोभितम्। सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः ॥१३॥
अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः। नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किंनरैश्च सहस्रशः ॥१४॥
जितकामैश्च सिद्धैश्च चारणैश्चोपशोभितम्। आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥१५॥
दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम्। क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिः सहस्रशः ॥१६॥
सेवितं देवपत्नीभिः श्रीमतीभिरुपासितम्। देवदानवसङ्घैश्च चरितं त्वमृताशिभिः ॥१७॥
हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः संप्रसादितम्। वैदूर्यप्रस्तरं स्निग्धं सान्द्रं सागरतेजसा ॥१८॥
पाण्डुराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च। तूर्यगीताभिजुष्टानि विमानानि समन्ततः ॥१९॥
तपसा जितलोकानां कामगान्यभिसंपतन्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव ददर्श धनदानुजः ॥२०॥

के भूषण पहने हुए था ॥ ८ ॥ दस मस्तक, बीस भुजाएँ, सुन्दर वस्त्र, देवताओंका शत्रु और मुनियोंका हन्ता रावण दस शिखरवाले पर्वतराजके समान मालूम होता था ॥ ९ ॥ इच्छानुसार चलनेवाले रथपर बैठकर राक्षसाधिप रावण आकाशके उस मेघके समान मालूम होता था, जिसके मण्डलमें बिजली हो और बलाका (बकपंक्ति) हो॥१०॥ पराक्रमी रावण पर्वत, समुद्र, तथा समुद्र-तीरके हजारों पुष्पफलपूर्ण वृक्षोंसे भरे स्थानोंको देखता हुआ चला ॥ ११ ॥ कमलोंवाले तालाब, जिनमें ठंढा और मीठा जल था, जिनके चारो ओर बड़े-बड़े आश्रम थे, जिन आश्रमोंमें वेदियाँ थीं, ॥ १२ ॥ केलेका बन जो नारिकेलवनसे सुशोभित हो रहा था, फूले हुए ताल, तमाल और साल वृक्षोंसे जो पूर्ण थे ॥ १३ ॥ बहुत स्वल्प भोजन करनेवाले ऋषि जहाँ विद्यमान थे, नाग, देवता, गंधर्व और किन्नर जहाँ हजारोंकी संख्यामें वर्तमान थे ॥ १४ ॥ वासनाओंको जीतने-वाले सिद्ध चारणोंसे जो स्थान शोभित था, ब्रह्माके पुत्र बालब्रह्मचारियों, माष नामक ब्रह्म-चारियों, बालखिल्यों और सूर्यकी किरण पीकर रहनेवालोंसे जो स्थान सुशोभित था, ॥ १५ ॥ दिव्य आभरण, दिव्य माला तथा दिव्य रूपवाली, तरह-तरहकी क्रीड़ा करनेवाली हजारों अप्स-राओंसे जो स्थान सुशोभित था, ॥ १६ ॥ देवपत्नियाँ जहाँ निवास करती थीं, अतएव जो स्थान नितान्त सुन्दर हो गया था और जहाँ अमृत पीनेवाले देवता और दानवोंका दल रहता था, ॥१७॥ हंस, क्रौंच आदि पक्षियोंसे जो स्थान भरा हुआ था, सारसोंसे जो प्रसन्न हो रहा था, समुद्रके प्रभावसे वैदूर्यके समान पत्थर नितान्त मनोरम हो गये थे, ॥ १८ ॥ जहाँ चारो ओर बड़े-बड़े विमान फैले हुए थे, जो सफेद और विशाल थे, जिनमें दिव्य मालाएँ लगी हुई थीं, तथा गाना बजाना हो रहा था, ॥ १९ ॥ तपस्यासे जिन लोगोंने सब लोकोंमें आने-जानेका अधिकार प्राप्त किया है, उनके विमानोंको, तथा गंधर्व और अप्सराओंको रावणने देखा ॥ २० ॥

निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः । वनानि पश्यन्सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च ॥२१॥
अगुरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च । तक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम् ॥२२॥
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च । मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः ॥२३॥
शैलानि प्रवरांश्चैव प्रवालनिचयांस्तथा । काञ्चनानि च शृङ्गाणि राजतानि तथैव च ॥२४॥
प्रस्रवाणि मनोज्ञानि प्रसन्नान्यद्भुतानि च । धनधान्योपपन्नानि स्त्रीरत्नैरावृतानि च ॥२५॥
हस्त्यश्वरथगाढानि नगराणि विलोकयन् । तं समं सर्वतः स्निग्धं मृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥२६॥
अनूपे सिन्धुराजस्य ददर्श त्रिदिवोपमम् । तत्रापश्यत्स मेघाभं न्यग्रोधं मुनिभिर्वृतम् ॥२७॥
समन्ताद्यस्य ताः शाखाः शतयोजनमायताः । यस्य हस्तिनमादाय महाकायं च कच्छपम् ॥२८॥
भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाम महाबलः । तस्य तां सहसा शाखां भारेण पतगोत्तमः ॥२९॥
सुपर्णः पर्णबहुलां बभञ्जाथ महाबलः । तत्र वैखानसा माषा वालखिल्या मरीचिपाः ॥३०॥
आजा बभूवुर्धूम्राश्च संगताः परमर्षयः । तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनाम् ॥३१॥
भग्नामादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ । एकपादेन धर्मात्मा भक्षयित्वा तदामिषम् ॥३२॥
निषादविषयं हत्वा शाखया पतगोत्तमः । प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महामुनीन् ॥३३॥
स तु तेन प्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः । अमृतानयनार्थं वै चकार मतिमान्मतिम् ॥३४॥
अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वा रत्नगृहं वरम् । महेन्द्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतं ततः ॥३५॥

चन्दनोंके हजारों वन, जिनकी जड़ोंसे गोंद निकल रही थी और जिनसे नाककी तृप्ति होती थी, रावणने देखे ॥ २१ ॥ अगरूप्रधान वनों और उपवनोंको, उत्तम फलवाले सुगन्धित वृक्षोंके वनोंको तथा अंकोल वृक्षोंके वनोंको रावणने देखा ॥ २२ ॥ समुद्रके तीरपर तमालके फूल, मरिचोंके गुच्छे और मोतियोंके ढेरको सूखते हुए देखा ॥ २३ ॥ पत्थरोंके समूह, श्रेष्ठ मूँगोंकी राशि, सोने और चाँदियोंके शिखर, सुन्दर, अद्भुत और स्वच्छ झरने, धन-धान्य, सुन्दरी स्त्रियाँ, हाथी रथ आदिसे युक्त नगरोंको रावणने देखा । वहाँकी भूमि समतल और उत्तम थी, कोमल वायु बह रही थी ॥ २४, २५, २६ ॥ समुद्रके तीरपर रावणने स्वर्गके समान यह दृश्य देखा । मेघके समान बहुत बड़ा एक वटवृक्ष उसने देखा, जिसे घेरकर बहुतसे मुनि बैठे थे ॥ २७ ॥ जिसकी शाखाएँ, सौ योजन लम्बी थीं, एक विशालकाय हाथी और कछुआ लेकर एक बार गरुड़ खानेके लिये उसकी शाखापर आये, पक्षिराजके गरुड़के भारसे उस वृक्षकी वह बहुत पत्तोंवाली शाखा टूट गयी । उस शाखामें वैखानस माष, वालखिल्य और मरीचि नामके ब्रह्माके पुत्र तथा धूम्रपान करनेवाले श्रेष्ठ ऋषि थे । उनकी रक्षाके लिए सौ योजन लम्बी और टूटी हुई उस शाखाको लेकर तथा एक पैरकी सहायतासे हाथी और कछुएका माँस खाकर और उस शाखासे निषाद देशको मारकर पक्षिराज गरुड़ने उन मुनियोंकी रक्षा की और वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८, २९, ३० ॥ ३१, ३२, ३३ ॥ उस आनन्दसे गरुड़का पराक्रम दूना होगया । बुद्धिमान गरुड़ने अमृत ले आनेकी इच्छा की ॥ ३४ ॥ लोहेके सिकड़ तोड़कर, रत्नोंके बने घरको तोड़कर, इन्द्रके घरमें गुप्त

तं महर्षिगणैर्जुष्टं सुपर्णकृतलक्षणम् । नाम्ना सुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ॥३६॥
तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः । ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥३७॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम् । ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥३८॥
स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा । मारीचेनार्चितो राजा सर्वकामैरमानुषैः ॥३९॥
तं स्वयं पूजयित्वा च भोजनेनोदकेन च । अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४०॥
कच्चित्ते कुशलं राजँल्लङ्कायां राक्षसेश्वर । केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेव इहागतः ॥४१॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥३५॥

षट्त्रिंश सर्गः ३६

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः । आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः ॥ १ ॥
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम । दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे ॥ २ ॥
त्रिशिराश्च महाबाहू राक्षसः पिशिताशनः । अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ॥ ३ ॥
वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसाः । बाधमाना महारण्ये मुनीन्ये धर्मचारिणः ॥ ४ ॥
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥

रूपसे रखा हुआ अमृत गरुड़ ले आए ॥ ३५ ॥ रावणने उस सुभद्र नामक वटवृक्षको देखा, जहाँ महर्षियोंका दल वर्तमान था और जो गरुड़के द्वारा चिन्हित हुआ था ॥ ३६ ॥ नदीपति समुद्रके उस पार जाकर पवित्र और रमणीय एकाग्र वनमें उसने एक आश्रम देखा ॥ ३७ ॥ कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाला, जटाधारी, नियमित आहार करनेवाला मारीच नामक राक्षसको उसने देखा ॥ ३८ ॥ रावण वहाँ आया, मारीचने अलौकिक उपचारोंके द्वारा राजा रावणकी विधिवत् पूजा की ॥ ३९ ॥ भोजन और जलसे स्वयं उनकी पूजा करके मारीच अर्थयुक्त वचन उनसे बोला ॥ ४० ॥ राक्षसेश्वर, आपकी लंकामें कुशल तो है, किस कारण आप पुनः शीघ्रही यहाँ आये ॥ ४१ ॥ मारीचके ऐसा कहने पर बोलनेमें चतुर तेजस्वी रावण इस प्रकार बोला ॥४२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

भाई मारीच, मैं जो कह रहा हूँ, वह सुनो । मैं बहुतही दुखी हूँ । इस समय तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ गति हो ॥ १ ॥ तुम जनस्थानको जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर, महाबाहु दूषण और मेरी बहिन शूर्पणखा रहती है ॥ २ ॥ महाबाहु त्रिशिरा राक्षस, जो माँस खानेवाला है तथा और भी युद्धमें उत्साह रखनेवाले बहुतसे वीर राक्षस वहाँ रहते हैं ॥ ३ ॥ ये राक्षस मेरी आज्ञासे वहाँ रहते हैं और उस घोर वनमें धर्मात्मा मुनियोंको दुःख देते हैं ॥ ४ ॥ भीमकर्म करनेवाले खरकी

ते त्विदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः । संगताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ॥ ६ ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः । तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ॥ ७ ॥
अनुक्त्वा परुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः । चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥
निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना । खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ॥ ९ ॥
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः । पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ॥१०॥
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः । अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः॥११॥
त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः । येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् ॥१२॥
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता । अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ॥१३॥
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव । त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल ॥१४॥
भ्रातृभिश्च सुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिन्तये । तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस ॥१५॥
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव । उपायतो महाञ्शूरो महामायाविशारदः ॥१६॥
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर । शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥१७॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः । आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥१८॥
त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् । गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥१९॥

आज्ञाके अनुसार चलनेवाले, चौदह हजार वीर राक्षस वहां रहते हैं ॥ ५ ॥ जनस्थानमें रहनेवाले वे महाबली राक्षस रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करनेवाले खर आदि राक्षसोंका रामचन्द्रसे युद्ध हुआ, युद्धमें क्रोध करके रामचन्द्रने बिना कुछ कठोर वचन कहे ही धनुषपर बाण चढ़ाये और प्रखरतेजा चौदह हजार राक्षसोंके उस पैदल मनुष्यने अपने दीप्त बाणोंसे मार डाला । युद्धमें उसने खर और दूषणको भी मार डाला ॥ ७, ८, ९, ॥ त्रिशिराको भी मार कर उसने दण्डक वनको निर्भय बना दिया । पिताने क्रोध करके स्त्रीके साथ उसे निकाल दिया है, उसका जीवन क्षीण हो गया है ॥ १० ॥ वही क्षत्रियकलंक राम इस सेनाका मारनेवाला है । वह अशील, कर्कश, तीक्ष्ण, लोभी और अजितेन्द्रिय है ॥ ११ ॥ उस अधर्मात्माने क्षत्रियधर्मका त्याग किया है, वह प्राणियोंका अहितकारी है, क्योंकि बिना विरोधके ही बलके घमंडमें आकर मेरी बहिनके कान और नाक काट डाले हैं और उसको विरूप बना दिया है । देवकन्याके समान सुन्दरी उसकी स्त्री सीताको जनस्थानसे बलपूर्वक मैं ले आऊँगा, इस काममें तुम मेरी सहायता करो । तुम, अथवा मेरे भाई सहायक होकर यदि मेरे साथ रहें तो समस्त देवताओंको भी मैं कोई चीज नहीं समझ सकता । अतएव, तुम मेरी सहायता करो । हे राक्षस, तुम समर्थ हो ॥ १२. १३, १४, १५ ॥ पराक्रममें, युद्धमें तुम्हारे समान कोई नहीं है, तुम बड़े वीर हो, बड़े उपाय तुम्हे मालुम हैं और अनेक प्रकारकी माया जानते हो ॥ १६ ॥ हे निशाचर, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ. वह काम सुनो, जिसमें मेरे कहनेसे तुम्हें सहायता करनी पड़ेगी ॥ १७ ॥ सुवर्णका मृग बनकर, जिसमें चाँदीके बिन्दु हों, तुम रामचन्द्रके आश्रमके पास सीताके सामने घूमो ॥ १८ ॥ मृगके रूपमें तुमको देखकर सीता

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् । निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥२०॥
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते । विस्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥२१॥
तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः । शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव च ॥२२॥
ओष्ठौ परिलिहञ्शुष्कौ नेत्रैरनिमिषैरिव । मृतभूत इवार्तस्तु रावणं समुदैक्षत ॥२३॥
स रावणं त्रस्तविषण्णचेता महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यं हितं च तस्मै हितमात्मनश्च ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ २ ॥
न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् । अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् । अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा । अपि सीतानिमित्तं च न भवेद्व्यसनं महत्॥ ५ ॥

अवश्यही लक्ष्मण और अपने पतिको तुम्हें पकड़नेके लिए कहेगी ॥ १९ ॥ उन दोनोंके चले जाने पर शून्य आश्रमसे, विना बाधाके सुखपूर्वक मैं सीताको हर लाऊँगा, जिस प्रकार राहु चन्द्रमाके प्रकाशको हरता है ॥ २० ॥ तदनन्तर स्त्रीके हरी जानेके कारण दुखित रामचन्द्रपर सुखपूर्वक खूब कृतार्थ मनसे प्रहार कर सकूँगा ॥ २१ ॥ रावणकी बातें सुनकर महात्मा मारीचका मुँह सूख गया और वह डर गया ॥ २२ ॥ सूखे ओठोंको चाटता हुआ अनिमिष नेत्रोंसे मृतकके समान दुखी मारीचने रावणको देखा ॥ २३ ॥ रामके पराक्रमको जाननेवाला भयभीत दुखीचित्त मारीच हाथ जोड़कर रावणसे यथार्थ वचन बोला, जो रावण और मारीच दोनोंके लिए हितकारी था ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

राक्षसेन्द्रका वह वचन सुनकर, वाक्यार्थ समझनेमें चतुर महातेजा मारीच उससे बोला ॥ १ ॥ राजन्, प्रिय बोलनेवाले मनुष्य सदा मिला करते हैं, पर अप्रिय हितकारी वचन बोलनेवाला और सुननेवाला दुर्लभ है ॥ २ ॥ इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी तथा सर्व गुण-युक्त रामचन्द्रको अवश्यही तुम नहीं जानते, क्योंकि तुम्हारा गुप्त दूत तो है नहीं और तुम चंचल हो ॥ ३ ॥ समस्त राक्षसोंका कल्याण हो, क्रोध करके रामचन्द्र सब राक्षसोंका नाश न कर दें ॥४॥ सीता क्या तुम्हारी मृत्युके लिए तो नहीं उत्पन्न हुई है, सीताके कारण बहुत बड़ा संकट न

अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् । न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥
त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः । आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥ ७ ॥
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन । न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥
न च धर्मगुणैर्हीनः कौशल्यानन्दवर्धनः । न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ९ ॥
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्याः सत्यवादिनम् । करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥१०॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च । हित्वा राज्यं च भोगाँश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥११॥
न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः । अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२॥
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः । राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥१३॥
कथं नु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा । इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१४॥
शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे । रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि ॥१५॥
धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणः । चापबाणधरं तीक्ष्णं शत्रुसेनापहारिणम् ॥१६॥
राज्यं सुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः । नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि ॥१७॥
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा । न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥१८॥

उपस्थित हो ॥ ५ ॥ स्वेच्छाचारी और निरंकुश तुमको राजा पाकर, यह लंकापुरी समस्त राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट होगी ॥६॥ तुम्हारे समान स्वेच्छाचारी और पापी विचार रखनेवाला मूर्ख राजा, अपना, अपने स्वजनोंका तथा अपने राष्ट्रका नाश करता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्र, पिताके द्वारा निर्वासित नहीं हुए हैं । वे मर्यादा लंघन करनेवाले, लोभी, दुःशील और कलंकी क्षत्रिय नहीं हैं ॥ ८ ॥ वे धर्म और गुणोंसे हीन नहीं हैं, वे कौसल्याको आनन्द देनेवाले हैं, वे किसीके उद्वेजक नहीं हैं, किन्तु सब प्राणियोंके हितकारी हैं ॥ ९ ॥ केकयीने उनके सत्यवादी पिताको ठग लिया, इससे पिताको सत्यवादी बनानेके लिए वन आये हैं ॥ १० ॥ केकयी और राजा दसरथके प्रिय करनेके लिए राज्य और राज्य-सम्बन्धी भोगोंको छोड़कर दण्डक वनमें आये हैं ॥ ११ ॥ भाई, रामचन्द्र कठोर नहीं हैं, मूर्ख नहीं हैं और अजितेन्द्रिय नहीं हैं । तुमने जो झूठी बाते सुनी हैं, वह तुम्हें नहीं कहनी चाहिए ॥ १२ ॥ रामचन्द्र शरीरधारी धर्म हैं, वे सज्जन और सत्य पराक्रमी हैं, देवताओंके राजा इन्द्रके समान वे समस्त लोकके राजा हैं ॥ १३ ॥ जो जानकी रामचन्द्रके तेजसे रक्षित हो रही है, सूर्यकी प्रभाके समान बलपूर्वक तुम उसका हरण करना कैसे चाहते हो ॥ १४ ॥ राम प्रदीप्त अग्निके समान हैं, बाण ही उनकी ज्वाला हैं, धनुष और तलवार ईंधन है उस अनतिक्रमणीय अग्निमें तुम सहसा कैसे प्रवेश कर सकोगे ॥ १५ ॥ रामचन्द्र यमराजके समान हैं, धनुष उनका फैलाया हुआ दीप्त मुख है, बाण प्रकाश है, चाप और बाण वे धारण किए हुए हैं, वे कठोर और शत्रु सेनाका विनाश करनेवाले हैं । तुम अपना राज्य, सुख तथा प्रिय जीवनका त्याग करके उनके पास क्यों जाना चाहते हो ॥ १६, १७ ॥ वे एक अप्रमेय तेज हैं, जानकी जिनकी स्त्री है, रामचन्द्रके धनुषके आश्रयमें रहनेवाली सीताका हरण तुम नहीं कर

तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी । प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥१९॥
न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया । दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥२०॥
किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप । दृष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तमुपजीवितम् ॥२१॥
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् । स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः ॥२२॥
मन्त्रयित्वा स धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः । दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य वलावलम् ॥२३॥
आत्मनश्च वलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः । हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि ॥२४॥
अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे समागमं कोसलराजसूनुना ।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमं क्षमं च युक्तं च निशाचराधिप ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥
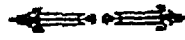
अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

कदाचिदप्यहं वीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् । वलं नागसहस्रस्य धारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । भयं लोकस्य जनयन्किरीटी परिघायुधः ॥ २ ॥
व्यचरन्दण्डकारण्यमृषिमांसानि भक्षयन् । विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः ॥ ३ ॥

सकते ॥ १८ ॥ सिंहके समान छातीवाले, नरसिंह रामचन्द्रकी वह भार्या उनके प्राणोंके समान प्रिय है और वह उनकी अनुगामिनी है। उन ओजस्वीकी स्त्री सीताका हरण तुम नहीं कर सकते, क्योंकि वह प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाके समान है ॥ १९, २० ॥ राक्षसाधिप, यह व्यर्थका उद्योग तुम क्यों करना चाहते हो, इससे तुमको क्या लाभ होगा, रामचन्द्र युद्धमें जिस समय तुमको देखेंगे, उसी समय तुम अपना अन्त समझो ॥ २१ ॥ अपना जीवन, सुख तथा दुर्लभ राज्यकी रक्षाके लिए विभीषण तथा अन्य समस्त धर्मात्मा मन्त्रियोंसे सलाह करके तुम कर्तव्य निश्चय करो, दोषों और गुणोंका वलावल सोच लो ॥ २२, २३ ॥ अपने और रामचन्द्रके वलका विचार करो, अपना हित सोचो, उसके वाद जो उचित समझो सो करो ॥ २४ ॥ मैं तो समझता हूँ कि कोसलराजपुत्र रामचन्द्रके साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है। हे राक्षसाधिप, योग्य और क्षमा करने योग्य यह मेरी अच्छी वात सुनो ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

किसी समय, अधिक पराक्रम होनेके कारण मैं इस पृथिवीका पर्यटन करता था, हजार हाथियोंके समान मुझमें वल था और पर्वतके समान मैं ऊँचा था ॥ १ ॥ नील मेघके समान मेरा वर्ण था और सुवर्णकुण्डल मैं धारण किए हुए था, मस्तकपर किरीट पहने हुए था, परिघ मेरा आयुध था, लोग मुझको देखकर डरजाते थे ॥ २ ॥ ऋषियोंका मांस खाता हुआ मैं दण्डकारण्यमें विचरण करता था। महामुनि धर्मात्मा विश्वामित्र मुझसे बहुत डरगये थे ॥ ३ ॥ वे राजा

स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् । अयं रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः ॥ ४ ॥
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर । इत्येवमुक्तो धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥ ५ ॥
प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महामुनिम् । ऊनद्वादशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ॥ ६ ॥
कामं तु मम तत्सैन्यं मया सह गमिष्यति । बलेन चतुरङ्गेण स्वयमेत्य निशाचरम् ॥ ७ ॥
वधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रुं तव यथेप्सितम् । एवमुक्तः स तु मुनी राजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
रामान्नान्यद्बलं लोके पर्याप्तं तस्य रक्षसः । देवतानामपि भवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥
आसीत्तव कृतं कर्म त्रिलोकाविदितं नृप । काममस्ति महत्सैन्यं तिष्ठत्विह परंतप ॥१०॥
बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे । गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम् । जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम् ॥१२॥
तं तथा दण्डकारण्ये यज्ञमुद्दिश्य दीक्षितम् । बभूवोपस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥१३॥
अजातव्यञ्जनः श्रीमान्बालः श्यामः शुभेक्षणः । एकवस्त्रधरो धन्वी शिखी कनकमालया ॥१४॥
शोभयन्दण्डकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा । अदृश्यत तदा रामो बालचन्द्र इवोदितः ॥१५॥
ततोऽहं मेघसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । बली दत्तवरो दर्पादाजगामाश्रमान्तरम् ॥१६॥
तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः । मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसंभ्रान्तश्चकार ह ॥१७॥

दसरथके पास जाकर बोले—ये रामचन्द्र यज्ञके समय सावधान होकर मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ मारीच राक्षससे मुझे बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया है, ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा दसरथने महाभाग, महामुनि विश्वामित्रको इसप्रकार उत्तर दिया—ये रामचन्द्र बारह वर्षसे भी छोटे हैं, अस्त्र-शस्त्रोंकी भी शिक्षा अभी इन्हें नहीं मिली है ॥ ५, ६, ॥ मेरी सेना मेरे साथ जायगी, इस चतुरंगिणी सेनाके साथ स्वयं जाकर, मैं आपके शत्रु राक्षसका—जैसा आप चाहते हैं, बध करूँगा। राजाके ऐसा कहनेपर मुनि उनसे इस प्रकार बोले ॥ ७ ॥ उस राक्षसके लिए रामके अतिरिक्त और दूसरा कोई बली नहीं है। आपने युद्धोंमें देवताओंकी सहायता की है। आपने जो अद्भुत कर्म किये हैं, वे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं। आपके पास सेना भी बहुत है, पर वह सब यहीं रहे ॥ ९-१० ॥ तेजस्वी रामचन्द्र बालक हैं, फिर भी उसको दण्ड दे सकते हैं। परन्तप, मैं रामको लेकर जाता हूँ, आपका कल्याण हो ॥११॥ ऐसा कहकर और उस राजपुत्रको लेकर परम प्रसन्न विश्वामित्र अपने आश्रमको गये ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने दण्डकारण्यमें यज्ञकी दीक्षा ली और राम अपना अद्भुत धनुष लेकर वहाँ उपस्थित हुए ॥ १३ ॥ उस समय रामचन्द्रको मूंछें नहीं आयी थी, वे बालक थे, एक वस्त्र धारण किये हुए थे, हाथोंमें धनुष था, सुन्दर शिखा थी, सोनेकी माला गलेमें थी। वे शुभेक्षण श्याम रामचन्द्र अपने दीप्त तेजसे दण्डकारण्यको शोभित करते हुए नवोदित बालचन्द्रके समान दीख पड़े ॥ १४, १५ ॥ सुवर्णकुण्डल धारण करनेवाला, मेघके समान विशाल और बली मैं अहंकारसे उस आश्रममें आया, क्योंकि देवताओंके द्वारा अवध्य होनेका वर मुझे ब्रह्मासे मिला था ॥१६॥ आश्रममें मेरे प्रवेश करते ही रामचन्द्रने धनुष उठा

अवजानन्न संमोहाद्बालोऽयमिति राघवम् । विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः ॥१८॥
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः । तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने ॥१९॥
नेच्छता तात मां हन्तुं तदा वीरेण रक्षितः । रामस्य शरवेगेन निरस्तो भ्रान्तचेतनः ॥२०॥
पातितोऽहं तदा तेन गम्भीरे सागराम्भसि । प्राप्य संज्ञां चिरात्तात लङ्कां प्रति गतः पुरीम् ॥२१॥
एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्ते निपातिताः । अकृतास्त्रेण रामेण बालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२२॥
तन्मया वार्यमाणस्तु यदि रामेण विग्रहम् । करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य न शिष्यसि ॥२३॥
क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम् । रक्षसां चैव संतापमनर्थं चाहरिष्यसि ॥२४॥
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नविभूषिताम् । द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते ॥२५॥
अकुर्वतोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् । परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥२६॥
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान्दिव्याभरणभूषितान् । द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौ तव दोषात्तु राक्षसान् ॥२७॥
हतदारान्सदारांश्च दश विद्रवतो दिशः । हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान् ॥२८॥
शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् । प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वमसंशयम् ॥२९॥
परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् । प्रमदानां सहस्राणि तव राजन्परिग्रहे ॥३०॥
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान् । मानं वृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ॥३१॥

लिया और बिना घबराये हुए उसपर रौंदा चढ़ा दिया ॥ १७ ॥ अज्ञानवश मैं रामचन्द्रको जान नहीं सका, उनको बालक समझकर विश्वामित्रकी वेदीकी ओर शीघ्रतापूर्वक मैं दौड़ा ॥ १८ ॥ उस समय रामचन्द्रने शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तीक्ष्ण बाण छोड़ा जिससे सौ योजन समुद्रमें आकर मैं गिरा ॥ १९ ॥ भाई, उस समय रामचन्द्रने मेरे मारनेकी इच्छा न की। उस वीरने मेरी रक्षा की। उनके बाण-वेगसे मैं अचेतन होकर दूर फेंक दिया गया, और मैं उस समय अथाह समुद्रजलमें आ गया, पुनः होश होनेपर मैं लंकापुरी गया ॥२०, २१ ॥ इस प्रकार शस्त्रोंका ज्ञान न रखनेवाले बालक पुण्यात्मा रामचन्द्रने मुझे छोड़ दिया और मेरे सहायकोंको मार डाला ॥२२॥ मैं तुमको रोक रहा हूँ, फिर भी यदि तुमने रामके साथ वैर बढ़ाया तो बहुत बड़ी विपत्तिमें फँसोगे और शीघ्र तुम्हारा नाश हो जायगा ॥ २३ ॥ आनन्दभोग करनेवाले, नाच तमाशा देखने वाले राक्षसोंको तुम दुःख देओगे और उनकी मृत्यु बुलाओगे ॥२४॥ सीताके कारण, कोठा अटारी-वाली तथा अनेक रत्नोंसे भूषित लंकापुरीका विनाश तुम शीघ्र ही देखोगे ॥ २५ ॥ जो स्वयं पाप नहीं करते, शुद्ध हैं वे भी पापियोंके पापसे नष्ट होजाते हैं, जिस प्रकार सर्पोंके तालाबमें रहनेवाली मछलियाँ ॥२६॥ तुम अपने दोषसे शरीरमें दिव्य चन्दन धारण करनेवाले तथा दिव्य आभरणोंसे आभूषित राक्षसोंको भूमिमें पड़े देखोगे ॥२७॥ तुम देखोगे कि जो राक्षस बच गये है, वे अशरण होकर, कई स्त्रियोंके साथ, कई बिना स्त्रियोंके, दसो दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥२८॥ तुम देखोगे कि लंकापुरी बाणोंसे भर गयी है, उसमें आग लग गयी है, उसके भवन जल रहे हैं ॥ २९ ॥ परस्त्रीके संसर्गसे बढ़कर पाप दूसरा नहीं है। राजन्, तुम्हारे अन्तःपुरमें तो हजारों स्त्रियाँ हैं, ॥ ३० ॥ आप अपनी ही स्त्रीमें प्रसन्न रहें, आप अपने कुल, राक्षसों, मान, उन्नति, राज्य तथा

कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च । यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम् ॥३२॥
निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि ।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो यमक्षयं रामशरास्तजीवितः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

एवमस्मि तदा मुक्तः कथंचित्तेन संयुगे । इदानीमपि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व यदुत्तरम् ॥ १ ॥
राक्षसाभ्यामहं द्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः । सहितो मृगरूपाभ्यां प्रविष्टो दण्डकावने ॥ २ ॥
दीप्तजिह्वो महादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृङ्गो महाबलः । व्यचरन्दण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण । अत्यन्तघोरो व्यचरँस्तापसाँस्तान्प्रधर्षयन् ॥ ४ ॥
निहत्य दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । रुधिराणि पिबँस्तेषां तन्मांसानि च भक्षयन् ॥ ५ ॥
ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् । तदा रुधिरमत्तोऽहं व्यचरं दण्डकावनम् ॥ ६ ॥
तदाहं दण्डकारण्ये विचरन्धर्मदूषकः । आसादयं तदा रामं तापसं धर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥
वैदेहीं च महाभागां लक्ष्मणं च महारथम् । तापसं नियताहारं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ८ ॥

प्रिय अपने जीवनकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ राजन्, यदि तुम अपनी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ तथा मित्रों-के साथ, , बहुत दिनोंतक रहना चाहते हो, तो रामचन्द्रके साथ विरोध मत करो ॥ ३२ ॥ मित्र होकर मैं तुम्हें कह रहा हूँ । यदि तुम जबरदस्ती सीताका हरण करोगे तब अपने बान्धवोंके साथ रामचन्द्रके बाणोंसे मर कर यमलोक जाओगे ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें रामचन्द्रने किसी प्रकार मुझे छोड़ दिया । उसके बाद जो अद्भुत बात हुई वह सुनो ॥ १ ॥ वैसी दशा होनेपर भी मेरे मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं आयी । मृगरूप धारण करनेवाले दो राक्षसोंके साथ मैं एक बार दण्डकारण्यमें गया ॥२॥ मेरी जीभ लपलपा रही थी, दाँत लम्बे थे और सींगें तीखी । मैं मांस खाता हुआ दण्डकारण्यमें भ्रमण करने लगा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रके स्थान, नदियोंके घाट तथा देव वृक्षोंके पास अत्यन्त भयानक मैं तपस्वियोंको डर-वाता हुआ भ्रमण करने लगा ॥ ४ ॥ दण्डकारण्यमें धर्मात्मा तपस्वियोंको मारकर, मैं उनका रुधिर पीने और उनका मांस खाने लगा ॥ ५ ॥ ऋषियोंका मांस खाता हुआ, वनमें रहनेवालों-को भयभीत करता हुआ, रुधिर पानेसे मत्त बना हुआ, क्रूर मैं दण्डकारण्यमें विचरण करने लगा ॥ ६ ॥ उस समय धर्मका नाश करनेवाला मैं दण्डकारण्यमें घूमता हुआ, तपस्वी धर्मके पालन करनेवाले रामचन्द्रके समीप गया ॥ ७ ॥ महाभागा वैदेही और महारथ, तपस्वी लक्ष्मण

सोऽहं वनगतं रामं परिभूय महाबलम् । तापसोऽयमिति ज्ञात्वा पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥
अभ्यधावं सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृङ्गो मृगाकृतिः । जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तं प्रहारमनुस्मरन् ॥१०॥
तेन त्यक्तास्त्रयो बाणाः शिताः शत्रुनिवर्हणाः । विकृष्य सुमहच्चापं सुपर्णानिलतुल्यगाः ॥११॥
ते बाणा वज्रसंकाशाः सुघोरा रक्तभोजनाः । आजग्मुः सहिताः सर्वे त्रयः संनतपर्वणः ॥१२॥
पराक्रमज्ञो रामस्य शठो दृष्टभयः पुरा । समुत्क्रान्तस्ततो मुक्तस्तावुभौ राक्षसौ हतौ ॥१३॥
शरेण मुक्तो रामस्य कथंचित्प्राप्य जीवितम् । इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः ॥१४॥
वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥१५॥
अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण । रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥१६॥
राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर । दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः ॥१७॥
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण । रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे ॥१८॥
अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् । बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥१९॥
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु रावण । न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि ॥२०॥
बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः । परेषामपराधेन विनष्टा सपरिच्छदाः ॥२१॥

वहीं थे, जो सब प्राणियोंके हितकारी, और नियमित आहार करते हैं ॥ ८ ॥ दान्त और महाबली वनवासी रामके पराक्रमको मैं भूल गया। उनको तपस्वी समझकर तथा पूर्व वैरका स्मरण कर तीखी सींघवाला मृगा मैं उनको मारनेके लिए बड़े क्रोधसे उनकी ओर दौड़ा । मैंने कुछ अधिक विचार नहीं किया। उनका पहला प्रहार मुझे स्मरण था ॥ ९, १० ॥ शत्रुओंको मारनेवाले, तीखे तीन बाण रामचन्द्रने अपने महान धनुष खींचकर छोड़े, जो गरुड़ और वायुके समान शीघ्र चलनेवाले थे ॥ ११ ॥ वज्रके समान भयानक रक्त पीनेवाले, वे तीनों बाण साथही आये ॥ १२ ॥ धूर्त मैं, रामचन्द्रका पराक्रम पहलेसे ही जानता था, अतएव भयभीत होकर मैं भाग गया और बच गया। वे दोनों राक्षस मारे गये ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके बाणसे किसी तरह बचकर मैंने जीवन पाया और तभीसे बुरे कमाको छोड़कर योगाभ्यासी तपस्वी हो गया हूँ ॥ १४ ॥ मैं प्रत्येक वृक्षमें चीर, कृष्णमृगचर्म और धनुष धारण करनेवाले रामचन्द्रको पाशहस्त यमराजके समान देखता हूँ ॥ १५ ॥ भयभीत होकर एक बार हजारों रामचन्द्र देखता हूँ, यह समस्त वन मुझे राममय दीखता है ॥ १६ ॥ यद्यपि यहाँ रामचन्द्र नहीं हैं, फिर भी राक्षसेश्वर, मैं उन्हींको देखता हूँ। स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मैं घबड़ा जाता हूँ और प्रलाप करने लगता हूँ ॥ १७ ॥ रावण, रामचन्द्रसे डरे हुए मुझको रकारादि रथ, रत्न आदि शब्द भयभीत कर देते हैं ॥ १८ ॥ मैं रामचन्द्रके प्रभावको जानता हूँ, उनसे तुम्हारा युद्ध करना अनुचित है। रामचन्द्र बली और नमुचिको भी मार सकते हैं ॥ १९ ॥ रावण, चाहे तुम रामसे युद्ध करो चाहे तुम उन्हे क्षमा कर दो, पर यदि मुझे देखना चाहो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न करो ॥ २० ॥ धर्माचरण करनेवाले, योगनिष्ठ बहुतसे अनपराधी

सोऽहं परापराधेन विनशेयं निशाचर । कुरु यत्ते क्षमं तत्त्वमहं त्वां नानुयामि वै ॥२२॥
रामश्च हि महातेजा महासत्त्वो महाबलः । अपि राक्षसलोकस्य भवेदन्तकरोऽपि हि ॥२३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः । अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ॥२४॥
इदं वचो बन्धुहितार्थिना मया यथोच्यमानं यदि नाभिपत्स्यसे ।
सबान्धवस्त्यक्ष्यसि जीवितं रणे हतोऽद्य रामेण शरैरजिह्मगैः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः । उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥ १ ॥
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः । अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥ २ ॥
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते । वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥ ३ ॥
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे । मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥ ४ ॥
यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा । स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥ ५ ॥

अपने साथियोंके साथ दूसरोंके अपराधसे विनष्ट हो गये हैं ॥ २१ ॥ पर मैं दूसरेके अपराधसे विनष्ट होना नहीं चाहता । तुम जो उचित समझो करो । मैं इस काममें तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता ॥ २२ ॥ राम बड़े तेजस्वी, बड़े पराक्रमी और बलवान हैं। वे समस्त राक्षसोंका नाश कर सकते हैं ॥ २३ ॥ यदि शूर्पणखाके कहनेसे खरने जनस्थानपर चढ़ाई की और पुण्य कर्मोंके करनेवाले रामचन्द्रने उसे मार डाला तो इसमें रामचन्द्रका क्या अपराध है । इसका निर्णय तुम्हीं करो ॥ २४ ॥ तुम मेरे बन्धु हो, तुम्हारे हितकी इच्छासे मैं ये बातें तुमसे कह रहा हूँ । यदि तुम न मानोगे तो सीधे चलनेवाले रामचन्द्रके बाणोंसे युद्धमें अपने बान्धवोंके साथ मारे जाओगे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

मारीचके ये वचन जो उचित और मानने लायक थे, रावणने ग्रहण नहीं किये, जिस प्रकार मरनेवाला मनुष्य औषधि नहीं लेता ॥ १ ॥ पथ्य और हित बोलनेवाले मारीचसे राक्षसाधिप रावण कठोर और अनुचित वचन बोला, क्योंकि वह कालसे प्रेरित था ॥ २ ॥ कुलहीन मारीच, तुमने जो ये अयुक्त बातें कही हैं, वे मेरे लिए नितान्त निष्फल हैं, ऊसरमें बोये बीजके समान हैं ॥ ३ ॥ मूर्ख, पापी और विशेषकर मनुष्य रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए उद्यत मुझको, ये तुम्हारे वाक्य रोक नहीं सकते ॥ ४ ॥ एक स्त्री केकयीके वचन सुनकर जो मित्र,

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः । प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥ ६ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते । न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ७ ॥
दोषं गुणं वा संपृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि । अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ८ ॥
संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता । उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥
वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम् । उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः ॥१०॥
सावमर्दं तु यद्वाक्यमथवा हितमुच्यते । नाभिनन्देत तद्राजा मानार्थी मानवर्जितम् ॥११॥
पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः । अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥१२॥
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् । धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर ॥१३॥
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा। त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमाश्रितः ॥१४॥
अभ्यागतं तु दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् । गुणदोषौ न पृच्छामि क्षयं चात्मनि राक्षस ॥१५॥
मयोक्तमपि चैतावत्त्वां प्रत्यमितविक्रम । अस्मिंस्तु स भवान्कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१६॥
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम । सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ॥१७॥
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर । प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥१८॥

माता, पिता और राज्यको छोड़कर वन चला आया है, उस, खरको मारनेवाले रामचन्द्रके प्राणोंसे भी प्रिय सीताका हरण युद्धमें मैं अवश्य करूँगा। सो भी तुम्हारे सामने ॥ ५, ६ ॥ मारीच, यह मेरा निश्चित विचार है, इसको इन्द्र देवता, या असुर कोई भी नहीं बदल सकता ॥ ७ ॥ इस कार्यके निर्णय करनेके लिए, इसके गुण दोष, विघ्न तथा सिद्धिके उपाय, यदि मैं तुमसे पूछता तो तुमको वैसा कहना चाहिए था ॥ ८ ॥ जो बुद्धिमान मन्त्री अपना कल्याण चाहता हो, उसे राजाके पूछनेपर ही अपना अभिप्राय कहना चाहिए ॥ ९ ॥ अप्रतिकूल, कोमल, मधुर, हितकारी तथा नीतियुक्त बातें राजासे कहनी चाहिए ॥ १० ॥ तिरस्कारयुक्त वचन, हितकारीही क्यों न हों, राजा उसे पसन्द नहीं करता, क्योंकि राजा सम्मानार्थी होता है और वह वाक्य सम्मानरहित होता है ॥ ११ ॥ अमितपराक्रमी राजा पाँच रूप धारण करते हैं, अग्नि, इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके रूप वे धारण करते हैं १२ ॥ हे राक्षस, उष्णता, पराक्रम, कोमलता, दण्ड और प्रसन्नता, महात्मा राजा धारण करते हैं ॥ १३ ॥ अतएव सब स्थानोंमें राजाका सम्मान करना चाहिए और उसकी पूजा करनी चाहिए। पर मन्त्रीधर्मको बिना जानेही तुम अज्ञानवश हो गये ॥ १४ ॥ मैं तुम्हारे यहाँ आया और तुम दुष्टतावश ऐसी कठोर बात मुझसे कहने लगे। मैंने अपने कर्तव्यके गुण-दोष तुमसे नहीं पूछे थे और न अपने क्षयकी ही बात पूछी थी ॥ १५ ॥ अमितपराक्रमी मारीच, मैंने तुमसे केवल इतना ही पूछा था कि इस काममें तुम हमारी सहायता कर सकोगे ॥ १६ ॥ सुनो, वह काम सुनो, जिस काममें मेरे कहनेसे तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी। तुम सोनेका मृग बनो और तुमपर चाँदीके बिन्दु हों ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके आश्रमके पास सीताके सामने घूमो। सीताको लुभाकर जिधर चाहो उधर चले जाओ ॥ १८ ॥ मायामय

त्वां हि मायामयं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया । आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली ॥१९॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर । हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम् ॥२०॥
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः । अनुगच्छति संभ्रान्तं सौमित्रिरपि सौहृदात् ॥२१॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् । आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥२२॥
एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस । राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत ॥२३॥
गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये । अहं त्वानुगमिष्यामि सरथो दण्डकावनम् ॥२४॥
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् । लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥२५॥
नो चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै । एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ।
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥२६॥

आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्यतः ।
एतद्यथावत्परिगण्य बुद्ध्या यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

कांचन मृगको देखकर सीताको आश्चर्य होगा और वह शीघ्रही रामचन्द्रसे कहेगी, इसे ले आओ ॥ १९ ॥ आश्रमसे रामके दूर चले जानेपर तुम रामचन्द्रके शब्दोंमें, हा सीते, हा लक्ष्मण, कहो ॥ २० ॥ यह सुनकर सीताकी प्रेरणासे और भ्रातृप्रेमसे घबड़ाकर लक्ष्मण भी रामचन्द्रके पीछे जायगा ॥ २१ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मणके चले जानेपर सुखपूर्वक मैं जानकीको हर ले आऊँगा, जिस प्रकार इन्द्रने शचीका हरण किया था ॥ २२ ॥ इस प्रकार मेरा यह कार्य करके तुम जहाँ चाहो जाओ । राक्षस सुव्रत मारीच, मैं तुमको अपना आधा राज्य दूंगा ॥ २३ ॥ इस कार्य-सिद्धिके लिए मनोहर मृगाका रूप धारण करो । मैं तुम्हारे साथ-साथ रथपर दण्डकारण्य चलता हूँ ॥ २४ ॥ रामचन्द्रको धोखा देकर और बिना युद्धके सीताको लेकर और इस प्रकार अपना मनोरथ पूर्ण कर तुम्हारे साथ लंका लौट जाऊँगा ॥ २५ ॥ मारीच, यदि तुम मेरा यह काम नहीं करोगे तो तुम्हें मार डालूँगा । यह मेरा काम जबरदस्तीसे भी तुम्हे करनाही पड़ेगा । राजाके प्रतिकूल चलनेसे कोई सुखी नहीं होता ॥ २६ ॥ रामचन्द्रके सामने जानेसे तुम्हें मृत्युका भय है और मुझसे विरोध करनेपर तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, इन सबका बुद्धिपूर्वक विचार कर जो हित हो वह तुम करो ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥ १ ॥
केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा। सपुत्रस्य सराज्यस्य सामात्यस्य निशाचर ॥ २ ॥
कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्। केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर। इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ॥ ४ ॥
केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना। यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥ ५ ॥
वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण। ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ ६ ॥
अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः। निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यसे ॥ ७ ॥
धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर। स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ॥ ८ ॥
विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण। व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥ ९ ॥
राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर। तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१०॥
राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर। न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥११॥
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भुज्यन्ते सह तेन वै। विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा ॥१२॥
बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः। परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥१३॥

राजाके समान, रावणके द्वारा ऐसी प्रतिकूल आज्ञा पाकर मारीच निःशंक होकर राक्षसाधिपति रावणसे कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ किस पापीने पुत्र, राज्य और अमात्योंके साथ तुम्हारे विनाशका यह मार्ग बतलाया है ॥ २ ॥ कौन पापी तुमको सुखी देखकर प्रसन्न नहीं होता है, किसने तुम्हें यह चतुराईसे मृत्युका द्वार बतलाया है ॥ ३ ॥ निशाचर, निश्चित हो गया कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हे किसी बलवानसे भिड़ाकर तुम्हारा नाश देखना चाहते हैं ॥ ४ ॥ किस क्षुद्रबुद्धि, शत्रुने तुम्हें यह उपदेश दिया है, वह तुम्हारे कमाहीके द्वारा तुम्हे नष्ट करना चाहता है ॥ ५ ॥ जो तुम्हारे मन्त्री कुमार्गमें जानेसे तुमको नहीं रोकते वे वधके योग्य हैं, उन मन्त्रियोंका वध तुम क्यों नहीं करते ॥ ६ ॥ जो राजा स्वेच्छाचारी होकर कुपथपर चलने लगता है, अच्छे अमात्योंको उसे रोकना चाहिए; पर तुम्हारे अमात्य तुम्हें नहीं रोकते ॥ ७ ॥ विजयी श्रेष्ठ राक्षस, धर्म अर्थ काम और यश ये सब स्वामीकी प्रसन्नतासे ही मन्त्रियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ यदि स्वामी संकटमें पड़ जाय तो ये सब व्यर्थ हैं। स्वामीको कष्ट होनेसे राज्यके अन्य मनुष्योंको भी कष्ट होता है ॥ ९ ॥ विजयी श्रेष्ठ, राजाहीके कारण धर्म और यश होता है, इस कारण सब स्थानोंमें राजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १० ॥ उग्रतासे राज्यका पालन नहीं किया जा सकता। प्रजासे विरोध कर तथा इन्द्रियोंके अधीन रहकर राज्य पालन नहीं किया जा सकता ॥ ११ ॥ राजाको तीक्ष्ण उपाय बतलानेवाले मन्त्री, इसका फल राजाके साथ भोगते हैं, जिस प्रकार मूर्ख सारथिवाला रथ ऊबड़-खाबड़ रास्तेमें अपने सारथीके साथ दुखी होता है॥१२॥ बहुतसे धर्मात्मा योगनिष्ठ अपराधहीन सज्जन अपने साथियोंके साथ दूसरोंके अपराधसे नष्ट

स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण । रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मृगा गोमायुना यथा ॥१४॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥१५॥
तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया । अत्र त्वं शोचनीयोऽसि ससैन्यो विनशिष्यसि ॥१६॥
मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात्त्वां वधिष्यति । अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः ॥१७॥
दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय । आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम् ॥१८॥
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया । नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥१९॥
निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर ।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः । गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥
दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा । मद्वधोद्यतशस्त्रेण निहितं जीवितं च मे ॥ २ ॥

हो गए हैं ॥ १३ ॥ कठोरदण्ड देनेवाले और प्रतिकूल राजाके द्वारा रक्षित प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, जिस प्रकार मृगाको खानेवाले शृगालके द्वारा रक्षित मृगाकी ॥ १४ ॥ रावण, अवश्य ही सब राक्षसोंका विनाश होगा, क्योंकि उनके राजा तुम, कठोर दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय हो ॥ १५ ॥ यह कठोर फल भोग (तुम्हारे द्वारा मृत्यु) मुझे आकस्मिक प्राप्त हो रहा है, फिर भी तुम अपनी समस्त सेनाके साथ विनष्ट हो जाओगे, इसलिए, मैं तुम्हारे लिए शोक करता हूँ ॥ १६ ॥ मुझको मारकर रामचन्द्र शीघ्रही तुम्हारा वध करेंगे । शत्रु रामके द्वारा मैं मारा जाऊँगा, इससे मैं प्रसन्न हूँ ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके सामने जाते ही मैं मारा जाऊँगा, यह तुम निश्चित समझो और सीताके हरण करनेपर बान्धवोंके साथ अपनेको भी मरा हुआ समझो ॥१८॥ मेरे साथ जाकर आश्रमसे यदि तुम सीताको ले आओगे तो मैं, तुम, लंका और समस्त राक्षस कोई भी नहीं बचेगा ॥ १९ ॥ निशाचर, हितैषी मैं तुम्हें रोक रहा हूँ, पर तुम मेरी बात नहीं सुनते । जिनकी आयु नष्ट हो गयी है, ऐसे मरनेवाले मनुष्य, मित्रोंके हित उपदेश नहीं सुनते ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४१॥

रावणसे ऐसा कठोर वचन कहकर, राक्षसपतिके भयसे दीन बना हुआ मारीच बोला—हमलोग चलें ॥ १ ॥ मेरा वध करनेके लिए जिसने शस्त्र उठाया है, उस धनुष-बाण,

नहि रामं पराक्रम्य जीवन्प्रतिनिवर्तते । वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ॥ ३ ॥
किं तु कर्तुं मया शक्यमेवं त्वयि दुरात्मनि । एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर ॥ ४ ॥
प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः । परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः । इदानीमासि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥ ६ ॥
आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः । मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ॥ ७ ॥
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि । तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ८ ॥
ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः । ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ॥ ९ ॥
आरुह्याययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् । तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ॥१०॥
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च । समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ॥११॥
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः । अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ॥१२॥
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् । एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ॥१३॥
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः । स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ॥१४॥
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह । स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥१५॥
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः । रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ॥१६॥

तलवार धारण करनेवाले रामचन्द्रने यदि मुझे देख लिया तो अवश्य ही मेरे प्राण नष्ट हो जायँगे ॥ २ ॥ रामचन्द्रपर आक्रमण कर कोई जीता नहीं लौट सकता । तुम्हारे ऊपर यमराज का दण्ड पड़ा है और रामचन्द्र उसके योग्य हैं अर्थात् तुम और हम अवश्य ही मारे जायंगे ॥ ३ ॥ पर जब तुम इतने पापी हो गए हो तो मैं क्या कर सकता हूँ । भाई, यह मैं चलता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४ ॥ मारीचके इस वचनसे रावण प्रसन्न हुआ और उसका गाढ़ आलिंगन करके बोला ॥ ५ ॥ मेरी आज्ञाके अनुसार काम करनेवाले, तुम्हारे ये शब्द वीरताके हैं । इसी समय तुम ठीक-ठीक मारीच हुए हो, पहले तुम कोई दूसरे राक्षस थे ॥६॥ पिशाचोंकेसे मुखवालेगधोंसे युक्त रत्नविभूषित इस आकाशगामी रथपर तुम मेरे साथ बैठो ॥७॥ सीताको लुभा कर तुम जहाँ चाहे चले जाना । सीताको एकान्तमें पाकर मैं उसे जबरदस्ती हर लाऊँगा ॥८॥ ताटकाके पुत्र मारीचने रावणकी वह बात मान ली । तब रावण और मारीच विमानके समान ऊँचे उस रथपर चढ़कर मारीचके आश्रमसे शीघ्र चले और उसी प्रकार नगरों और वनोंको देखते हुए चले ॥ ९, १० ॥ पर्वतों, नदियों, देशों और नगरोंको देखते हुए उन राक्षसाधिपति रावण और मारीचने दण्डकारण्य वनमें रामचन्द्रका आश्रम देखा । सुवर्णभूषित उस रथसे उतरकर और मारीचका हाथ पकड़कर रावण बोला—यही केलोंसे घिरा हुआ वह आश्रम है ॥११,१२,१३॥ मित्र, शीघ्रही वह काम करो, जिस कामके लिए हम लोग आये हैं । रावणके वचन सुनकर उस समय मारीच राक्षस मृग बन गया और बहुतही अद्भुत रूप धारण करके रामचन्द्रके आश्रमके सामने घूमने लगा ॥ १४, १५ ॥ उसकी सींगें इन्द्रनील मणिके समान थीं, उसका मुख कहीं

किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः । मधूकनिभपार्श्वश्च कंजाकिंजल्कसंनिभः ॥१७॥
वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः । इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥१८॥
मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः । क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥१९॥
वनं प्रज्वलयन्रम्यं रामाश्रमपदं च तत् । मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥२०॥
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् । विचरन्गच्छते शष्पं शाद्वलानि समन्ततः ॥२१॥
रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः । विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥२२॥
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः । तमाश्रमं मन्दगतिं सीतासंदर्शनं ततः ॥२३॥
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः । रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥२४॥
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः । गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥२५॥
विक्रीडँश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति । आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥२६॥
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते । सीतादर्शनमाकाङ्क्षन्राक्षसो मृगतां गतः ॥२७॥
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् । समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ॥२८॥
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश । राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ॥२९॥

सफेद और कहीं काला था, रक्तकमलके समान उसका मुख था, सुन्दर नीलकमलके समान उसके कान थे, गरदन थोड़ी ऊँची थी और इन्द्रनीलके समान पेट था, महुआके पुष्पके समान पखरी थी, कमलके परागके समान उसका रंग था, वैदूर्यमणिके समान उसके खुर थे, जाँघ पतली थी और वह गड़ा हुआ था, इन्द्रधनुषके समान उसकी पूँछ उठी हुई थी, जिससे वह सुन्दर मालूम होता था। उसका वर्ण अत्यन्त मनोहर और दर्शनीय था, अनेक रत्नोंसे वह युक्त था, एकही क्षणमें वह राक्षस अत्यन्त सुन्दर मृग बन गया ॥ १६, १७, १८, १६ ॥ वह राक्षस नाना धातुओंसे चित्रित दर्शनीय और मनोहर रूप बनाकर, उस रमणीय वनको तथा रामचन्द्र-के आश्रमको प्रकाशित करता हुआ, सीताको लुभानेके लिए हरी घासको खाता हुआ घूमने लगा ॥ २०, २१ ॥ वह चाँदीके सैकड़ों विंदुओंसे चित्रित और प्रिय मृग वृक्षोंके पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कदली वनमें जाकर वह कर्णिकार वनमें गया, सीताको दिखायी पड़नेके लिए धीरे-धीरे उस आश्रममें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ वह महामृग, जिसकी पीठ कमलके केसरके समान थी, बड़ाही सुन्दर मालूम पड़ता था। वह रामचन्द्रके आश्रमके पास सुखपूर्वक घूमने लगा ॥ २४ ॥ वह मृगश्रेष्ठ थोड़ी दूर आगे गया और पुनः लौट आया, एक मुहूर्तमें शीघ्रतापूर्वक वह गया और फिर लौट आया ॥ २५ ॥ इस प्रकार खेलता हुआ, कहीं जाकर वह बैठ जाता है, पुनः आश्रम द्वारपर आकर मृग यूथोंकी ओर जाता है, ॥ २६ ॥ जब मृगयूथ इसकी ओर आने लगता है, तब यह मृग बना हुआ राक्षस सीताका दर्शन होनेके लिए लौट आता है ॥ २७ ॥ सीताके समीप जाता हुआ, बड़े अद्भुत चक्करके रूपमें दौड़ता है। वनमें रहनेवाले दूसरे मृग उसे देखकर उसके समीप आते हैं और सूँघकर दिशाओंमें भाग जाते हैं।

प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् । तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ॥३०॥
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत । कर्णिकारानशोकाँश्च चूताँश्च मदिरेक्षणा ॥३१॥
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना । अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ॥३२॥
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना । तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ॥३३॥
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत । स च तां रामदयितां पश्यन्मायामयो मृगः॥३४॥
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद्वनम् । अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ॥
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

सा तं संप्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमानि विचिन्वती । हेमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी । भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैवं सायुधम् ॥ २ ॥
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते । आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ ३ ॥
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥ ४ ॥
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥ ५ ॥

मृगोंको मारनेवाला वह राक्षस भी उन जंगली मृगोंको अपना रूप छिपानेके लिए नहीं खाता था । उसी समय सुनयना जानकी फूल तोड़ती हुई, कर्णिकार, अशोक और आमके पेड़ोंके पास आयीं ॥ २८, २९, ३० ३१ ॥ फूल तोड़ती हुई, वनवासके अयोग्य, उस श्रेष्ठ स्त्रीने रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उस श्रेष्ठ स्त्रीने मुक्ता और मणिसे चित्रित सुन्दर ओष्ठवाले तथा चाँदीके बालवाले मृगाको देखा ॥ ३३ ॥ विस्मयसे उसकी आँखें खिल गयीं और बड़े स्नेहसे वह उसे देखने लगीं । रामचन्द्रकी स्त्रीको देखता हुआ वह मायामृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ विचरण करने लगा । पहले-पहल ऐसा अद्भुत नानारत्नमय मृगाको देखकर जनककन्या सीताको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३४, ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका अरण्यकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

फूल चुनती हुई, सुन्दर अंगोंवाली और कनकके समान वर्णवाली सुश्रोणी सीता, सोना और चाँदीके रंगवाले दोनों पार्श्वोंसे शोभित उस मृगाको देखकर बहुतही प्रसन्न हुई और उसने पतिको और अस्त्र लिये हुए लक्ष्मणको पुकारा ॥ १, २ ॥ वह बार-बार पुकार कर उस मृगाको अच्छी तरह देखती है । कहती है आर्यपुत्र लक्ष्मणके साथ शीघ्र आइये ॥ ३ ॥ जानकीके पुकारने पर राम और लक्ष्मण दोनों देखते हुए, वहाँ आये और उन लोगोंने उस मृगाको देखा ॥ ४ ॥ उसको देखकर तथा शंकित होकर लक्ष्मण बोले—मैं समझता हूँ कि यह मृगा वही मारीच राक्षस

चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने । अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ॥ ६ ॥
अस्य मायाविदो मायामृगरूपमिदं कृतम् । भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ॥ ७ ॥
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव । जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥ ८ ॥
एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता । उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥ ९ ॥
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः । आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥१०॥
इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः । मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमराः सृमरास्तथा ॥११॥
ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किन्नरास्तथा । विहरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा महाबलाः ॥१२॥
न चान्यः सदृशो राजन्दृष्टः पूर्वं मृगो मया । तेजसा क्षमया दीप्त्या यथायं मृगसत्तमः ॥१३॥
नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नभूतो ममाग्रतः । द्योतयन्वनमव्यग्रं द्योतते शशिसंनिभः ॥१४॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना । मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥१५॥
यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव । आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥१६॥
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः । अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥१७॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो । मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥१८॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः । अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥१९॥

है ॥ ५ ॥ स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापीने कपटरूप धरकर वनमें आखेट करनेके लिए आए हुए अनेक राजाओंको मारा है ॥ ६ ॥ माया जाननेवाले मारीचकी यह मायाही है, जो इसने मृगाका रूप धारण किया है । हे पुरुषसिंह, प्रकाशमान गन्धर्वनगरके समान यह असत्य है ॥ ७ ॥ हे जगतीनाथ राम, रत्नोंसे चित्रित ऐसा मृग संसारमें नहीं देखा गया है । यह माया है, इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको रोक कर सुन्दर स्मित करनेवाली सीता प्रसन्न होकर बोली, मायाके द्वारा उसकी मति मारी जा चुकी थी ॥ ९ ॥ आर्यपुत्र, यह मृगा बड़ाही सुन्दर है, यह मेरा मन हरता है, आप इसे ले आवें, हम लोगोंके खेलके लिए यह होगा ॥ १० ॥ हम लोगोंके इस आश्रममें बड़ेही दर्शनीय, भिन्न-भिन्न जातिके मृग एक साथ चरते हैं । चमर, सृमर, ऋक्ष, पृषत, संघ, वानर और किन्नर आदि । महाबाहो, वे सभी सुन्दर और बली होते हैं ॥ ११, १२ ॥ पर राजन्, मैंने दूसरा ऐसा मृग पहले नहीं देखा है, जैसा कि यह तेजस्वी सौम्य और दीप्तिमान् है ॥ १३ ॥ यह अनेक वर्णोंसे चित्रित और रत्नमय है । यह चन्द्रमाके समान सुन्दर, निर्भय होकर वनको प्रकाशित करता हुआ मेरे सामने स्वयं प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥ कैसा रूप है, कैसी शोभा है, कैसी सुन्दर बोली है! विचित्रांग, यह अद्भुत मृग मेरा मन हर रहा है ॥ १५ ॥ यदि मृग जीता हुआही पकड़ लिया जाय तब तो बड़ा आश्चर्य है, यह बहुत लोगोंको विस्मित करेगा ॥१६॥ जब हम लोगोंके वनवास-की अवधि समाप्त हो जायगी, जब हम लोग राज्य पावेंगे । उस समय यह मृग हम लोगोंका रनि-वासमें मनोरञ्जन करेगा ॥१७॥ भरत, आप और मेरी सासोंको यह दिव्य मृगरूपी खिलौना विस्मित करेगा । यदि ये जीता न पकड़ा जा सके तो भी इसका मृगचर्म बड़ाही सुन्दर होगा ॥ १८ ॥

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि । शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥२०॥
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् । वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥२१॥
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा । तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥
बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् । इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् ॥२३॥
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः । उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥२४॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् । रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥२५॥
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः॥२६॥
प्रातिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः । शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः॥२७॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् । जिह्वां मुखान्निः सरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम्॥२८॥
मसारगल्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः । कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः॥२९॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् । नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥३०॥
मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः । घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ॥३१॥
धनानि व्यवसायेन विचीयन्ते महावने । धावतो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ॥३२॥

जब यह मृगा मारा जायगा, तब घासकी चटाईपर इसकी सुवर्णमय खाल बिछाकर मैं आपके पास बैठूंगी ॥ २० ॥ अपनी इच्छा-पूर्तिके लिए जो मैं आपसे यह कह रही हूँ, वह कठोर है और स्त्रियोके लिए अनुचित है, यह मैं जानती हूं, फिर भी इस मृगाके देखनेसे मुझे नितान्त कुतूहल उत्पन्न हो गया है ॥२१॥ सोनेके रोमवाले, नीलमणिके सींगवाले, प्रौढ़ सूर्यके समान वर्णवाले और नक्षत्रमार्गके समान चित्रित उस मृगाको देखकर तथा सीताके वचन सुनकर रामचन्द्रके मनमें भी कुतूहल उत्पन्न हुआ ॥ २२, २३ ॥ उसके रूपपर रामचन्द्र मुग्ध हो गये (सीताके द्वारा प्रेरित होकर) रामचन्द्र लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ २४ ॥ लक्ष्मण, देखो जानकी कितना अधिक प्रसन्न हुई है। यह मृग बहुतही सुन्दर है, इस कारण अब जी नहीं सकता ॥ २५ ॥ नन्दनवन और चैत्ररथ वनमें भी इसके ऐसा मृगा नहीं होता, फिर पृथिवीमें कहाँसे हो सकता है ॥ २६ ॥ कुछ सीधे और कुछ टेढ़े इस मृगाके सुन्दर बाल, जो सोनेकी बिन्दुसे चित्रित हुए हैं, देखनेमें भले मालूम पड़ते हैं॥ २७ ॥ जम्हाई लेनेके समय इसके मुँहसे निकली हुई जीभ अग्निशिखाके समान प्रदीप्त मालूम होती है, जिस प्रकार मेघसे बिजली निकली हो ॥ २८ ॥ इन्द्रनील मणिके प्यालेके समान इसका मुँह है और शंख और मोतीके समान पेट। यह समझमें न आनेवाला किसके मनको लुब्ध नहीं करता ॥ २९ ॥ यह सुवर्ण और मोतियोंका बना हुआ दिव्य रूप देखकर किसका मन विस्मित नहीं हो जाता ॥ ३० ॥ लक्ष्मण, मांसके लिए तथा क्रीड़ाके लिए भी धनुर्धारी राजा आखेटमें मृगोंको मारा करते हैं ॥३१॥ मणि, रत्न और सुवर्ण आदि अनेक धातुओंको धनार्थी लोग उद्योगके द्वारा वनमें ढूंढ़ा करते हैं ॥ ३२ ॥ ये सब जंगली धन मनुष्योंके खजाना बढ़ानेवाले बड़े श्रेष्ठ धन हैं। जिस प्रकार मुक मनुष्यकी मानसिक चिन्तासे प्राप्त योग्य वस्तु

तत्सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् । मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ॥३३॥
अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् । तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्राहुरर्थ्याः सुलक्ष्मण ॥३४॥
एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्ये काञ्चनत्वचि । उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥३५॥
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी । भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥३६॥
एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः । उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥३७॥
यदि वायं तथा यन्मा भवेद्वदसि लक्ष्मण । मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥३८॥
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना । वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुंगवाः ॥३९॥
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः । निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ॥४०॥
पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः । उदरस्थो द्विजान्हन्ति स्वगर्भोऽश्वतरीमिव ॥४१॥
स कदाचिच्चिराल्लोके आससाद महामुनिम् । अगस्त्यं तेजसा युक्तं भक्ष्यस्तस्य बभूव ह ॥४२॥
समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् । उत्स्मयित्वा तु भगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥४३॥
त्वयाविगण्य वातापे परिभूताश्च तेजसा । जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ॥४४॥
तदेतन्न भवेद्रक्षो वातापिरिव लक्ष्मण । मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ॥४५॥

श्रेष्ठ समझी जाती हैं, उसी प्रकार यह जंगली धन भी सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ अर्थी मनुष्य बिना सोचे–समझे जिस वस्तुकी प्राप्तिके लिए उसके पास जाय, उसको अर्थशास्त्रज्ञ तथा अर्थ रखनेवाले मनुष्य अर्थ कहते हैं । अतएव यह मृग भी अर्थ हुआ ॥ ३४ ॥ इस मृग-श्रेष्ठके उत्तम सोनेके चर्मपर वैदेही मेरे साथ बैठेगी ॥ ३५ ॥ इस मृगके चर्मके समान कोमल कदली, प्रियक (कोमल लम्बे और सघन बालवाले मृग), प्रवेधी (यह भी एक तरहका मृग है) और भेंडके चर्म नहीं होते, ऐसा मैं समझता हूं ॥ ३६ ॥ सुन्दर यह मृग और आकाशमें विचरण करनेवाला मृग (मृगशीर्ष नक्षत्र) ये दोनों ही दिव्य हैं, क्रीड़ाके योग्य हैं ॥ ३७ ॥ लक्ष्मण, अथवा जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही यह मृग राक्षसकी माया हो, तो भी मुझे इसका बध करना ही चाहिए ॥ ३८ ॥ इस पापी और क्रूर मारीचने इस वनमें विचरण करनेके समय अनेक श्रेष्ठ मुनियोंको मारा है ॥ ३९ ॥ आखेटमें आये हुए बड़े धनुर्धारी अनेक राजाओंको निकलकर इसने मारा है, अतएव यह मेरा वध्य है ॥ ४० ॥ पहले यहाँ वातापी नामका एक राक्षस था, वह तपस्वियोंका अनादर करके और उनके पेटमें जाकर उन्हें मार डालता था, जिस प्रकार खच्चरीको उसका गर्भ मार डालता है ॥ ४१ ॥ बहुत दिनोंके बाद एक बार वह तेजस्वी महामुनि अगस्त्यके पास आया और उनका वह भोजन बन गया ॥ ४२ ॥ कामके समाप्त होने पर, पुनः राक्षसरूप धारण करनेके लिए प्रयत्न करते हुए उसे देखकर, मुनिने हँसकर वातापीसे इस प्रकार कहा ॥ ४३ ॥ तुमने बिना विचारे अपने पराक्रमके कारण अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अपमान किया है, इस कारण आज तुम हमारे पेटमें पच गये ॥ ४४ ॥ लक्ष्मण, जो राक्षस सदा धर्ममें रत रहनेवाले जितेन्द्रिय मुझ पर आक्रमण करेगा, वह राक्षस भी वातापीके

भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनैव मागतः । इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ॥४६॥
अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन । अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥४७॥
यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् । पश्य लक्ष्मण वैदेह्या मृगत्वचि गतां स्पृहाम् ॥४८॥
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति । अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥४९॥
यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम् । हत्वैतच्चर्म आदाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ॥५०॥
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥
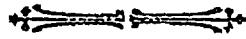
चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

तथा तु तं समुद्दिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः । बबन्धासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥
ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् । आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥
तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै । बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः । न स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥ ४ ॥

समान नष्ट हो जायगा ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार अगस्त्यने वातापीको मार डाला था, उसी प्रकार अपने पास आए हुए इस राक्षसको मैं भी मार डालूँगा। तुम अस्त्रादिसे तयार होकर सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हम लोगोंका जो कुछ काम है, वह सीताके अधीन है, अर्थात् सीताको प्रसन्न रखना हमारे लिए आवश्यक है। अतएव इस मृगाको मैं मारूँगा या पकड़ लूँगा ॥ ४७ ॥ लक्ष्मण, अतएव मृगको ले आनेके लिए मैं शीघ्र जा रहा हूँ। लक्ष्मण, देखो मृगचर्मके लिए जानकी कितनी उत्कण्ठित हो गयी है ॥ ४८ ॥ इस मृगाका चर्म सुन्दर है, अतएव यह अब बच नहीं सकता। तुम आश्रममें रहकर सावधानीसे सीताकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ एक बाणसे मैं इस मृगाको मारूँगा, मारकर तथा इसका चर्म लेकर मैं शीघ्र आऊँगा ॥ ५० ॥ अत्यन्त बली, बुद्धिमान और समर्थ जटायू पक्षीके साथ सावधान होकर प्रतिक्षण शंकित रह कर तुम सीताकी रक्षा करो ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४३॥

रामचन्द्रने लक्ष्मणको इस प्रकार आज्ञा देकर सोनेकी मूठवाली तलवार ली ॥१॥ तदनन्तर, परम पराक्रमी रामचन्द्र तीन स्थानों पर नवा हुआ और अपनेको शोभित करनेवाला धनुष लेकर तथा दो तरकस बाँध कर चले ॥ २ ॥ राजेन्द्र रामचन्द्रको आते देखकर वह मृगा डरसे छिप गया और पुनः सामने आया ॥ ३ ॥ तलवार बाँधे हुए रामचन्द्र धनुष लेकर मृगाकी ओर

अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने । अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानं कदाचन ॥ ५ ॥
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् । दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥ ६ ॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् । मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ७ ॥
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् । स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ८ ॥
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः । अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ॥ ९ ॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः । मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥१०॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत । तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥११॥
पुनरेव ततो दूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः । दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥१२॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनम् ॥१३॥
संधाय स दृढं चापे विकृष्य बलवद्बली । तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥१४॥
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् । स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥१५॥
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः । तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स भृशातुरः ॥१६॥
व्यनदद्भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः । म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥१७॥
स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् । इह प्रस्थापयेत्सीता तां शून्ये रावणो हरेत् ॥१८॥

दौड़े । वह मृगा अपने रूपसे आगेकी भूमिको प्रकाशित कर रहा था ॥ ४ ॥ धनुष्पाणि रामचन्द्र दौड़ते हुए मृगाको कभी बहुत दूर निकल गया हुआ देखते थे और कभी अपने पास देखते थे ॥५॥ वह डरा और घबड़ाया हुआ मृगा कभी उपरकी ओर कूद जाता था, कभी सामने आ जाता था और कभी वनमें छिप जाता था ॥ ६ ॥ बिखर मेघमें छिपे हुए शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान एक मुहूर्तमें सामने दीख पड़ता था और पुनः बहुत दूरसे उसकी आभा मालुम होती थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार मृग बना हुआ वह मारीच नामक राक्षस कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष होकर रामचन्द्रको आश्रमसे बड़ी दूर ले गया ॥ ८ ॥ उस मायामृगने रामचन्द्रको विस्मित किया था और उन्हें धोखा भी दिया था, अतएव उनको बहुत अधिक क्रोध था । वे थक जानेके कारण छायामें, हरी दूबपर बैठ गये ॥ ९ ॥ उस मृगरूपी निशाचरने रामचन्द्रको पागल बना दिया था । पुनः वह दूसरे मृगोंके साथ रामचन्द्रके पासही दीख पड़ा ॥ १० ॥ रामचन्द्र उसको पकड़नेके लिए बढ़े, उसी समय वह डरसे छिप गया ॥ ११ ॥ पुनः दूरहीसे वृक्षोंमेंसे निकला, तेजस्वी रामचन्द्रने उसे देखकर उसको मार डालनाही निश्चित किया ॥ १२ ॥ पुनः क्रुद्ध रामचन्द्रने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान और शत्रुओंका विनाश करनेवाला बाण निकाला और धनुषपर रखकर बली रामचन्द्रने उसे बलपूर्वक खींचा । पुनः मृगाको लक्ष करके सर्पके समान जलता हुआ ब्रह्माका बनाया हुआ वह दीप्त अस्त्र छोड़ा, उस वज्रके समान उत्तम शरने उसके मृग रूपको छेदकर मारीचके हृदयको छेदा । वह तालके बराबर ऊँचा उठा और दुखी होकर नीचे गिर पड़ा ॥ १३, १४, १५, १६ ॥ अल्पप्राण मरते हुए, उस मारीच राक्षसने पृथिवी पर घोर गर्जन किया और अपना मृगाका कृत्रिम शरीर छोड़ दिया ॥ १७ ॥ रावणके वचनका स्मरण करके राक्षस मारीचने सोचा

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् । सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९॥
तेन मर्माणि निर्विद्धं शरेणानुपमेन हि । मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमास्थितः ॥२०॥
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ॥२१॥
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले । जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥२२॥
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु । तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः ॥२३॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् । ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥२४॥
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति । इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥२५॥
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् । राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥२६॥
निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः । त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने । उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते । क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि । तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥

कि किस उपायसे सीता लक्ष्मणको भेजेगी और रावण एकान्तमें उसका हरण करेगा ॥ १८ ॥ उसने उसी समय निश्चय करके रामचन्द्रके समान स्वरमें 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' ऐसा कहा ॥१९॥ रामचन्द्रके अनुपम वाणसे विधे हुए उस राक्षसने प्राण त्याग करनेके समय मृगरूपका त्याग करके बहुत बड़ा राक्षसका रूप धारण किया । भयानक, रुधिरमें लिपटा हुआ राक्षस पृथिवी पर छटपटा रहा है, यह देखकर रामचन्द्रको लक्ष्मणकी बात याद आयी और वे सीताके विषयमें विचार करने लगे ॥ २०, २१, २२ ॥ यह तो मारीचकी माया है, लक्ष्मणने पहलेही जो बात कही थी, वही बात हुई । मैंने आज मारीचको मारा ॥ २३ ॥ 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' जोरसे चिल्लाकर यह राक्षस मरा है । इस शब्दको सुनकर सीताकी क्या अवस्था हुई होगी ॥२४॥ महाबाहु लक्ष्मणकी कैसी अवस्था हो जायगी । यह सोंचकर धर्मात्मा रामचन्द्रके रोंगटे खड़े हो गये ॥२५॥ रामचन्द्र मृगरूपी राक्षसको मारकर तथा उसका शब्द सुनकर दुःखसे उत्पन्न, भयके वशवर्ती हुए ॥ २६ ॥ दूसरा मृगा मार कर तथा उसका माँस लेकर रामचन्द्र जनस्थानकी ओर चले॥२७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पतिके शब्दके समान वनमें आर्त स्वर सुन पड़ना है. यह जानकर सीता लक्ष्मणसे बोली-जाओ, रामचन्द्रको देखो ॥ १ ॥ वनमें बड़े दुःखसे पुकारका शब्द मैंने सुना है । मेरे प्राण और हृदय अपने स्थान पर नहीं है, अर्थात् मैं विचलित हो गयी हूं ॥ २ ॥ शरण चाहनेवाले तथा

रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम्। न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ ४ ॥
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा। सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥ ५ ॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे। इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ६ ॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्। व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥ ७ ॥
तेन तिष्ठति विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम्। किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ॥ ८ ॥
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः। एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव। पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः ॥१०॥
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः। देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥११॥
राक्षसेषु पिशाचेषु किन्नरेषु मृगेषु च। दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ॥१२॥
यो रामं प्रतियुद्ध्येत समरे वासवोपमम्। अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥१३॥
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना। अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ॥१४॥
त्रिभिर्लोकैः समुदितैः सेश्वरैः सामरैरपि। हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव ॥१५॥
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम्। न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः ॥१६॥

रक्षाके लिए पुकार करनेवाले अपने भाईकी तुम रक्षा करो। तुम शीघ्रही दौड़कर उनके पास जाओ ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार गाय और बैल सिंहके पंजेमें आ जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे भाई राक्षसोंके पञ्जेमें आगये हैं। पर भाईकी आज्ञा न होनेके कारण लक्ष्मण वहाँसे नहीं गये ॥ ४ ॥ तब क्रुद्ध होकर सीता बोली—लक्ष्मण, तुम अपने भाईके मित्ररूपी शत्रु हो ॥ ५ ॥ ऐसी अवस्थामें भी भाईकी रक्षा करनेके लिए तुम नहीं जा रहे हो, अतएव, तुम मुझे पानेके लिए रामचन्द्रका विनाश चाहते हो ॥ ६ ॥ मेरी प्राप्तिके लोभसे ही तुम रामचन्द्रके पास नहीं जा रहे हो। रामचन्द्रका दुःखमें पड़नाही तुम्हें प्रिय मालूम पड़ता है। भाईमें तुम्हारा प्रेम नहीं है ॥७॥ इसीलिए महाद्युति रामचन्द्रको न देखकर उनका रक्षाका कोई उपाय न कर यहाँ निश्चिन्त बैठे हो। रामचन्द्रके जीवन पर संकट आजाय, तो मेरी रक्षासेही कौन लाभ ? ॥८॥ रामचन्द्रही हम लोगोंके प्रधान हैं। उन्हींके साथ तुम आये हो। उनके न रहने पर मैं क्या कर सकूँगी ? मृगीके समान डरी हुई, शोकसे रोती हुई सीतासे लक्ष्मण इस प्रकार बोले—नाग, असुर, गंधर्व, देवता, दानव, राक्षस इनमें कोई भी तुम्हारे पतिको नहीं जीत सकता। देवि, देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, निशाचर, किन्नर, पशु तथा भयानक दानव इन सबमें कोई भी ऐसा नहीं है जो इन्द्रतुल्य रामचन्द्रसे युद्ध कर सके। रामचन्द्र युद्धमें अवध्य हैं, तुमको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए ॥ ९, १०, ११, १२, १३ ॥ बिना रामचन्द्रके मैं तुमको इस वनमें अकेली नहीं छोड़ सकता। बहुतसी सेना मिलकर बनी हुई सेनासे तथा देवता, ब्रह्मा, विष्णु आदि तथा तीनों लोक मिलकर भी युद्धमें रामचन्द्रको परास्त नहीं कर सकते। तुम अपने मनका दुख कम करो, सन्ताप छोड़ो ॥ १४, १५ ॥ उस मृगाको मारकर तुम्हारे पति शीघ्र आवेंगे। वह आवाज रामचन्द्रकी नहीं थी और न तो किसी देवताकी

गन्धर्वनगरप्रख्या माया तस्य च रक्षसः। न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ॥१७॥
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे। कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ॥१८॥
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति। राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने ॥१९॥
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि। लक्ष्मणेनैवमुक्ता क्रुद्धा संरक्तलोचना ॥२०॥
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्। अनार्य करुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ॥२१॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्। रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥२२॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत्। त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥२३॥
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि। मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥२४॥
तन्न सिद्ध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा। कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ॥२५॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्। समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥२६॥
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले। इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥२७॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः। उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥२८॥
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि। स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥२९॥

थी ॥ १६ ॥ यह उसी राक्षसकी गन्धर्वनगरके समान झूठी माया है। वैदेहि, तुम्हारी रक्षाका भार मुझपर है और यह भार महात्मा रामचन्द्रने दिया है ॥ १७ ॥ अतएव सुन्दरि, मैं तुमको अकेली छोड़ नहीं सकता। कल्याणि, इस समय हम लोगोंने इन राक्षसोंसे विरोध कर लिया है ॥ १८ ॥ खरके मारे जाने तथा जनस्थानके विनाश होनेसे ये राक्षस वनमें तरह-तरहकी बातें बोलते हैं ॥ १९ ॥ लोगोंको पीड़ा देनाही राक्षसोंका स्वभाव है। वैदेहि, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर जानकीने बहुत क्रोध किया। उनकी आँखें लाल हो गयीं ॥ २० ॥ सत्यवादी लक्ष्मणसे वे कठोर वचन बोलीं—अनार्य, निर्दय, घातुक, कुलकलंक, मैं समझती हूँ कि रामचन्द्रका कष्ट तुम्हें अच्छा मालूम होता है। अतएव, रामचन्द्रका दुख देखकर तुम ऐसी बातें बोल रहे हो ॥ २१, २२ ॥ तुम्हारे समान क्रूर और छिपे शत्रुसे इस तरहकी बुराइयोंके होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २३ ॥ तुम बड़े दुष्ट हो। अतएव अकेले असहाय रामचन्द्रके साथ मुझे पानेके लिए वनमें आए हो अथवा भरतने छिपकर तुम्हें भेजा है ॥ २४ ॥ पर लक्ष्मण, तुम्हारा वह अभिप्राय अथवा भरतका अभिप्राय मैं सिद्ध होने न दूँगी। इन्दीवरश्याम कमलनयन रामचन्द्रकी स्त्री रहकर मैं किस प्रकार एक साधारण मनुष्यकी स्त्री बनूंगी। लक्ष्मण, निस्सन्देह तुम्हारे सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूंगी ॥ २५, २६ ॥ रामके बिना एक क्षण भर भी मैं पृथिवीमें जी न सकूँगी। इस तरहके रोंगटे खड़े कर देनेवाले सीताके कठोर वचन सुनकर, जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले—मैं आपको उत्तर देना नहीं चाहता; क्योंकि आप मेरी देवता हैं ॥ २७, २८ ॥ पर सीते, यह अत्यन्त अनुचित वचन स्त्रियोंके लिए कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि इस संसारमें स्त्रियोंका ऐसाही स्वभाव देखा जाता

विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः । न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ॥३०॥
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम् । उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ॥३१॥
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया । धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे॥३२॥
स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ।गच्छामि यत्र काकुत्स्थःस्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥३३॥
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः । निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥३४॥
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा । प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥३५॥
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण । आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥३६॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥३७॥
इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता । पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥३८॥
तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुस्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ॥३९॥
ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य ।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंमें विनय आदि धर्म नहीं रहते । वे चञ्चल और क्रूर होती हैं । आपसमें फूट डाल देती हैं । जनकपुत्रि वैदेहि, मैं ऐसी बातें सह नहीं सकता ॥ ३० ॥ जो दोनों कानोंमें तपे बाणके समान मालूम होती हैं । वनवासी देवता साक्षी होकर ये सब बातें सुनें ॥ ३१ ॥ मैंने न्याययुक्त बात तुमसे कही थी और तुमने मुझे ऐसी कठोर बातें कहीं । अब तुम्हारा शीघ्र ही विनाश होनेवाला है । तुमको धिक्कार, जो मुझपर इस प्रकारका सन्देह करती हो । स्त्री होनेके कारण दुष्ट स्वभावके अधीन होकर अपने बड़ेकी आज्ञापालन करनेवाले मुझपर सन्देह करती हो । मैं जाता हूँ, जहाँ रामचन्द्रजी हैं। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३२, ३३ ॥ विशालाक्षि, समस्त वन-देवता तुम्हारी रक्षा करें, बड़े भयानक अशकुन हो रहे हैं । रामके साथ लौटकर क्या पुनः मैं तुमको देखूँगा ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर रोती हुई जानकी बोली ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रके न रहनेपर मैं गोदावरीमें कूद पड़ूंगी, गलेमें रस्सी बाँध लूंगी अथवा ऊँची जगहसे कूद पड़ूंगी ॥३६॥ तीखा विष पी लूँगी, आगमें प्रवेश करूंगी, पर रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरे पुरुष-का स्पर्श न करूँगी ॥ ३७ ॥ शोकसे युक्त सीता लक्ष्मणसे ऐसा कहकर हाथोंसे छाती पीटने लगीं ॥३८॥ दुखी होकर रोती हुई विशालनेत्रा सीताको लक्ष्मणने देखा और उन्हें धैर्य धरनेके लिए कहा, पर पतिके भाईसे सीता कुछ भी न बोलीं॥३९॥ हाथ जोड़कर लक्ष्मणने सीताका अभिवादन किया, पुनः थोड़ा प्रणाम करके बार-बार उनकी ओर देखते हुए धीर लक्ष्मण रामके पास गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः । स विकाङ्क्षन्भृशं रामं प्रतस्थे न चिरादिव ॥ १ ॥
तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः । अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही । वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥
परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्ववर्तत । तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ॥ ४ ॥
रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां संध्यामिव महत्तमः । तामपश्यत्ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५ ॥
रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्भृशदारुणः । तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमाः ॥ ६ ॥
संदृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः । शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ॥ ७ ॥
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी । रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ॥ ८ ॥
उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः । अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः । सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥१०॥
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम् । तिष्ठन्संप्रेक्ष्य च तदा पत्नीं रामस्य रावणः ॥११॥
शुभां रुचिरदंतोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥१२॥
स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् । अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥१३॥

सीताके ऐसा कठोर वचन कहनेपर लक्ष्मण कुपित हुए और रामचन्द्रके पास शीघ्र पहुंचनेकी इच्छासे अविलम्ब वहाँसे चले ॥१॥ लक्ष्मणके चले जानेपर अवसर पाकर संन्यासीका रूप धारण करनेवाला रावण जानकीके आश्रममें गया ॥२॥ उज्ज्वल काषाय वस्त्र वह पहने हुए था, मस्तकपर शिखा थी, छाता और जूता वह धारण किये हुए था। बाँएँ कन्धेपर उत्तम डंडा और कमण्डलु धारण किये हुए था ॥ ३ ॥ संन्यासीके रूपमें वह सीताके पास गया । राम, लक्ष्मणसे रहित सीताको उस बलीने पाया ॥ ४ ॥ जिस प्रकार चन्द्र-सूर्यसे रहित सन्ध्यापर बना अन्धकार अधिकार जमाता है, उसी प्रकार बाला यशस्विनी, राजपुत्रीको रावणने देखा ॥५॥ चन्द्रमासे रहित रोहिणीको जैसे शनिश्चर या मंगलग्रह देखता है, उसी प्रकार रावणने सीताको देखा । उस भयानक पापीको देखकर जनस्थानके वृक्षोंने काँपना छोड़ दिया अर्थात् वे स्तब्ध हो गये। वायुका वहना बन्द हो गया। लाल आँखोंसे अपनी ओर उसको देखते देखकर शीघ्र चलनेवाली गोदावरी नदी भी धीरे-धीरे चलने लगी । रामचन्द्रकी अनुपस्थिति चाहनेवाला रावण इस अवसर पर भिक्षुका रूप धारण करके, अभव्य होनेपर भी भव्य रूप धारण करके, पतिके लिए शोक करती हुई सीताके पास गया ॥६, ७, ८, ९ ॥ शनैश्चर जैसे चित्राके पास जाता है, वैसे ही भव्य रूप धारण करके तृणसे छिपे हुए कूपके समान वह रावण सीताके पास गया ॥ १० ॥ यशस्विनी रामपत्नी सीताको देखकर रावण खड़ा हो गया। खड़ा होकर रावणने रामकी स्त्रीको देखा ॥११॥ बड़ी सुन्दरी थी, सुन्दर दाँत और सुन्दर ओंठ थे। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुँह था । पर्णशालामें बैठी हुई शोकके कारण रो रही थी ॥ १२ ॥ पद्मपत्रनेत्रा पीताम्बर पहने हुई सीताके पास प्रसन्न

दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥१४॥
तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम् । विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह ॥१५॥
रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥१६॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने । भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥१७॥
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव । विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥१८॥
विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ । एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रगल्भितौ ॥१९॥
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धतालफलोपमौ । मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ तौ पयोधरौ ॥२०॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥२१॥
करान्तमितमध्यासि सुकेशे संहतस्तनि । नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी ॥२२॥
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले । रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते ॥२३॥
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे । सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि ॥२४॥
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् । प्रासादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च ॥२५॥
संपन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया । वरं माल्यं वरं गन्धं वरं वस्त्रं च शोभने ॥२६॥

होकर राक्षस गया ॥ १३ ॥ सीताको देखते ही वह कामपीड़ित हो गया और वेदिक मंत्र पढ़ने लगा। आश्रमको एकान्त देखकर रावण विनययुक्त वचन बोला ॥ १४ ॥ त्रिलोकमें सर्वश्रेष्ठ शरीर-से पद्मरहित लक्ष्मीके समान शोभनेवाली सीताकी रावण प्रशंसा करने लगा ॥ १५ ॥ श्रेष्ठ सुवर्णके समान तुम्हारी कान्ति है, पीताम्बर धारण किए हुए हो, कमलवनके समान कमलोंकी सुन्दर माला धारण करती हो (आँख और मुखके अभिप्रायसे कमलमाला कहा है) ॥ १६ ॥ शुभानने, तुम गौरी हो, श्री हो, कीर्ति हो, लक्ष्मी हो या अप्सरा हो? तुम अणिमादि सिद्धि हो अथवा स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामकी स्त्री रति हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे नुकीले, चिकने और सफेद दाँत सब बराबर हैं, तुम्हारी आँखें बड़ी और उज्ज्वल हैं, छोर पर लाल हैं और पुतली काली ॥१८॥ जघन लम्बा और मोटा है और ऊरु हाथीकी सूंडके समान है। ये ऊंचे गोल आपस-में सटे हुए, कुछ हिलनेवाले, मोटे और ऊंचे, सुन्दर रमणीय तालफलके समान श्रेष्ठ मणियोंसे आभू-षित मनोहर तुम्हारे स्तन हैं ॥१९, २०॥ विलासिनि, सुन्दर मुसकान, सुन्दर दाँत और सुन्दर आंखोंसे तुम मेरा मन हरण कर रही हो, जिस प्रकार जल नदीके तारको हरण करता है ॥ २१ ॥ सुकेशि, तुम्हारी कमर मुट्ठीमें आजानेवाली है, तुम्हारे स्तन आपसमें सटे हुए हैं। देवी, गन्धर्वी, यक्षी, किन्नरी कोई भी स्त्री पृथवीमें मैंने तुम्हारे समान नहीं देखी। यह तुम्हारा श्रेष्ठरूप, यह सुकुमारता, यह उमर और इस बीहड़ वनका निवास! इन बातोंसे मेरा मन व्यथित हो रहा है। तुम यहाँ से लौट जाओ। तुम्हारा कल्याण हो, तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो ॥ २२, २३, २४ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, क्रूर राक्षसोंके रहनेकी यह जगह है। तुमको कोठेपर रमणीय सुगन्धयुक्त और समृद्धयुक्त नगरों और उपवनोंमें रहना चाहिए।

भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे । का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा शुचिस्मिते ॥२७॥
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे । नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किन्नराः ॥२८॥
राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता । इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगा वृकाः ॥२९॥
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसे । मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३०॥
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने । कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ॥३१॥
एका चरसि कल्याणि घोरान्राक्षससेवितान् । इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन महात्मना ॥३२॥
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् । सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥३३॥
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च । अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥३४॥

द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली समागतं पात्रकुसुम्भधारिणम् ।
अशक्यमुद्द्रेष्टुमुपायदर्शनान्न्यमन्त्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ॥३५॥
इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥३६॥
निमन्त्र्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीं नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रसह्य तस्या हरणे दृढं मनः समर्पयामास वधाय रावणः ॥३७॥

तुमको श्रेष्ठमाला, श्रेष्ठ गन्ध, श्रेष्ठ वस्त्र और श्रेष्ठ पति, चाहिए, जिनका सम्बन्ध तुमसे है, उनको मैं उत्तम समझता हूँ। तुम कौन हो? मैं तो रुद्रों, मरुतों अथवा वसुओंकी देवता तुम्हें समझता हूँ। यहाँ गन्धर्व, देवता, किन्नर आदि नहीं आते ॥२५, २६, २७, २८॥ यह राक्षसोंके रहनेका स्थान है। तुम यहां कैसे आयी? यहाँ वानर, सिंह, चीते, बाघ, मृगा, भेड़िए, भालू, शेर, कंक (मांस खाने वाला पक्षी) यहाँ रहते हैं, इनसे तुम क्यों नहीं डरती। मतवाले, क्रूर और दौड़कर चलनेवाले हाथियोंसे तुम अकेली इस वनमें क्यों नहीं डरती। तुम कौन हो? किसकी हो? और किस कारणसे इस राक्षसोंसे सेवित भयानक दण्डकारण्यमें अकेली रहती हो? रावणके द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होनेपर, और संन्यासीके वेशमें रावण आया है-यह देखकर, समस्त अतिथि सत्कारोंसे सीताने उसकी पूजा की ॥ २९, ३०, ३१, ३२, ३३ ॥ पहले आसन दिया, पैर धोनेका जल दिया, पुनः सौम्यदर्शन रावणसे भोजन करनेके लिए कहा ॥ ३४ ॥ कमण्डलु और गेरुवा वस्त्र धारण करके संन्यासीके वेशमें रावण आया है, अतएव उसका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। रावणमें ब्राह्मणके अन्य चिन्होंको देखकर भी सीताने ब्राह्मणके समानही उसको निश्चित किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, यह आसन है, आप इच्छापूर्वक बैठें। यह पैर धोनेका जल है इसे आप लें। यह आपके लिए वनमें उत्पन्न पदार्थोंसे बना भोजन है, निर्भय होकर खाइये ॥३६॥ अतिथिके योग्य समस्त व्यवहार करनेवाली राजपत्नी सीताको देखकर तथा उसके

ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श तन्महद्वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

रावणेन तु वैदेही तथा पृष्टा जिहीर्षुणा । परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम् । इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः । सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ ३ ॥
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने । भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः । अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ॥ ५ ॥
तस्मिन्संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने । कैकेयी नाम भर्तारं ममार्या याचते वरम् ॥ ६ ॥
परिगृह्य तु कैकेयी श्वसुरं सुकृतेन मे । मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ ७ ॥
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसंधं नृपोत्तमम् । नाद्यं भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न पास्ये न कदाचन ॥ ८ ॥
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते । इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स पार्थिवः ॥ ९ ॥

द्वारा निमंत्रित होकर अपने वधके मूलभूत सीताहरण करनेका विचार रावणने निश्चित किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर आखेटमें गये हुए अपने सुन्दर पति तथा लक्ष्मणकी वह प्रतीक्षा करने लगी । उसने केवल दिशाएँ देखीं, वह बहुत बड़ा वन देखा, पर राम और लक्ष्मणको नहीं देखा ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छिआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

परिव्राजकरूप धारण करनेवाले और सीताको हरनेकी इच्छा रखनेवाले रावणके पूछनेपर सीताने स्वयं अपना परिचय दिया ॥१॥ यह ब्राह्मण है और अतिथि है, इससे यदि मैं न बोलूँ तो यह मुझे शाप देगा । थोड़ी देर ऐसा सोचकर सीता बोली ॥ २ ॥ मिथिलादेशके राजा महात्मा जनककी मैं कन्या हूं, मेरा नाम सीता है और रामचन्द्रकी प्रिय महारानी हूँ, ॥ ३ ॥ बारह वर्षों तक इक्ष्वाकुओंके घरमें मैं रही, वहाँ मनुष्योंको प्राप्त होनेवाले सब भोग मैंने किये, मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए ॥ ४ ॥ तेरहवें वर्षके प्रारम्भमें राजमन्त्रियोंसे सलाह करके राजाने रामचन्द्रका अभिषेक करना निश्चित किया ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके राज्याभिषेककी जब तयारी होने लगी, तब मेरी सास केकयीने अपने पतिसे वर मांगा ॥ ६ ॥ उन्होने मेरे स्वसुरको सत्यके बन्धनमें बांधकर मेरे पतिका वनवास और भरतका राज्याभिषेक मांगा ॥ ७ ॥ सत्यप्रतिज्ञ और श्रेष्ठ राजा अपने पतिसे ये दो वर मांगे । मैं न खाऊँगी, न सोऊँगी और न जल पीऊँगी । यदि रामचन्द्रका राज्याभिषेक हुआ तो मैं अपने प्राण देदूँगी । इस प्रकार कहती हुई केकयीसे मेरे

अयाचतार्थैरन्वर्थैन च याञ्चां चकार सा। मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ॥१०॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते। रामेति प्रथितो लोके सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः ॥११॥
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः। कामार्तश्च महाराजः पिता दशरथः स्वयम् ॥१२॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्। अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ॥१३॥
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच द्रुतं वचः। तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ॥१४॥
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम्। त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥१५॥
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात्। तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीमकुतोभयः ॥१६॥
चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्ता मम दृढव्रतः। दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ॥१७॥
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम्। तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥१८॥
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा। स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१९॥
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह। जटी तापसरूपेण मया सह सहानुजः ॥२०॥
प्रविष्टो दण्डकारण्यं धर्मनित्यो दृढव्रतः। ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः ॥२१॥
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा। समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया ॥२२॥
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्। रुरून्गोधान्वराहांश्च हत्वाऽऽदायामिषं बहु ॥२३॥

श्वसुर राजाने बहुत अधिक धन. वरके बदलेमें ले लेनेकी प्रार्थना की। पर उसने राजाकी प्रार्थना न मानी। मेरे महातेजस्वी पतिकी उमर पच्चीस वर्षकी है ॥८, ९, १०॥ मेरे जन्मके अठारह वर्ष हुए रामचन्द्र सत्यवादी शीलवान् और शुद्ध हैं ॥ ११ ॥ बड़ी आंखोंवाले महाबाहु रामचन्द्र सब प्राणियोंके हितकारक हैं। कामाधीन पिता राजा दसरथने स्वयं केकयीको प्रसन्न करनेकेलिए रामचन्द्रका अभिषेक नहीं किया। जब रामचन्द्र अपने पिताके यहां अभिषेकके लिए आए, तब केकयीने शीघ्रतापूर्वक मेरे पतिसे यह बात कही। रामचन्द्र, तुम्हारे पिताने जो आज्ञा दी है वह तुम मुझसे सुनो ॥ १२, १३, १४ ॥ यह शत्रुहीन राज्य भरतको दिया जाय और तुम चौदह वर्षोंतक वनवास करो ॥ १५ ॥ रामचन्द्र, तुम वनमें जाओ और अपने पिताको असत्यसे छुड़ाओ। निर्भय रामने केकयीकी वह बात मान ली ॥ १६ ॥ दृढ़व्रत मेरे पतिने वह वचन सुनकर वैसाही किया। दान देते हैं, लेतेनहीं। सत्य बोलते हैं, पर झूठ नहीं। ब्राह्मण, रामचन्द्रने यही श्रेष्ठ व्रत धारण किया है। विमाताका पुत्र पराक्रमी लक्ष्मण रामचन्द्रका भाई है ॥१७,१८॥ युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला वह पुरुषसिंह रामचन्द्रका सहायक है। वह ब्रह्मचारी और अपने व्रतमें दृढ़ है ॥१९॥ वनमें जाते हुए अपने भाईके साथ, धनुष लेकर वह भी आया है। जटाधारण करके तपस्वीके वेशमें मेरे और भाईके साथ धर्मात्मा रामचन्द्र दण्डकारण्यमें आये हैं। इस प्रकार हम तीनों केकयीके कारण राज्यसे निर्वासित हुए हैं ॥ २०, २१ ॥ द्विजश्रेष्ठ, हमलोग पराक्रमके कारण इस सघन वनमें विचरण करते हैं, यदि तुम ठहर सको तो थोड़ी देर यहाँ विश्राम करो ॥ २२ ॥ मेरे पति रुरु, गोधा और वराहको मारकर बहुत अधिक मांस और काफी

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः। एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥२४॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः। प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥२५॥
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः। अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥२६॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम्। रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥२७॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः। सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥२८॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी। सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥२९॥
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि। न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥३०॥
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः। सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥३१॥
रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा। प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥३२॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्। महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥३३॥
सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्। सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥३४॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम्। नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥३५॥
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम्। पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥३६॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्। नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥३७॥

जंगली फल मूल आदि लेकर आवेंगे ॥ २३ ॥ तुम्हारा क्या नाम है, क्या गोत्र है, कौन कुल है और अकेले दण्डकारण्यमें क्यों घूमते हो, यह ठीक-ठीक कहो ॥ २४ ॥ रामचन्द्रकी स्त्री सीताके ऐसा कहनेपर राक्षसाधिप रावणने बड़ाही कठोर उत्तर दिया ॥ २५ ॥ जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सभी डरते हैं। सीते, मैं वही राक्षसोंका स्वामी रावण हूँ ॥ २६ ॥ पीताम्बर पहननेवाली सुवर्णके समान सुन्दर शरीरवाली तुमको देखकर मुझे अपनी स्त्रियाँ पसन्द नहीं आतीं ॥ २७ ॥ बहुतसी उत्तम स्त्रियां इधर-उधरसे हरकर मैं ले आया हूँ। उन सब स्त्रियोंमें तुम मेरी पटरानी बनो ॥ २८ ॥ समुद्रके बीचमें लंका नामकी मेरी राजधानी है। वह समुद्रसे घिरी है और पर्वतके शिखरपर बसी है ॥ २९ ॥ सीते, वहां मेरे साथ वनोंमें घूमना। मैं इस प्रकारके वनवासको उत्तम नहीं समझता ॥ ३० ॥ सीते, यदि तुम मेरी स्त्री बनजाओगी तो सब गहनोंसे लदी हुई पाँच हजार दासियां तुम्हारी सेवा करेंगी ॥ ३१ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर अनवद्याङ्गी जानकी क्रोध करके उस राक्षसका तिरस्कार करती हुई बोलीं ॥ ३२ ॥ महागिरिके समान अविचल, समुद्रके समान अक्षोभ्य और इन्द्रके समान अपने पति रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूँ ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणोंसे युक्त और वटवृक्षके समान अपने आश्रितोंकी रक्षाकरनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३४ ॥ महाबाहु, चौड़ी छातीवाले, सिंहके समान चलनेवाले, सिंहके सदृश नरश्रेष्ठ रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३५ ॥ राजपुत्र पूर्णचन्द्रानन, जितेन्द्रिय, महाकीर्ति, महाबाहु रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३६ ॥ तू सियार, दुर्लभ मुझ सिंहनीकी इच्छा करता है। सूर्यकी प्रभाके समान तुम मेरा स्पर्श भी नहीं कर

पादपान्काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक् । राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस ॥३८॥
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः । आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥३९॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि । कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि ॥४०॥
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् । राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥४१॥
अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि । सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥४२॥
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि । अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥४३॥
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि । अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ।
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥४४॥

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४५॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयोर्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः ।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४६॥
यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४७॥
तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ ।
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥४८॥

सकते ॥ ३७ ॥ राक्षस, रामचन्द्रकी प्रिय स्त्रीको जो तुम ले जाना चाहते हो, अवश्यही तुम मन्दभागी हो । अवश्यही तुम वृक्षोंको सुवर्णमय देख रहे हो (वृक्षोंको सोनेके समान देखना विनाशका सूचक है) ॥ ३८ ॥ तुम अति वेगवान् भूखे मृगशत्रु सिंहके और जहरीले सांपसे उनकी दाढ़ निकालना चाहते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलको हाथोंमें ले जाना चाहतेहो, कलकूट विष पीकर निर्विघ्न लौट जाना चाहते हो ॥ ४० ॥ तुम अपनी आंखें सूईसे खुजला रहे हो, छूरा जीभसे चाट रहे हो, जो रामचन्द्रकी प्रिय स्त्री को लेजाना चाहते हो ॥ ४१ ॥ गलेमें पत्थर बांधकर समुद्र तैरना चाहते हो, सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको अपने हाथोंसे खींच लेना चाहते हो ॥४२॥ जो तुम रामचन्द्रकी प्रिय स्त्रीपर जबरदस्ती करना चाहते हो, वह आगको कपड़ेमें बांधकर लेजाना चाहते हो ॥४३॥ शुद्ध आचरणवाली रामचन्द्रकी स्त्रीका जो हरण करना चाहता है, वह लोहेके शूलोंपर चलना चाहता है, क्योंकि रामचन्द्रकी योग्य स्त्रीको तुम ले जाना चाहते हो ॥ ४४ ॥ वनमें सिंह और शृगालमें जो अन्तर है, छोटी नदी और समुद्रमें जो अन्तर है, अमृत और कांजीमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४५ ॥ सोना और शीशा-लोहेमें जो अन्तर है, चन्दन और कीचड़में जो अन्तर है, हाथी और बिल्लीमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४६ ॥ कौआ और गरुड़में जो अन्तर है, मयूर और जल कौआमें जो अन्तर है, हंस और गीधमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४७ ॥ इन्द्रके समान पराक्रम रखनेवाले रामचन्द्रके धनुषबाण धारण करके वर्तमान रहते हुए, यदि तुम मेरा हरण कर लो

इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥४९॥
तां वेपमानामुपलक्ष्य सीतां स रावणो मृत्युसमप्रभावः ।
कुलं बलं नाम च कर्म चात्मनः समाचचक्षे भयकारणार्थम् ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः । ललाटे भ्रुकुटिं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ १ ॥
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि । रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ २ ॥
यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः । विद्रवन्ति सदा भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥ ३ ॥
येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे । द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ॥ ४ ॥
मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् । कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ॥ ५ ॥
यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् । वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥ ६ ॥
मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि । विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः । तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ॥ ८ ॥

तब भी मुझे पचा नहीं सकते, जिस प्रकार मक्खी, निगला हुआ घी पचा नहीं सकती ॥४८॥ उस दुष्ट राक्षसको ऐसी बातें कहकर शुद्ध अभिप्राय रखनेवाली सीता अंगोंके कांपनेसे दुखी हुई, जिस प्रकार हवासे हिलायी गयी पतली कदली ॥ ४९ ॥ सीता कांप रही है यह देखकर मृत्युके समान प्रभाव रखनेवाला रावण सीताको और डरवानेकेलिए अपना कुल, अपना नाम और अपना काम बतलाने लगा ॥ ५० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

सीताके ऐसा कठोर वचन कहनेपर रावणने बड़े क्रोधसे भौंहे तरेरकर उत्तर दिया ॥ १ ॥ सुन्दरि, मैं कुबेरका सौतेला भाई हूं । तुम्हारा कल्याण हो, मैं प्रतापी दसग्रीव हूँ, मेरा नाम रावण है ॥ २ ॥ पिशाच, पक्षी, सर्प, देवता, गन्धर्व आदि मृत्युके समान जिससे डरकर सदा भागा करते हैं ॥ ३ ॥ सौतेले भाई कुबेरसे किसी कारणवश युद्ध होगया और मैंने पराक्रम करके उन्हें जीत लिया ॥ ४ ॥ मेरे भयसे कुबेर, समृद्धिशाली अपनी लंका नगरीको छोड़कर कैलाश पर्वतपर निवास करते हैं ॥ ५ ॥ कुबेरका पुष्पक विमान, जो स्वेच्छानुसार चलता है उसे, मैंने बलसे ले लिया है और मैं उससे आकाशमें भ्रमण करता हूँ ॥ ६ ॥ मैथिलि, जब मैं क्रोध करता हूँ तब इन्द्र आदि देवता मेरा मुँह देखकर ही भागजाते हैं ॥ ७ ॥ जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ

निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः। भवन्ति यत्र तत्राहं तिष्ठामि च चरामि च ॥९॥
मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा। संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥१०॥
प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता। हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमयतोरणा ॥११॥
हस्त्यश्वरथसंबाधा तूर्यनादविनादिता। सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता ॥१२॥
तत्र त्वं वसं हे सीते राजपुत्रि मया सह। न स्मरिष्यासि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥१३॥
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि। न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥१४॥
स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथो नृपः। मन्दवीर्यस्ततो ज्येष्ठः सुतःप्रस्थापितो वनम् ॥१५॥
तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा। करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना ॥१६॥
रक्ष राक्षसभर्तारं कामय स्वयमागतम्। न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥१७॥
प्रत्याख्याय हि मां भीरु पश्चात्तापं गमिष्यसि। चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः। तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि ॥१९॥
एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना। अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥२०॥
कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्। भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥२१॥

डरता हुआ वायु चलता है। मेरे भयसे सूर्य चन्द्रमा बन जाते हैं। मैं जहाँ रहता हूँ या भ्रमण करता हूँ वहाँके वृक्षोंके पत्ते तक नहीं हिलते और नदियोंकी गति रुक जाती है ॥ ९ ॥ समुद्रपार लंका नामकी सुन्दर मेरी नगरी है। वह भयानक राक्षसोंसे भरी हुई है, जैसे देवताओंसे इन्द्रकी अमरावती ॥ १० ॥ उसके चारों ओर सफेद चारदिवारी है। वहांके महलोंके आंगन आदि सोनेके बने हुए हैं और बाहरका द्वार वैदूर्य मणिका बना हुआ है ॥ ११ ॥ हाथी, घोड़े और रथकी वहां भीड़ है। बाजे बजते रहते हैं, सब कालमें फल देनेवाले वृक्ष वहाँके बागोंमें हैं ॥ १२ ॥ राजपुत्रि सीते, तुम मेरे साथ वहाँ निवास करो। वहाँ रहनेसे मनुष्यस्त्रियोंका तुम्हें स्मरण न होगा ॥ १३ ॥ मनुष्य तथा देवताओंके भोगोंको भोगती हुई, तुम इस अल्पायु मनुष्य रामचन्द्रका भी स्मरण न करोगी ॥ १४ ॥ राजा दसरथने अपने प्रियपुत्र भरतको राज्य दिया, ज्येष्ठ होने परभी रामचन्द्र दुर्बल हैं, इसलिए उसे वन भेज दिया ॥ १५ ॥ जिसका राज्य नष्ट होगया है, अतएव जिसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, उस तपस्या करनेवाले तपस्वी रामचन्द्रको लेकर विशालाक्षि, तुम क्या करोगी ॥ १६ ॥ राक्षसोंके स्वामीकी रक्षा करो, वह स्वयं तुम्हारे पास आया है, उससे तुम अनुराग करो, कामके बाणोंसे व्यथित उसका त्याग करना तुम्हें उचित नहीं ॥ १७ ॥ मेरा त्याग करके हे भीरु, तुमको पश्चात्ताप होगा, जिस प्रकार पुरूरवाको लात मारनेसे उर्वशीको हुआ था ॥ १८ ॥ सुन्दरी, वह रामचन्द्र युद्धमें मेरी अंगुलीके बराबर भी नहीं है। तुम्हारे भाग्यहीसे मैं यहां आगया हूं, तुम मुझे स्वीकार करो ॥ १९ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर जानकीने क्रोध किया। उनकी आंखे लाल हो गयीं। उन्होंने रामचन्द्रसे शून्य उस आश्रममें कठोर वचन कहा ॥ २० ॥ सब देवताओंसे नमस्कृत कुबेरको तुम अपना भाई बतलाते हो और यह बुरा

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥२२॥
अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् । नहि रामस्य भार्यां मामानीय स्वस्तिमान्भवेत्॥२३॥
जीवेच्चिरं वज्रधरस्य पश्चाच्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।
न मादृशीं राक्षस धर्षयित्वा पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् । हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः । नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः । आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ ३ ॥
अर्कं तुद्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम् । कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे । क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः । स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥
संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः । क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

कर्म करना चाहते हो ॥२१॥ रावण अवश्यही सब राक्षसोंका विनाश हो जायगा, क्योंकि उनका राजा तुम्हारे समान कठोर बोलनेवाला बुद्धिहीन और अजितेन्द्रिय है ॥२२॥ इन्द्रकी स्त्रीको लाकर कोई जी जाय यह सम्भव है, पर रामचन्द्रकी स्त्री मुझे ले जाकर कोई सुखी नहीं रह सकता ॥ २३ ॥ वज्रधर इन्द्रकी परम सुन्दरी स्त्रीपर बलात्कार करके कोई जी सकता है, पर राक्षस, मेरा अपमान करनेवाले तुम यदि अमृत भी पी लो तो भी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

सीताके वचन सुनकर प्रतापी रावणने अपने हाथसे हाथ दबाकर अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया ॥ १ ॥ वाक्य बोलनेमें निपुण रावण पुनः सीतासे बोला—उन्मत्त तुमने मेरे बल और पराक्रमकी बात नहीं सुनी, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २ ॥ आकाशमें ठहरकर मैं अपनी भुजाओंसे पृथिवीको उठा सकता हूँ, समुद्रको पी जा सकता हूँ और युद्धमें मृत्युको भी मार सकता हूँ ॥ ३ ॥ बाणोंसे सूर्यको व्यथित कर सकता हूँ, पृथिवीतलको भेद सकता हूँ, स्वेच्छानुसार विचरण करनेवाली उन्मत्ते, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मुझे देखो ॥ ४ ॥ ऐसा कहतेही उसकी लाल आंखें, जिनके चारों ओरका भाग काला है, मयूरपुच्छके समान हो गयीं ॥ ५ ॥ शीघ्रही अपने संन्यासी रूपका त्याग करके बड़ाही उग्र, कालके समान रूप उस रावणने धारण किया ॥ ६ ॥ उसकी आंखें लाल हो गयीं । उत्तम सुवर्णके गहने पहननेवाला रावण, बड़े

दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः । स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ॥ ८ ॥
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः । रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ९ ॥
स तामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव । वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् ॥१०॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि । मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ॥११॥
मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव । नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ॥१२॥
त्यजतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् । राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं राम परिमितायुषम् ॥१३॥
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि । यः स्त्रियो वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् ॥१४॥
अस्मिन्व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः । इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् १५
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः । जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥१६॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः । ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥१७॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् । प्राद्रवन्मृत्युसंकाशं भयार्ता वनदेवताः ॥१८॥
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः । प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥१९॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः । अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥२०॥
सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी । रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥२१॥

क्रोधके कारण नील मेघके समान काला हो गया । उसने परिव्राजकका रूप छोड़कर दस मस्तक और बीस भुजवाला बड़ा शरीर धारण किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ अपना रूप धारण करके रक्त वस्त्र धारण करनेवाला राक्षसाधिप रावण, स्त्रीश्रेष्ठ जानकीको देखकर ठहर गया ॥ ९ ॥ जिसके केश-के अग्र भाग काले हैं, जिसने वस्त्रभूषण धारण किया है, उस सूर्यकी प्रभाके समान सीतासे रावण बोला ॥ १० ॥ यदि तुम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पुरुषको अपना पति बनाना चाहती हो तो, हे वरारोहे, मेरा आश्रय लो । मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ ॥ ११ ॥ तुम मुझे स्वीकार करो, मैं तुम्हारा प्रिय पति होऊँगा । भद्रे, मैं कभी तुम्हारे प्रतिकूल कोई बात न करूंगा ॥ १२ ॥ मनुष्यका स्नेह छोड़ दो, मुझमें स्नेह करो । राज्यच्युत, अपूर्णमनोरथ, अल्पायु रामचन्द्रमें किन गुणोंसे तुम अनुराग करती हो । मूर्खे, तुम अपनेको पण्डिता समझती हो । स्त्रीके कहनेसे मित्रों-के साथ राज छोड़कर हिंसक जन्तुओंवाले इस वनमें जो मूर्ख रहता है, किस गुणसे उसपर तुम अनुरक्त हो ? प्रिय वचन बोलनेवाली और सुननेवाली सीतासे ऐसा अप्रिय वचन बोलकर काममोहित दुष्टात्मा वह राक्षस सीताके पास गया और उसने सीताको पकड़ा, जैसे आकाश-में रोहिणीको बुध पकड़े ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ बाएं हाथसे सीताका मस्तक और दहने हाथ-से ऊरू उसने पकड़ा ॥ १७ ॥ पर्वतशृंगके समान ऊंचा, लम्बे हाथ और लम्बे दांतवाली मृत्युके समान रावणको देखकर वन देवताएं डरकर भाग गयीं ॥ १८ ॥ वह मायाका बना हुआ दिव्य गदहोंका रथ और गदहोंके शब्दसे युक्त, सोनेके पहियोंवाला रावणका बड़ा भारी रथ दिखायी पड़ा ॥ १९ ॥ कठोर वचनोंसे, उस ऊँची आवाज रखनेवाले रावणने सीताको धमकाकर तथा गोद-में लेकर रथपर बैठाया ॥ २० ॥ रावणसे पकड़ी जानेपर यशस्विनी सीता बड़े दुःखसे

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव । विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥२२॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा । भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥२३॥
हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक । ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥२४॥
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् । ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥२५॥
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप । कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥२६॥
ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् । कालोऽप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये ॥२७॥
त्वं कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः । जीवितान्तकरं घोरं रामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥२८॥
हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह । ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥२९॥
आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान् । क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥३०॥
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् । क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥३१॥
दैवतानि च यान्यस्मिन्वने विविधपादपे । नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ॥३२॥
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि विविधानि च । सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानि वै ॥३३॥
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । विवशा ते हृता सीता रावणेनेति शंसत ॥३४॥

रोने लगीं। वनमें दूर गये हुए रामचन्द्रको सीता 'राम' 'राम' कहकर पुकारने लगीं ॥ २१ ॥ अनुरागरहित, अतएव अपनेको छुड़ा लेनेके लिए सर्पिणीके समान छटपटाती हुई, सीताको गोद में लेकर कामार्त रावण आकाशमें उड़ गया ॥ २२ ॥ रावणके द्वारा आकाशमार्गसे हरी जाती हुई दुःखिनी सीता उन्मत्तके समान भ्रान्तचित्त होकर दुःखसे रोने लगीं ॥ २३ ॥ अपने बड़े भाईको प्रसन्न करनेवाले महाबाहो लक्ष्मण स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस मुझे हरकर ले जा रहा है, यह तुम नहीं जानते ॥ २४ ॥ रामचन्द्र, धर्मके लिए, प्राण, सुख और धनका तुमने त्याग किया है, अधर्मी राक्षसके द्वारा मैं हरी जा रही हूँ और तुम नहीं देखते ॥ २५ ॥ रामचन्द्र, तुम कुमार्गमें चलनेवालोंको शिक्षा देते हो, उन्हें सुमार्गमें ले आते हो, फिर ऐसे पापी रावणको क्यों नहीं सिखाते ॥ २६ ॥ बुरे आदमियोंको उनकी बुराईका फल शीघ्र ही नहीं मिलता, समयकी भी जरूरत पड़ती है, जिसप्रकार शस्योंको पकनेके लिए समय आवश्यक होता है ॥ २७ ॥ कालसे बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण तुमने प्राणनाशक ऐसा क्रूर कर्म किया है, तुम्हें रामचन्द्रके हाथों विपत्ति भोगनी पड़े ॥ २८ ॥ हाय, इस समय कैकयीका मनोरथ, उसके बान्धवोंके साथ पूरा हुआ; क्योंकि धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्रकी धर्मपत्नी मैं हरी जा रही हूँ ॥ २९ ॥ मैं जनस्थानसे, वहांके फूले हुए कर्णिकार पुष्पोंसे कहती हूँ कि तुम शीघ्र ही रामचन्द्रसे कहो कि रावण सीताको हरकर ले जा रहा है ॥ ३० ॥ हंस और सारसोंसे युक्त गोदावरी नदीको मैं प्रणाम करती हूँ। आप लोग शीघ्रही रामचन्द्रसे कहें कि रावण सीताको हरकर ले जा रहा है ॥ ३१ ॥ इस अनेक वृक्षोंवाले वनमें जितने देवता रहते हैं, उन सबको मैं प्रणाम करती हूँ, वे लोग शीघ्रही मेरे हरी जानेकी बात रामचन्द्रसे कहें ॥ ३२ ॥ जो कोई प्राणी यहां रहते हैं, जो कोई पशु-पक्षी हों, उन सबको मैं शरण हूँ ॥ ३३ ॥ वे लोग रामचन्द्रसे कहें कि प्राणोंसे भी प्रिय

विदित्वा तु महाबाहुरमुत्रापि महाबलः । आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ॥३५॥
सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता । वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥३६॥
सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता । समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥३७॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् । अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥३८॥
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः । सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥३९॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम । लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे । निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥
ततः पर्वतशृङ्गाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः । वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥ २ ॥
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः । भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥ ३ ॥
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः । राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः । तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ५ ॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि । कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ॥ ६ ॥

आपकी स्त्री हरी गयी, वह विवश थी, उसको रावण हर कर लेगया ॥३४॥ जाननेके पश्चात् महाबली, महाबाहु रामचन्द्र यमराजके द्वारा हरी गयी और परलोकमें गयी हुई भी मुझको, अपने पराक्रमसे लौटा ले आवेंगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार दुःखित शब्दोंसे विलाप करती हुई दुःखिनी सीताने पेड़पर बैठे हुए एक गीधको देखा ॥ ३६ ॥ रावणके पञ्जेमें फँसी हुई सीता उस गीधको देखकर डरती हुई, दुःखके शब्दोंमें रोने लगी ॥ ३७ ॥ आर्य, जटायु, पापी राक्षसराज अनाथके समान निर्दयतासे मुझे हरकर लेजा रहा है ॥ ३८ ॥ तुम इस क्रूर राक्षसको रोक नहीं सकते, क्योंकि यह बलवान और बहुतोंको जीतनेवाला है । यह पापी अस्त्र भी लिए हुए है ॥ ३९ ॥ पर मेरे हरी जानेका यह सब वृत्तान्त यथावत् तुम राम और लक्ष्मणसे कहना ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

उस शब्दको गहरी नींदमें सोये हुए भी जटायुने सुन लिया । उस शब्दसे जागकर जटायुने देखा और सीता तथा रावणको उसने देखा ॥ १ ॥ उस श्रेष्ठपक्षीने, जो पर्वतके समान ऊँचा था, जिसकी चोंच तीखी थी, पेड़परसे ही मनोहर वचन कहा ॥ २ ॥ दसग्रीव, सनातन धर्ममें स्थित, सत्यप्रतिज्ञ, महाबली गृध्रराज मैं जटायु हूँ । भाई, तुमको इससमय ऐसा निंदित काम नहीं करना चाहिए । महेन्द्र और वरुणके समान सबके स्वामी समस्त संसारके हित करनेवाले राजा दशरथके पुत्र लोकनाथ रामचन्द्रकी यह यशस्विनी धर्मपत्नी है ॥ ३, ४, ५ ॥ इसका सीता नाम है,

रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल। निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत्। यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ८ ॥
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम्। व्यवस्यन्त्यनुराजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ॥ ९ ॥
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः। धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥१०॥
पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर। ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ॥११॥
कामस्वभावो यः सोऽसौ नशक्यस्तं प्रमार्जितुम्। नहि दुष्टात्मनामार्य मा वसत्यालये चिरम् ॥१२॥
विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः। नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि ॥१३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः। अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१४॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः। यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्यां गमिष्यसि॥१५॥
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा। दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥१६॥
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे। ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥१७॥
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत्। तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥१८॥
यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम्। शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥१९॥

जिसको तुम हर ले जाना चाहते हो। अपने धर्ममें स्थित कोई राजा, कैसे परस्त्रीका स्पर्श कर सकता है ॥ ६ ॥ महाबल, राजस्त्रियोंकी रक्षा तो विशेष होनी चाहिए। इस नीच बुद्धिको परस्त्रियोंके संसर्गसे हटाओ ॥ ७ ॥ मनुष्यके जिस कार्यकी लोग निन्दा करें, उसे वह नहीं करना चाहिए। अपनी स्त्रीके समान दूसरेकी स्त्री की भी रक्षा परस्परसे करनी चाहिए ॥८॥ पौलस्त्यनन्दन, धर्म हो या काम, जिसका उपदेश शास्त्रोंमें नहीं किया गया है, श्रेष्ठ राजा उसका अनुष्ठान नहीं करते ॥ ९ ॥ धर्म, कल्याण, पाप, राजासे ही प्रारम्भ होकर प्रजा में फैलते हैं। अतएव राजाही धर्म, काम तथा धनका खजाना है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ, तुम पाप स्वभाववाले, चंचल और निषिद्ध कर्म करनेवाले हो, तुमको विमानके समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया ॥ ११ ॥ जिस मनुष्यका स्वभाव काम प्रधान होता है, वह अपने उस स्वभावको दूर नहीं कर सकता। दुष्टोंके घरमें पुण्य अथवा पुण्यफल ऐश्वर्य आदि बहुत दिनों तक नहीं रहते ॥ १२ ॥ तुम्हारे देश, तुम्हारे नगरमें महाबली रामचन्द्रने यदि कोई अपराध नहीं किया है, तो तुम उनके प्रति अपराध क्यों करते हो ॥ १३ ॥ सूर्पणखाके कहनेसे जनस्थानमें गये हुए, अहंकारी खरका पुण्यात्मा रामचन्द्रने वध किया तो तुम्हीं इसकी यथार्थताका निर्णय करो कि इसमें रामचन्द्रका कौन दोष है, जिस कारण उस लोकनाथकी स्त्रीको हरकर तुम ले जारहे हो ॥ १५ ॥ शीघ्रही जानकीको छोड़ दो, जब तक अग्निके समान जलती हुई भयानक आंखोंसे रामचन्द्र तुमको न जला दें, जैसे इन्द्रने वृत्रको जलाया था ॥ १६ ॥ जहरीले सांपको कपड़ेमें तुमने बांधा है पर इसका तुम्हें ज्ञान नहीं है। गलेमें यमराजकी फांसी लगा ली है, पर तुम समझते नहीं हो। मनुष्यको उतना ही बोझ उठाना चाहिए जो उसको पीड़ित न करे, उतनाही खाना चाहिए, जो पच जाय और रोग न हो ॥१८॥ जिस कामके करनेसे न धर्म हो, न कीर्ति हो, न यश, केवल शरीर-

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम रावण । पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः ॥२०॥
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी । न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥२१॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः । हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥२२॥
युद्ध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण । शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा ॥२३॥
असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः । न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति॥२४॥
किं नु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ । क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ॥२५॥
नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् । सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥२६॥
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः । जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥२७॥
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण । वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥५०॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥ १ ॥
स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे । बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा ॥ २ ॥

को कष्ट हो उस कामको कौन करता है ॥ १९ ॥ रावण, साठ हजार वर्ष मेरे उत्पन्न हुए और पिता पितामहोंके राज्यका पालन करते हुए हो गये ॥२०॥ मैं बूढ़ा हूँ और तुम युवा, तुम धनुष कवच और शरके साथ रथपर हो, नहीं तो जानकीको लेकर मेरे सामनेसे निर्विघ्न नहीं चले जाते ॥२१॥ मेरे देखते देखते बलपूर्वक तुम सीताका हरण नहीं कर सकते, जिस प्रकार तार्किक हेतुओं-के द्वारा सत्यसिद्ध वेदश्रुतिको कोई नहीं काट सकता ॥ २२ ॥ यदि वीर हो तो एक मुहूर्त ठहरो, युद्ध करो। जैसे खर भूमिमें सोया हैं, वैसे ही तुम भी सोओगे ॥ २३ ॥ जिसने अनेक युद्धोंमें दैत्यों और दानवोंको मारा है, वे चीर धारण करनेवाले रामचन्द्र शीघ्र ही तुम्हारा वध करेंगे । ॥ २४ ॥ मैं क्या कर सकता हूँ । वे दोनों राजपुत्र बड़ी दूर गये हैं । यह निश्चित है कि उनके भयसे शीघ्र ही तुम यहांसे भाग जाओगे ॥ २५ ॥ पर मेरे जीतेजी कमलपत्राक्षी, रामचन्द्रकी प्रिय महारानी सदाचारिणी सीताको तुम यहांसे नहीं ले जा सकते ॥ २६ ॥ मुझे अवश्यही रामचन्द्र तथा दसरथके प्रिय कार्य करनेके लिए अपने प्राण लगा देने चाहियें ॥ २७ ॥ दसग्रीव रावण, ठहरो, एक मुहूर्त ठहरो. जैसे डंटीसे फल गिराया जाता है, वैसे ही रथसे मैं तुम्हें गिराता हूँ । राक्षस अपने बलके अनुसार युद्धके द्वारा मैं तुम्हारा आतिथ्य करूंगा ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इस प्रकार जटायुके कहनेपर उत्तम सुवर्णका कुण्डल धारण करनेवाला, क्रोधी राक्षस-राज, क्रोधसे आँखें लाल कर जटायुकी ओर दौड़ा ॥ १ ॥ जटायु और रावणके उस भयानक

तद्बभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा । सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकार्णिभिः । अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलम् ॥ ४ ॥
स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः । जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे ॥ ५ ॥
तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः । चकार बहुधा गात्रे व्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥
अथ क्रोधाद्दशग्रीवो जग्राह दश मार्गणान् । मृत्युदण्डनिभान्घोराञ्शत्रोर्निधनकाङ्क्षया ॥ ७ ॥
स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तैरजिह्मगैः । बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैः शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम् । अचिन्तयित्वा बाणांस्तान्राक्षसं समभिद्रवत ॥ ९ ॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम् । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगोत्तमः ॥१०॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः । ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥११॥
शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः । कुलायमभिसंप्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा ॥१२॥
स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद्धनुः ॥१३॥
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् । पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥१४॥
काञ्चनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् । तांश्चास्य जवसंपन्नाञ्जघान समरे बली ॥१५॥
अथ त्रिवेणुसंपन्नं कामगं पावकार्चिषम् । मणिसोपानचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् ॥१६॥

युद्धमें बड़ा विकट प्रहार हुआ । जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़ाए दो मेघोंका संघर्ष आकाशमें होता है ॥ २ ॥ गीध और राक्षसका वह युद्ध बड़ा अद्भुत हुआ । पांखवाले, तथा पुष्पयुक्त जैसे दो पर्वतोंका युद्ध होता हो ॥ ३ ॥ नालीक, नाराच और तीखे विकर्णि बाणसे महाबली गृध्र-राजको रावणने तोप दिया ॥ ४ ॥ पक्षिराज जटायुने रावणके चलाये उन बाणोंको युद्धमें रोक लिया ॥ ५ ॥ पक्षिश्रेष्ठ जटायुने अपने तीखे नखवाले चरणोंसे रावणके शरीरमें अनेक घाव किये ॥ ६ ॥ तब रावणने मृत्युदण्डके समान भयानक दस बाण शत्रुका वध करनेके लिए ग्रहण किये ॥ ७ ॥ खूब बल लगाकर चलाए गये, सीधे चलनेवाले, शानपर चढ़ाए हुए तीखे और क्रूर बाणोंसे रावणने गृध्रको छेदा ॥ ८ ॥ राक्षसके रथपर रोती हुई सीताको बैठी देखकर जटायुने उन बाणोंकी परवाह नहीं की और वे रावण पर टूट पड़े ॥ ९ ॥ मुक्ता और मणियोंसे विभूषित रावणका बाणयुक्त धनुष महातेजस्वी जटायुने अपने पैरोंसे तोड़ दिया ॥ १० ॥ क्रोधसे बढ़ा हुआ रावण दूसरा धनुष लेकर सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ११ ॥ युद्धमें रावणके बाणोंसे ढँक जानेके कारण जटायु घोसलेमें बैठे पक्षीके समान मालूम पड़ने लगे ॥ १२ ॥ पांखोंसे उन सब बाणोंको हटाकर महातेजस्वी जटायुने अपने पैरोंसे रावणका धनुष तोड़ डाला ॥ १३ ॥ अग्निके समान प्रदीप्त रावणका वह कवच महातेजस्वी जटायुने अपने पंखोंसे तोड़ दिया ॥ १४ ॥ बली जटायुने पिशाचके मुखवाले अतिवेगवान् दिव्य खरोंको भी मार डाला, जो सोनेके कवच धारण किये हुए थे ॥ १५ ॥ महाबली जटायुने अग्निके समान प्रकाशमान् मणि और सुवर्णसे चित्रित इच्छानुसार चलनेवाले तथा युगन्धर युक्त रावणके रथको तोड़ डाला ॥१६॥

पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह। पातयामास वेगेन ग्राहिभी राक्षसैः सह ॥१७॥
सारथेश्चास्य वेगेन तुण्डेन च महच्छिरः। पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजो महाबलः ॥१८॥
स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः। अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः ॥१९॥
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम्। साधुसाध्विति भूतानि गृध्रराजमपूजयन् ॥२०॥
परिश्रान्तं तु तं दृष्ट्वा जरया पक्षियूथपम्। उत्पपात पुनर्हृष्टो मैथिलीं गृह्य रावणः ॥२१॥
तं प्रहृष्टं निधायाङ्के रावणं जनकात्मजाम्। गच्छन्तं खड्गशेषं च प्रनष्टहतसाधनम् ॥२२॥
गृध्रराजः समुत्पत्य रावणं समभिद्रवत्। समावार्य महातेजा जटायुरिदमब्रवीत् ॥२३॥
वज्रसंस्पर्शबाणस्य भार्यां रामस्य रावण। अल्पबुद्धे हरस्येनां वधाय खलु रक्षसाम् ॥२४॥
समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः। विषपानं पिबस्येतत्पिपासित इवोदकम् ॥२५॥
अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः। शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनशिष्यसि ॥२६॥
बद्धस्त्वं कालपाशेन क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे। वधाय बडिशं गृह्य सामिषं जलजो यथा ॥२७॥
नहि जातु दुराधर्षौ काकुत्स्थौ तव रावण। धर्षणं चाश्रमस्यास्य क्षमिष्येते तु राघवौ ॥२८॥
यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम्। तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥२९॥
युद्ध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण। शयिष्यसे हतो भूमौ यथा भ्राता खरस्तथा ॥३०॥

चँवरके साथ पूर्ण चन्द्रमाके समान रावणका छत्र, उसके ग्रहण करनेवाले राक्षसोंके साथ पक्षीने शीघ्रतापूर्वक पृथिवीमें गिरा दिये ॥ १७ ॥ महाबली पक्षिराजने रावणके सारथीके मस्तकपर बड़े वेगसे चोंच मारी ॥ १८ ॥ धनुष, रथके टूट जानेसे, सारथी और घोड़ोंके मारे जानेसे रावण सीताको गोदमें लेकर पृथिवीमें गिरा ॥ १९ ॥ रथके नष्ट होनेसे, रावणको पृथिवीमें गिरते देखकर सब प्राणियोंने साधु-साधु कहकर जटायुकी प्रशंसा की ॥ २० ॥ वृद्धावस्थाके कारण उस पक्षिराजको थका हुआ जानकर रावण प्रसन्न होकर और सीताको लेकर आकाशमें ऊपर उठा ॥ २१ ॥ जानकीको गोदमें लेकर, अन्य सब साधनोंके नष्ट हो जानेसे केवल एक तलवार लेकर प्रसन्नतापूर्वक जाते हुए रावण पर गृध्रराजने उड़कर पुनः आक्रमण किया, उसको चारो तरफसे घेरकर महातेजस्वी जटायु बोले ॥ २२, २३ ॥ जिनके बाण वज्रके समान लगते हैं, उन रामचन्द्रकी स्त्रीको अरे मूर्ख, सब राक्षसोंका वध करानेके लिए हर ले जा रहा है ॥ २४ ॥ तुम मित्र बन्धु अमात्य सेना तथा अपने परिचारकोंके साथ यह विष पान कर रहे हो, जिस प्रकार प्यासा मनुष्य जल पीता है ॥ २५ ॥ अपने कर्मोंके फल न जानकर मूर्ख मनुष्य शीघ्रही विनष्ट हो जाते हैं, वैसे तुम विनष्ट होओगे ॥ २६ ॥ तुम कालपाशसे बँध गये हो, इससे तुम्हारी मुक्ति कैसे होगी, जिस प्रकार मछली अपने वधके लिए माँसयुक्त बंसी पकड़ लेती है ॥ २७ ॥ रावण, अपराजेय राम और लक्ष्मण अपने आश्रमका तुम्हारे द्वारा इस प्रकारका अपमान कभी नहीं सह सकते ॥२८॥ डरपोक, तुमने जो लोकनिन्दित काम किया है, वह चोरोंके योग्य है, वीरोंके योग्य यह मार्ग नहीं है ॥ २९ ॥ रावण यदि तुम वीर हो, एक मुहूर्त ठहरो, मुझसे युद्ध करो, जिस प्रकार तुम्हारा भाई खर युद्धभूमिमें सो गया है, उसी प्रकार तुम भी सोओगे ॥ ३० ॥

परेतकाले पुरुषो यत्कर्म प्रतिपद्यते। विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोऽसि कर्म तत् ॥३१॥
पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः को नु तत्पुमान्। कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयंभूर्भगवानपि ॥३२॥
एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः। निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ॥३३॥
तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः। अधिरूढो गजारोहो यथा स्याद्दुष्टवारणम् ॥३४॥
विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन्। केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः ॥३५॥
स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः। अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः ॥३६॥
संपरिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्केन रावणः। तलेनाभिजघानार्तो जटायुं क्रोधमूर्च्छितः ॥३७॥
जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः। वामबाहून्दश तदा व्यपाहरदरिंदमः ॥३८॥
संछिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाभवन्। विषज्वालावलीयुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः ॥३९॥
ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान्। मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ॥४०॥
ततो मुहूर्तं सङ्ग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः। राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च ॥४१॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः। पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ॥४२॥
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा। निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥४३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता ॥४४॥

मरनेके समय अपने विनाशके लिए मनुष्य जैसा काम करता है, वैसा अधर्मका काम तुमने किया है ॥ ३१ ॥ जिस कर्मका फल पाप हो, वैसा कर्म लोकाधिपति इन्द्र तथा स्वयं स्वयंभू भगवान् भी नहीं करते, फिर मनुष्य कौन करेगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उस राक्षससे उत्तम वचन बोलकर पराक्रमी जटायु रावणकी पीठपर गिरे ॥ ३३ ॥ उसको पकड़कर तीखे नखोंसे उसे चारो ओर-से फाड़ने लगे, जिस प्रकार हाथीवान हाथीपर बैठकर मतवाले हाथीको छेदता है ॥ ३४ ॥ नखोंसे रावणको खरोंचते थे, चोंचसे उसकी पीठ नोचते थे, उसके बाल उखाड़ते थे। नख, पाँख और मुख ये ही जटायुके आयुध थे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार गृध्रराजके द्वारा बार-बार पीड़ित राक्षस-के ओठ क्रोधसे फरकने लगे और वह काँप गया ॥ ३६ ॥ बाँयीं ओरसे जानकीको पकड़कर दुखी रावणने क्रोधसे बढ़कर जटायुको मारा ॥ ३७ ॥ वहाँसे हटकर पक्षिराज जटायुने अपनी चोंचसे रावणके दस हाथ उखाड़ लिए ॥३८॥ हाथोंके उखड़नेपर शीघ्रही नये हाथ निकल आये, जिस प्रकार वल्मीकसे विष-ज्वालायुक्त सर्प निकलते हैं ॥ ३९ ॥ तब पराक्रमी रावणने सीताको छोड़कर गृध्रराजको मुक्कों और लातोंसे मारा ॥ ४० ॥ राक्षसोंके स्वामी और पक्षियोंके स्वामीमें, जो अतुलनीय पराक्रम थे, एक मुहूर्त तक युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ रामचन्द्रके लिए कष्ट उठानेवाले जटायुके दोनों पैर, पाँख रावणने तलवार निकालकर काट डाले ॥ ४२ ॥ क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसके द्वारा पाँखके कट जानेसे वह गृध्रराज पृथिवीमें गिर पड़ा। उसका जीवन थोड़ीही देर-के लिए अवशिष्ट था ॥ ४३ ॥ खूनसे लिपटे जटायुको भूमिमें गिरते देख दुःखिनी सीता अपने

तं नीलजीमूतनिकाशकल्पं सपाण्डुरोरस्कमुदारवीर्यम् ।
ददर्श लङ्काधिपतिः पृथिव्यां जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ॥४५॥
ततस्तु तं पत्ररथं महीतले निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् । गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥
निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम् । अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते ॥ २ ॥
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः । धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ॥ ३ ॥
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः । शेते विनिहतो भूमौ ममभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥
त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना । सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥ ५ ॥
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् । अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् । मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥
क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने । जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ ८ ॥

बान्धवके समान उनकी ओर दौड़ी ॥ ४४ ॥ नीलमेघके समान सफेद छातीवाले प्रसिद्ध पराक्रमी जटायुको बुझे हुए दावानलके समान रावणने पृथिवीमें पड़ा देखा ॥ ४५ ॥ रावणके वेगसे मर्दित पृथिवीमें गिरे हुए उस पक्षिराजको छूकर चन्द्रानना जनकपुत्री सीता रोने लगी ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

चन्द्रमुखी सीता रावणके द्वारा निहत गृध्रराजको देखकर बड़े दुःखसे रोने लगी ॥ १ ॥ मनुष्योंके सुख-दुःखमें निमित्त, लक्षण, स्वप्न, पक्षियोंका दर्शन और उनका शब्द अवश्य दीख पड़ते हैं ॥ २ ॥ राम, मृग और पक्षी मेरे सम्बन्धके अशुभकी सूचना देनेके लिए दौड़ रहे हैं, पर तुम अपनेपर आई हुई इस विपत्तिको नहीं जानते ॥ ३ ॥ राम, ये पक्षिराज कृपा करके मेरी रक्षाके लिए यहाँ आये थे । वे मेरे अभाग्यसे जमीनमें पड़े सो रहे हैं ॥ ४ ॥ काकुत्स्थ राम, लक्ष्मण, आज मेरी रक्षा करो । इस प्रकार डरी हुई श्रेष्ठ स्त्री सीता विलाप करने लगी, जिससे पासके आदमी सुन सकें ॥ ५ ॥ जिसकी मालाएँ और गहने बिखर गये थे, उस अनाथके समान विलाप करनेवाली सीताकी ओर राक्षसाधिप रावण दौड़ा ॥ ६ ॥ लताके समान बड़े-बड़े वृक्षोंको सीता आलिंगन करती और उनसे लिपट जाती थी। छोड़ो-छोड़ो कहता हुआ रावण उसके पास गया ॥ ७ ॥ रामसे रहित वनमें राम-राम. चिल्लाती हुई सीताका केश यमराजके समान रावणने

प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् । जगत्सर्वममर्यादं तमसाऽन्धेन संवृतम् ॥ ९ ॥
न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः । दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा ॥१०॥
कृतं कार्यमिति श्रीमान्व्याजहार पितामहः । प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन्सर्वे ते परमर्षयः ॥११॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः । रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छया ॥१२॥
स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च । जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥१३॥
तप्ताभरणवर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी । रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामिनी यथा ॥१४॥
उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः । अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना ॥१५॥
तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च। पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥१६॥
तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् । बभौ चादित्यरागेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥१७॥
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् । न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥१८॥
बभूव जलदं नीलं भित्त्वा चन्द्र इवोदितः । सुललाटं सुकेशान्तं पद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलंकृतम् । तस्याः सुनयनं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ॥२०॥
रुदितं व्यपमृष्टास्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् । सुनासं चारुताम्रोष्ठमाकाशे हाटकप्रभम् ॥२१॥
राक्षसेन्द्रसमाधूतं तस्यास्तद्वदनं शुभम् । शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः ॥२२॥

पकड़ा ॥ ८ ॥ जब रावणने सीताका इस प्रकार अपमान किया, उस समय समस्त सचराचर जगतमें गाढ़ घनान्धकार हो गया और मर्यादाहीन हो गया ॥ ९ ॥ वायुका बहना बन्द हो गया, भगवान् सूर्य प्रभाहीन होगये । रावणके द्वारा सीताका पकड़ा जाना दिव्य आँखोंसे न देखकर पितामह ब्रह्माने कहा कि कार्य सिद्ध होगया और वे सब महर्षि प्रसन्न और दुःखी हुए (रावणका शीघ्र विनाश होगा इस लिए प्रसन्न और सीताका दुःख देखकर दुःखी हुए) ॥ १०, ११ ॥ दण्ड-कारण्यवासियोंने सीताका यह अपमान देखकर अनायासही समझ लिया कि अब रावणके विनाशका समय आ गया ॥ १२ ॥ राम-राम और लक्ष्मण कहकर रोती हुई उस सीताको लेकर राक्षसेश्वर रावण आकाशमें चला गया ॥ १३ ॥ तपाये हुए सुवर्णाभरणके समान अंगवाली और पीत वस्त्र धारण करनेवाली सीता बिजलीके समान मालूम होती थी ॥ १४ ॥ उड़ते हुए उसके पीले वस्त्रसे आगसे प्रदीप्त पर्वतके समान रावण अधिक शोभता था ॥ १५ ॥ परम कल्याणी उस सीताके सुगन्धित और लाल कमल रावणके शरीर पर गिरे ॥ १६ ॥ आकाशमें उड़ा हुआ सुवर्णके समान सीताका वस्त्र सायंकालमें सूर्यके रंगसे लाल मेघके समान मालूम होता था ॥१७॥ रावणके गोदमें पड़ा हुआ सीताका वह सुन्दर मुख रामचन्द्रके विना शोभित नहीं होता था, जिस प्रकार विना नालका कमल शोभित नहीं होता ॥ १८ ॥ नीलमेघको भेदकर उदित हुए चन्द्रके समान प्रशस्त ललाट, सुन्दर केश, चिकना पद्म-गर्भके समान श्वेत, उज्ज्वल और चमकीले दाँतोंसे अलंकृत सुन्दर आँखोंवाला, रावणके अंकमें वर्तमान सीताका मुख चन्द्रके समान मालूम पड़ा ॥ १९, २० ॥ रोता हुआ, जिसमें सतत आँसू बह रहा है, चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर, नासिका और लाल ओष्ठवाला सुवर्णके समान सीताका वह सुन्दर मुख राक्षसेन्द्र रावणके द्वारा

सा हेमवर्णा नीलाङ्गं मैथिली राक्षसाधिपम् । शुशुभे काञ्चनी काञ्चीनीलं गजमिवाश्रिता॥२३॥
सा पद्मपीता हेमाभा रावणं जनकात्मजा। विद्युद्घनमिवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा ॥२४॥
तस्या भूषणघोषेण वैदेह्या राक्षसेश्वरः । बभूव विमलो नीलः संघोष इव तोयदः ॥२५॥
उत्तमाङ्गच्युता तस्याः पुष्पवृष्टिः समन्ततः । सीताया ह्रियमाणायाः पपात धरणीतले ॥२६॥
सा तु रावणवेगेन पुष्पवृष्टिः समन्ततः । समाधूता दशग्रीवं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥२७॥
अभ्यवर्तत पुष्पाणां धारा वैश्रवणानुजम् । नक्षत्रमाला विमला मेरुं नगमिवोत्तमम् ॥२८॥
चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् । विद्युन्मण्डलसंकाशं पपात धरणीतले ॥२९॥
तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् । प्रशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ॥३०॥
तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा । जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ॥३१॥
तस्यास्तान्यग्निवर्णानि भूषणानि महीतले । सघोषाण्यवशीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात् ॥३२॥
तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारस्ताराधिपद्युतिः । वैदेह्या निपतन्भाति गङ्गेव गगनच्युता ॥३३॥
उत्पातवाताभिरता नानाद्विजगणायुताः । मा भैरिति विधूताग्रा व्याजह्रुरिव पादपाः ॥३४॥
नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः । सखीमिव गतोत्साहां शोचन्तीव स्म मैथिलीम् ॥३५॥
समन्तादभिसंपत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः । अन्वधावंस्तदा रोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥३ ॥

कँपायो हुआ दिनमें उदित चन्द्रमाके समान नहीं शोभता था॥२१,२२॥ सोनेके समान वर्णवाली सीता काले राक्षसराजके साथ ऐसी मालूम होती थी, जैसे काले हाथीको सोनेकी करधनी पहनायी गयी हो ॥ २३ ॥ कमलके समान पीली, सुवर्णके समान वर्णवाली, उज्ज्वल गहने पहने हुई सीता मेघमध्यस्थ बिजलीके समान मालूम होती थी ॥ २४ ॥ जानकीके गहनोंके शब्दसे रावण शब्दयुक्त नीले मेघके समान मालूम हुआ ॥ २५ ॥ हरी जाती हुई सीताके मस्तकसे गिरे पुष्पोंकी वृष्टि पृथिवीमें चारो ओर हुई ॥ २६ ॥ वह गिरी हुई पुष्पवृष्टि रावणके वेगसे उड़ाई जाकर पुनः उसीके पास आई ॥ २७ ॥ पुष्पोंकी धाराने कुबेरके छोटे भाई रावणको घेर लिया. जिस प्रकार नक्षत्रोंकी विमल माला पर्वत श्रेष्ठ मेरुको घेर लेती है ॥ २८ ॥ जानकीके चरनसे गिरा हुआ, रत्नभूषित नूपुर बिजलीके समान पृथिवीपर गिरा ॥ २९ ॥ वृक्षके पत्तोंके समान रक्तवर्ण-वाली सीताने काले राक्षसेश्वरको शोभित किया । जिस प्रकार सोनेकी रस्सी, हाथीको सुशोभित करती है ॥ ३० ॥ उल्काके समान अपने तेजसे आकाशमें प्रकाशमान सीताको रावणने आकाश मार्गसे हरण किया ॥ ३१ ॥ अग्निके समान दीप्त सीताके वे भूषण शब्द करते हुए आकाशसे तारके समान पृथिवीपर गिरे ॥ ३२ ॥ चन्द्रमाके समान चमकीला सीताके स्तनोंके बीचसे गिरा हुआ हार आकाशसे गिरती हुई गंगाके समान मालूम हुआ ॥३३॥ अनेक पक्षियोंसे युक्त, उत्पात वायुसे कँपाये गये वृक्ष, काँपती हुई अपनी टहनियोंसे 'मत डरो' 'मत डरो' ऐसा कह रहे हैं ॥ ३४ ॥ तलावोंके कमल उचट गये, मछली आदि जलचर प्राणी डर गये, उत्साहहीन होकर मानो वे अपनी सखी सीताके लिए शोक करने लगे॥३५॥ सिंह, व्याघ, मृग आदि एकत्र होकर

जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः । सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥३७॥
ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः । प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत्पाण्डुरमण्डलः ॥३८॥
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता । यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः ॥३९॥
इति भूतानि सर्वाणि गणशः पर्यदेवयन् । वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ॥४०॥
उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्य नयनैर्भयादिव विलक्षणैः । सुप्रवेपितगात्राश्च बभूवुर्वनदेवताः ॥४१॥
विक्रोशन्तीं दृढं सीतां दृष्ट्वा दुःखं तथागताम् । तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम् ॥४२
अवेक्षमाणां बहुशो वैदेहीं धरणीतलम् । स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम् ।
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम् ॥४३॥
ततस्तु सा चारुदती शुचिस्मिता विनाकृता बन्धुजनेन मैथिली ।
अपश्यती राघवलक्ष्मणावुभौ विवर्णवक्त्रा भयभारपीडिता ॥४४॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥
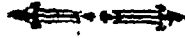
त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा । दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥ १ ॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् । रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥ २ ॥

सीताकी छायाके पीछे-पीछे क्रोधसे दौड़े ॥ ३६ ॥ झरनेरूपी आँसू बहाकर, शिखररूपी हाथ ऊँचा उठाकर सीताके हरणके समय पर्वत मानो रो रहे हैं ॥ ३७ ॥, सीता हरी जा रही है यह देखकर सूर्य दुखी हुए, उनकी प्रभा नष्ट हो गयी, उनका मण्डल पीला पड़ गया । धर्म नहीं है सत्य, ऋजुता और दयालुता कहाँ है जो आज रामचन्द्रकी सीताको रावण हरकर ले जाता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सब प्राणी अपने-अपने दलमें रोने लगे । मृगोंके बच्चे डरकर तथा दुखी होकर रोने लगे ॥ ४० ॥ अपनी शोभाहीन आँखोंसे भयपूर्वक देख-देखकर वनदेवताओंके अंग काँपने लगे ॥ ४१ ॥ इस प्रकारके आये दुखको देखकर सीता रोने लगी । लक्ष्मण, हा राम, कहकर वह धीरे-धीरे रोने लगी । बार-बार पृथिवीकी ओर देखने लगी । उसके केश बिखर गये थे । चन्दन मिट गया था । उस मनस्विनी सीताका रावणने अपने विनाशके लिए हरण किया ॥ ४२, ४३ ॥ सुन्दर दाँतोंवाली, सुन्दर स्मित करनेवाली सीता अपने बान्धवोंसे हीन होकर राम और लक्ष्मणको न देखनेके कारण भयभीत और शुष्कमुखी हो गयी ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बावनवां सर्ग समाप्तः ॥ ५२ ॥

आकाशमें जाते हुए रावणको देखकर बहुत डरी हुई, अतएव उद्विग्न जनकतनया सीता, जिसकी आँखे क्रोध और रोनेके कारणसे लाल हो गयी थीं, जिसे भयानक आंखोंवाला राक्षसाधिप रावण हर ले जा रहा था, वह सीता रोती हुई रावणसे बोली ॥ १, २ ॥ नीच रावण, तुम

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण। ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ ३ ॥
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता। ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ४ ॥
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः। गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ५ ॥
परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम। विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया॥ ६ ॥
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे। स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥ ७ ॥
कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम्। सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥
धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा। कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥
किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि। मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन्प्रतियास्यसि ॥१०॥
नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः। ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥११॥
न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथंचन। वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥१२॥
साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण। मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्राता सह पतिर्मम ॥१३॥
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि। येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ॥१४॥
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः। नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ॥१५॥
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम्। न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ॥१६॥

अपने कामसे शरमाते नहीं हो, मुझे अकेली जानकर और चुराकर भागे जा रहे हो ॥ ३ ॥ डरपोंक, तुमने ही मुझे हरनेकी इच्छासे मायाके मृगके द्वारा मेरे पतिको दूर भिजवाया ॥ ४ ॥ मेरे श्वसुरके मित्र, पुराने गृध्रराज, मेरी रक्षाके लिये तयार थे, उन्हे भी तुमने मार डाला ॥ ५ ॥ राक्षसाधम, तुम्हारा पराक्रम भी बहुत अधिक मालूम होता है। तुमने अपना नाम बतलाकर राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करके हमें नहीं जीता है। ऐसा निन्दित काम करके तुम क्यों नहीं लज्जित होते। नीच, दूसरेकी विवाहिता स्त्रीका, जो पतिसे विरहित थी, तुमने हरण किया है ॥६॥ अपनेको वीर समझनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको, कामको, संसारके पुरुष धर्म-रहित और निर्दयतापूर्ण कहेंगे ॥ ८ ॥ तुम्हारे इस पराक्रम और बलको धिक्कार है, जिसका वर्णन मेरे हरण करनेके समय तुमने किया है और कुलको निन्दित बनानेवाले इस चरित्रको भी धिक्कार है ॥ ९ ॥ तुम मेरा हरण करके भागे जा रहे हो, ऐसी अवस्थामें क्या किया जा सकता है। एक मुहूर्त भी ठहरो, फिर तुम जीते हुए लौट नहीं सकते ॥ १० ॥ उन दोनों राजकुमारोंकी आँखके सामने आनेपर तुम अपनी समस्त सेनाके साथ भी एक मुहूर्त भी जी नहीं सकते ॥११॥ तुम उन वीरोंके बाणोंसे किसी प्रकार जी नहीं सकते, जिस प्रकार जलती हुई आगका स्पर्श वनमें पक्षी नहीं सहते ॥ १२ ॥ तुम अपने कल्याणका अच्छी तरह विचार कर प्रतिष्ठापूर्वक मुझे छोड़ दो। मेरे हरणसे अपने भाईके साथ मेरे पति क्रोध करेंगे ॥ १३ ॥ यदि तुम मुझको न छोड़ोगे तो तुम्हारे विनाशके लिए मेरे पति प्रयत्न करेंगे। जिस अभिप्रायसे तुम बलपूर्वक मेरा हरण कर रहे हो, नीच, तुम्हारा वह अभिप्राय निरर्थक होगा। देवताके समान अपने पतिको न देखकर तथा शत्रुके अधीन होकर मैं बहुत दिनोंतक जी नहीं सकती। अवश्य ही वर्तमान और भविष्य अपने हितका

मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते। मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥१७॥
पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् । यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ॥१८॥
व्यक्तं हिरण्मयांस्त्वं हि संपश्यसि महीरुहान् । नदीं वैतरणीं घोरां रुधिरौघविवाहिनीम् ॥१९॥
खड्गपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण । तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥२०॥
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम्। नहि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ॥२१॥
धारितुं शक्ष्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण । बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ॥२२॥
क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः । निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ॥२३॥
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश । कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ॥२४॥
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् । एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥२५॥

तदा भृशार्तां बहु चैव भाषिणीं विलापपूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापस्तरुणीं विचेष्टतीं नृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

तुम विचार नहीं करते ॥ १४, १५, १६ ॥ मृत्युके समय मनुष्य अहितकारी पदार्थोंका ही सेवन करता है, मरनेवालोंको हितकारी वस्तु अच्छी नहीं लगती ॥ १७ ॥ निशाचर, मैं देख रही हूँ कि तुम्हारे गलेमें यमराजकी फाँसी पड़ गयी है, अतएव भयके स्थानमें भी तुम भय नहीं करते ॥१८॥ अवश्य ही तुम वृक्षोंको सुवर्णमय देख रहे हो । रुधिरकी धारा वहनेवाली भयानक वैतरणीको देख रहे हो । ॥ १९ ॥ तुम भयानक असिपत्र वन (वह वन जिसके पत्ते तलवारके समान हों) को देख रहे हो । अवश्य ही उज्ज्वल सुवर्ण पुष्पोंसे युक्त वैदूर्यके पत्तोंवाले, लोहके कांटोंसे व्याप्त शाल्मली वृक्षको देखोगे (ये सब मृत्युसूचक चिन्ह हैं) । उस महात्माके साथ अप्रिय काम करके तुम बहुत दिनोंतक जी नहीं सकते, जिस प्रकार कोई मनुष्य विष पीकर नहीं जी सकता। तुम न हटाये जा सकनेवाले कालपाशसे बँधे हुए हो ॥ २०, २१, २२ ॥ उस महात्मा, मेरे पतिका अपराध करके तुम कहाँ जाकर कल्याण पा सकोगे । भाईके विनाही अकेले एक पलकमें चौदह हजार राक्षसोंको जिसने मारा, वे सब अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाले बलवान और वीर रामचन्द्र अपनी प्रिय भार्याका हरण करनेवालोंको क्या तीखे शरोंसे नहीं मारेंगे ? रावणके हाथमें आयी हुई भय और शोकसे सीताने यह तथा इस प्रकारके और कठोर तथा दयनीय विलाप किया ॥ २३, २४, २५॥ नितान्त दुःखिनी, विलापपूर्वक दयनीय वचन बोलनेवाली तथा दयनीय चेष्टाएँ करनेवाली, तरुणी और काँपती हुई राजपुत्रीका पापी रावणने हरण किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिरपनवां सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती । ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्च वानरपुंगवान् ॥ १ ॥
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् । उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी । वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ४ ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् । पिङ्गाक्षस्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः । स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ ५ ॥
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः । तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् । वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ॥ ७ ॥
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः । तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् । संभ्रमात्परिवृत्तोर्मी रुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः । अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तथा ॥१०॥
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाब्रुवन् । स तु सीतां विचेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ॥११॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः । सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ॥१२॥
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् । तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् ॥१३॥

रावणके द्वारा हरी जाती हुई सीताने किसीको अपना रक्षक नहीं देखा । उसने एक पर्वत-शिखर पर बैठे हुए केवल पांच वानरोंको देखा ॥ १ ॥ विशालाक्षी सीताने सुवर्णके रंगका अपना रेशमी दुपट्टा और सुंदर गहने गिराये । इस आशासे कि शायद ये लोग रामको मेरा पता बतावें, दुपट्टा उतारकर और उसमें गहने रखकर सीताने गिराया ॥ २, ३ ॥ घबड़ाहटके कारण रावण सीताका यह काम समझ न सका । विलाप करनेवाली विशालाक्षी सीताको भूरी आंखोंवाले उन श्रेष्ठ वानरोंने अनिमिष नेत्रोंसे देखा । पम्पाके आगे जाकर लंकापुरीकी ओर राक्षसेश्वर रावण रोती हुई मैथिलीको लेकर चला । प्रसन्नतापूर्वक अपनी मृत्युके समान, तीखे दांतवाली विषैली सांपिनके समान गोदमें लेकर रावणने सीताका हरण किया । वनों नदियों, पर्वतों, तालावोंको आकाशमार्गसे लाँघता हुआ रावण धनुषसे निकले हुए बाणके समान शीघ्र ही चला गया । तिमि और मगरोंके रहनेका स्थान, वरुणका वासस्थान, नदियोंकी शरण सागरको भी पार कर चला गया । जानकीहरणके क्षोभके कारण समुद्रमें तरंगोंका उठना बन्द हो गया । मछलियां और बड़े-बड़े सांपोंकी गति रुक गयी ॥ ४, ५, ६, ७, ८, ९ ॥ सीताके हरणके समय समुद्रकी ऐसी दशा हुई । उस समय आकाशमें रहनेवाले चारण बातें करने लगे ॥१०॥ सिद्धोंने कहा—अब रावणका अंत आ गया । छटपटाती हुई सीताको मूर्तिमती अपनी मृत्युके समान गोदमें लेकर रावणने लंकापुरीमें प्रवेश किया । चौड़ी सड़कोंमें बटी हुई, जिसके द्वार पर बहुत बड़ी भीड़ जमा है, उस लंकापुरीमें प्रवेश कर रावण अपने महलमें गया । वहां काली आंखोंवाली और शोक मोहसे पीड़ित सीताको उसने रख दिया, जिस प्रकार मय नामक असुरने अपनी माया रखी हो । तब

निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् । अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥१४॥
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसंमतः । मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥१५॥
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा । या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ॥१६॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् । तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१७॥
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिन्तयन्। ददर्शाष्टौ महावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥१८॥
स तान्दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः । उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥१९॥
नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वराः । जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वं खरालयम् ॥२०॥
तत्रास्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे । पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः ॥२१॥
बहुसैन्यं महावीर्यं जनस्थाने निवेशितम् । सदूषणखरं युद्धे निहतं रामसायकैः ॥२२॥
ततः क्रोधो ममापूर्वो धैर्यस्योपरि वर्धते । वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् ॥२३॥
निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरं महारिपोः । नहि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् ॥२४॥
तं त्विदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम् । रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः ॥२५॥
जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता । प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥२६॥
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः । कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥२७॥

भयानक राक्षसियोंसे वह बोला ॥ ११, १२, १३, १४ ॥ कोई भी स्त्री और कोई भी पुरुष बिना आज्ञाके इस सीताके यहां न जाने पावे । मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र, गहने आदि जो जब यह चाहे उसी समय दिया जाय । जो स्त्री जानकर या बिना जाने इस सीतासे कुछ अप्रिय वचन बोलेगी तो समझा जायगा कि उसको अपने जीवनसे प्रेम नहीं है । ऐसा उन राक्षसियोंसे कहकर प्रतापी राक्षस-राज आगे क्या करना होगा यह सोचता हुआ अपने महलसे निकला और मांसभक्षी और बली आठ राक्षसोंको उसी समय देखा ॥ १५ १६ १७ १८ ॥ पराक्रमी और ब्रह्माके वरदानसे मोहित रावण उन आठोंको देखकर तथा उनके बल पराक्रमकी प्रशंसा कर उनसे यह बोला ॥ १९ ॥ विविध अस्त्र शस्त्रोंको लेकर तुम लोग शीघ्र ही जनस्थान जाओ, जहां पहले खर रहता था और रामने जिसे शून्य बना दिया है ॥ २० ॥ उस सुने जनस्थानमें तुम लोग पराक्रम और बलका भरोसा करके तथा भय दूर हटाकर रहो । वहांके सब राक्षस मार डाले गये ॥ २१ ॥ वहां बहुत बड़ी और बलवती सेनाके साथ दूषण और खरको मैंने रखा था । वे रामके बाणोंसे मारे गये ॥ २२ ॥ इससे धैर्यके ऊपर मेरा अद्भुत क्रोध बढ़ रहा है और रामके साथ मेरा भयानक वैर उत्पन्न हो गया है ॥ २३ ॥ उस बड़े शत्रु से मैं अपना बदला लेना चाहता हूँ । युद्धमें शत्रुको बिना मारे मैं सो भी नहीं सकूंगा ॥२४॥ मैं इस समय खर और दूषणको मारनेवाले रामको मार कर सुख प्राप्त करूंगा, जिस प्रकार निर्धन धन पाकर सुखी होता है ॥ २५ ॥ जनस्थानमें रहकर तुम लोग, रामचन्द्र क्या कर रहे हैं-इसकी खबरें मेरे यहां भेजना ॥ २६ ॥ बहुत सावधान होकर तुम सब लोग वहां जाना और रामचन्द्रका वध करनेके लिए सदा प्रयत्न करते रहना ॥ २७ ॥ कई

युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि । अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः॥२८॥
ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम् ।
विहाय लङ्कां सहिताः प्रतस्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥२९॥
ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसंप्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम् ।
प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः स रावणः ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान् । आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः । प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः । अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् । वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे ॥ ४ ॥
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम् । अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः ॥ ५ ॥
तां तु शोकवशादीनामवशां राक्षसाधिपः । स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ॥ ६ ॥
हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् । नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमान्वितम् ॥ ७ ॥

युद्धोंमें तुम लोगोंका बल मालूम हो चुका है, अतएव मैं इस जनस्थानमें तुम लोगोंको भेज रहा हूँ ॥ २८ ॥ तदनन्तर प्रिय और आवश्यक बात सुनकर आठों राक्षसोंने रावणको प्रणाम किया और साथ ही लंका छोड़कर जनस्थानकी ओर अदृश्य होकर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥ सीताको पाकर तथा उसे अपने घर रखकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ । अज्ञानके कारण यह बात जानकर प्रसन्न हुआ कि रामचन्द्रके साथ मेरा बड़ा वैर हुआ ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौअनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

महाबली भयानक आठों राक्षसोंको सन्देस देकर मूर्खताके कारण रावणने अपनेको कृतार्थ समझा ॥ १ ॥ कामके बाणोंसे पीड़ित होकर सीताकी बातें सोचता हुआ रावण सीताको देखनेके लिए शीघ्रतापूर्वक उनके रमणीय घरमें गया ॥ २ ॥ राक्षसाधिप रावणने उस घरमें प्रवेश करके राक्षसियोंके बीचमें दुःखिनी सीताको देखा ॥ ३ ॥ उनका मुंह आंसूसे भरा हुआ था । शोकके भारसे वे दबी हुई थीं, बड़ी ही दीन होगई थीं, जिस प्रकार वायुके झोंकेमें आई हुई नाव समुद्रमें डूब रही हो ॥ ४ ॥ अपने यूथसे बिछली हुई और कुत्तोंसे घिरी हुई मृगीके समान नीचे मुख किये हुई बैठी, सीताके पास वह निशाचर गया ॥ ५ ॥ शोकके कारण दीन अनाथ सीताको राक्षसाधिप रावणने बलसे देवगृहके समान वह घर दिखाया ॥ ६ ॥ छोटे और बड़े मकान उसमें बने हुए थे, हजारों स्त्रियाँ भरी हुई थीं, अनेक प्रकारके पक्षी थे, विविध

दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा। वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोरमैः ॥८॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषं तप्तकाञ्चनभूषणम्। सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ॥९॥
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः। हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः ॥१०॥
सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः। दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ॥११॥
दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः। रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् ॥१२॥
दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम्। उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया॥१३॥
दश राक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः। वर्जयित्वा जनान्वृद्धान्बालांश्च रजनीचरान्॥१४॥
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम्। सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् ॥१५॥
यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥१६॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः। तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये॥१७॥
साधु किं तेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्व वचो मम। भजस्व माभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१८॥
परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना। नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१९॥
न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु। अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥२०॥
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना। किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥२१॥

रत्न जड़े हुए थे ॥ ७ ॥ हाथीदांत, सुवर्ण, स्फटिक और चांदीके सुन्दर खम्भे लगे हुए थे, जिनपर हीरा और वैदूर्यका काम किया हुआ था ॥ ८ ॥ देवताओंके नगारेके समान जिसका शब्द होता था, जिसका बाहरी द्वार सुवर्णसे भूषित और अद्भुत था। रावण उस सीढ़ीपर सीताको लेकर चढ़ा ॥ ९ ॥ हाथीदाँत और चांदिओंकी बनी, देखनेमें सुन्दर वहाँ खिड़कियां थीं, जिनमें सोनेकी जाली लगी हुई थी। ऐसे महलोंकी सुन्दर पक्तियां थीं ॥ १० ॥ चूना और मणियोंसे चित्रित अपने घरके फर्श रावणने सीताको दिखाये ॥ ११ ॥ छोटे और बड़े तालाब जिनमें तरह-तरह फूल लगे हुए थे, शोकमग्न सीताको रावणने दिखाया ॥ १२ ॥ इस प्रकार अपना वह समस्त श्रेष्ठ भवन दिखाकर और सीताको लुब्ध करनेकी इच्छासे पापी रावण बोला ॥ १३ ॥ दस और बाइस इस प्रकार बत्तीस करोड़ राक्षस हैं, जिनमें बालक और वृद्ध राक्षसोंकी गिनती नहीं है ॥ १४ ॥ उन सब भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंका मैं स्वामी हूँ। मेरे अकेलेकी सेवा करनेवाले एक हजार हैं ॥ १५ ॥ जो मेरा यह राज्य है, जो मेरा जीवन है, विशालाक्षि तुम्हारे अधीन है। तुम मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हो ॥ १६ ॥ अनेक उत्तम स्त्रियोंमेंसे जो मेरी स्त्रियां हैं, सीता, तुम उनकी स्वामिनी बनो। प्रिये, तुम मेरी भार्या बनो ॥ १७ ॥ मेरी बातोंको मानो, दूसरी बातें सोचनेसे क्या लाभ ? तुम मुझे अंगीकार करो। कामसे पीड़ित मुझपर प्रसन्न होओ ॥१८॥ सौ योजन विस्तृत यह लंका समुद्रसे घिरी हुई है, इन्द्रसहित देवता और असुर भी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों, और ऋषियोंमें मैं किसीको ऐसा नहीं देखता जो मेरे समान पराक्रमी हो ॥ २० ॥ राज्यसे भ्रष्ट, दीन, तपस्वी, पैदल चलनेवाले

भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव। यौवनं त्वध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह ॥२२॥
दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने। कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः ॥२३॥
न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः। दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः ॥२४॥
त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने। विक्रमेण नयेद्यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् ॥२५॥
लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय। त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् ॥२६॥
अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च। दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ॥२७॥
यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येह फलमाप्नुहि। इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ॥२८॥
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह। पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ॥२९॥
विमानं सूर्यसंकाशं तरसा निर्जितं रणे। विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ॥३०॥
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम्। वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ॥३१॥
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने। एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ॥३२॥
पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत्। ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां सीतां चिन्ताहतप्रभाम् ॥३३॥
उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः। अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते ॥३४॥
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति। एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ ॥३५॥

तथा अल्प बल रखनेवाले मनुष्य रामको लेकर क्या करोगी ॥ २१ ॥ सीते, तुम मुझेही अंगीकार करो, मैं ही तुम्हारा योग्य पति हूँ। यौवन चंचल है, तुम मेरे साथ रमण करो ॥ २२ ॥ रामचन्द्रके दर्शन होनेका विचार तुम मत करो। उसकी क्या शक्ति है, जो वह मनोरथोंसे भी आ सके अर्थात् यहां आनेकी इच्छा कर सके ॥ २३ ॥ बड़े वेगसे चलनेवालेको कोई रस्सीसे नहीं बाँध सकता। जलती हुई आगकी ज्वालाको कोई पकड़ नहीं सकता ॥ २४ ॥ तीनों लोकोंमेंसे ऐसा किसीको भी मैं नहीं देखता, जो मेरी बाहुओंकी छायामें पराक्रमसे तुमको ले जाय ॥ २५ ॥ तुम लंकाके इस बड़े राज्यका पालन करो। मैं देवता तथा यह चराचर विश्व तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा ॥ २६ ॥ राज्याभिषेकके जलसे भींगकर तुम प्रसन्न होओ और मेरे साथ रमण करो। वह तुम्हारा पाप था जो वनवासके साथ समाप्त होगया ॥ २७ ॥ अब तुम अपने पुण्योंका फल यहाँ भोगो। सब प्रकारके माल्य, जो स्वर्गीय गन्धसे सुगन्धित हैं, उत्तम गहने तुम मेरे साथ धारण करो। पुष्पक नामका विमान, जो मेरे भाई कुबेरका है, सूर्यके समान प्रकाशमान है, विशाल सुन्दर तथा मनके समान शीघ्र चलनेवाला है, जिसे युद्धमें मैंने जीता है। उसपर मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। चन्द्रमाके समान दीख पड़नेवाला तुम्हारा यह विमल मुख, वरानने. शोकके कारण सुन्दर नहीं मालूम होता। रावण ऐसा कह रहा था, उस समय श्रेष्ठ सीता वस्त्रके छोरसे अपना मुंह ढांपकर धीरे-धीरे रो रही थीं। चिन्तासे जिसकी प्रभा हीन होगई है, जो रामचन्द्रका ध्यान कर रही है, उस अप्रकृतिस्थ सीतासे वीर राक्षस बोला-सीते, धर्मलोपकी लज्जा करनी व्यर्थ है ॥ २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥ देवि, तुम्हारे सम्बन्धमें मैं जो प्रेमकी प्रार्थना करता हूँ, वह तो ऋषिसम्मत है। तुम्हारे

प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते । इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ॥३६॥
न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह । एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता । तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः । सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ २ ॥
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् । शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ॥ ५ ॥
य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः । राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ॥ ६ ॥
तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः । शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥
असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवध्योऽसि रावण । उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवंस्तस्य न मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

कोमल पैरोंको अपने सिरमें पीड़ित करता हूँ (अर्थात् तुम्हारे पैरपर सिर रखकर प्रणाम करता हूँ) ॥३५॥ तुम मुझपर प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारा अधीन दास हूँ। कामसे जलाये हुए रावणने ये नीच बातें कहीं ॥ ३६ ॥ उसने कहा—रावण किसी स्त्रीको मस्तकसे प्रणाम नहीं करता। मृत्युके अधीन हुआ रावण जनकपुत्री मैथिलीसे ऐसा कहकर समझने लगा कि सीता मेरे अधीन हुई ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

शोकसे पीड़ित और निर्भय सीताने रावणके ऐसा कहनेपर अपने और उसके बीचमें तृण रखकर उससे कहा ॥ १ ॥ राजा दसरथ धर्मके अचल सेतुके समान हैं। उनके पुत्र रामचन्द्र प्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे धर्मात्मा रामके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनका बाहु विशाल, उनकी आंखें बड़ीं, वे सबके देवता, मेरे पति हैं ॥ ३ ॥ वे इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, सिंहके समान उनके कंधे हैं, वे बड़े तेजस्वी हैं, वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ तेरे प्राणोंका वध करेंगे ॥ ४ ॥ यदि उनके सामने तुम मेरा हरण करते तो वहीं जनस्थानमें खरके समान मारे जाकर सोते होते ॥ ५ ॥ भयानक और महाबली जिन राक्षसोंकी बात तुमने कही है, वे रामचन्द्रके सामने कुछ भी नहीं हैं, जैसे गरुड़के सामने सर्प विषहीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ उनके धनुष के रौदोंसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण तुम्हारे शरीरको छेदेंगे, जिस प्रकार तरंगें गंगातीरको तोड़ती हैं ॥ ७ ॥ रावण असुरों और देवताओंसे यदि अवध्य हो तो भी रामचन्द्रके

स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली। पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ॥ ९ ॥
यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा। रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः ॥१०॥
यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा। सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ॥११॥
गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः। लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥१२॥
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति। याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥१३॥
स हि देवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः। निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ॥१४॥
स ते वीर्यं बलं दर्पमुत्सेकं च यथाविधम्। व्यपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे ॥१५॥
यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः। तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः ॥१६॥
मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम। आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥१७॥
न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता। द्विजातिमन्त्रसंपूता चण्डालेनावमर्दितुम् ॥१८॥
तथाहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी दृढव्रता। त्वया स्प्रष्टुं न शक्याहं राक्षसाधम पापिना ॥१९॥
क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः। हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम् ॥२०॥
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा। नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥२१॥

साथ यह बड़ा वैर उत्पन्न करके तुम जीते नहीं छूट सकते ॥ ८ ॥ बली रामचन्द्र तुम्हारे प्राणोंके अन्त करनेवाले हैं। यज्ञस्तम्भमें बँधे हुए पशुके समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ राक्षस, यदि क्रोधसे प्रदीप्त आंखोंसे रामचन्द्र देखें तो तुम आज ही जल जाओ, जिस प्रकार रुद्रने कामको जलाया था ॥ १० ॥ जो आकाशसे चन्द्रमाको पृथिवीपर गिरा सकते हैं अथवा नष्ट कर सकते हैं, जो समुद्रको सुखा सकते हैं, वे ही सीताको यहांसे छुड़ा सकते हैं ॥ ११ ॥ अपने किये पापसे तुम मारे जाओगे, तुम्हारी लक्ष्मी नष्ट होगी, तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारी शक्तियां नष्ट होंगी और लंका विधवा हो जायगी ॥१२॥ तुम्हारे इस पाप कर्मका परिणाम सुखमय नहीं होगा, क्योंकि पतिके पाससे बलपूर्वक तुमने मुझे हटाया है ॥ १३ ॥ वे महाद्युति मेरे पति मेरे देवरके साथ निर्भय होकर अपने बलके भरोसे निर्जन दण्डकारण्यमें रहते हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारा बल, तुम्हारा अहंकार और किसीकी बात न माननेकी तुम्हारी बुद्धि इन सबको तुम्हारे शरीरसे बाणवृष्टिद्वारा युद्धमें वे निकाल देंगे ॥ १५ ॥ कालकी प्रेरणासे जब प्राणियोंका विनाश होनेवाला होता है, तभी वे कालवश होकर कार्यमें प्रमाद करते हैं ॥ १६ ॥ राक्षसाधम, मेरे हरण करनेसे वह काल तुम्हारे राक्षसों तथा तुम्हारी स्त्रियोंके वधके लिए आ गया है ॥ १७ ॥ यज्ञमण्डपके बीचकी वेदी जो स्रुवा आदि यज्ञीय पात्रोंसे भूषित है तथा ब्राह्मणोंके मन्त्रोंसे पवित्र है, उसे चाण्डाल नहीं छू सकता ॥ १८ ॥ उसी प्रकार सदा धर्माचरण करनेवाले रामचन्द्रमें दृढ़ अनुराग रखनेवाली मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ। राक्षसाधम, तुम मेरा स्पर्श नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ जो राजहंसी राजहंसके साथ कमलवनमें क्रीड़ा करती है, वह घासमें रहनेवाले जल-कौएकी ओर कैसे देखेगी ॥२०॥ चेष्टाहीन इस शरीरको बांधो या मार डालो, राक्षस, मैं अपने इस शरीरको और जीवनको रखना नहीं चाहती ॥ २१ ॥ मैं अपनी निन्दा

न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः । एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ॥२२॥
रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन । सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् ॥२३॥
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः । शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि ॥२४॥
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि । ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥२५॥
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः । राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः । दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः ॥२७॥
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा घोरदर्शनाः । कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् ॥२८॥
स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः । प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥
अशोकवनिकामध्ये मैथिलीं नीयतामिति । तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥३०॥
तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् । आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥३१॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः । अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥३२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् । सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥३३॥
सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा । राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा ॥३४॥
शोकेन महता त्रस्ता मैथिली जनकात्मजा । न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा ॥३५॥

पृथिवीमें कराना नहीं चाहती । सीता क्रोधसे ऐसा कठोर वचन कहकर रावणसे और कुछ न बोली ॥ २२ ॥ रोंगटे खड़े करनेवाले सीताके ये कठोर वचन सुनकर सीताको भय दिखानेवाले वचन रावणने कहे । मैथिली, मेरे वचन सुनो । भामिनी, बारह महीने तक मैं प्रतीक्षा करता हूँ ॥ २३, २४ ॥ इतने समयमें यदि तुम मेरे पास न आयी तो प्रातःकालका जलपान बनानेके लिए तुम्हारा टुकड़ा-टुकड़ा काट देंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुलानेवाला रावण, इस प्रकार कठोर वचन कहकर राक्षसियोंसे क्रोधपूर्वक बोला ॥ २६ ॥ कुरूप, देखनेमें भयानक, मांस और शोणित खानेवाली राक्षसियों, शीघ्र ही इस सीताका अहंकार दूर करें ॥ २७ ॥ रावणके कहते ही कर्म और शरीरसे भयानक राक्षसियोंने हाथ जोड़कर जानकीको घेर लिया ॥ २८ ॥ चरणोंके आघातसे पृथिवीको तोड़ता हुआ राजा रावण चलकर उन भयानक राक्षसियोंसे इस प्रकार बोला ॥ २९ ॥ सीताको अशोकवाटिकामें ले जाओ । तुम लोग सदा इसके साथ रहो और वहाँ इसकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वहां तुम लोग बनैली हथिनीके समान घोर गर्जन तथा प्रिय वचनोंके द्वारा इसे अपने वशमें ले आओ ॥ ३१ ॥ रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर वे राक्षसियाँ सीताको लेकर अशोकवनिकामें चली गयीं ॥ ३२ ॥ अशोकवनिकामें वृक्ष सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले थे। अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे युक्त रहते थे और सब ऋतुओंमें मस्त रहनेवाले पक्षी वहां थे ॥ ३३ ॥ शोकसे जिसके अंग दुर्बल हो गये हैं वह सीता राक्षसियोंके अधीन हुई, जिस प्रकार बाघिनोंके अधीन हरिनी होती है ॥ ३४ ॥ शोकसे डरी हुई जनकपुत्री सीता सुखी नहीं हुई,

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता।
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाऽभूद्भयशोकपीडिता ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्। निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥ १ ॥
तस्य संत्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम्। क्रूरस्वनोऽथ गोमायुर्विननादास्य पृष्ठतः ॥ २ ॥
स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम्। शङ्कयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ॥ ३ ॥
अशुभं वत मन्येऽहं गोमायुर्वाशते यथा। स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ॥ ४ ॥
मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम्। विक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥
स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वाथ मैथिलीम्। तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥
राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः। काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् ॥ ७ ॥
दूरं नीत्वाथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः। हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह ॥८॥
अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने। जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः ॥ ९ ॥

जिस प्रकार पासमें बँधी हुई मृगी ॥ ३५ ॥ डरावनी आंखोंवाली राक्षसियोंके धमकानेसे जानकी सुखी नहीं होती थी। अपने पति और प्रिय देवरका स्मरण करती हुई, भय और शोकसे पीड़ित वह बेहोश हो गयी ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

मृगरूप धरकर दौड़ते हुए कामरूपी राक्षस मारीचको मार्गमें मारकर रामचन्द्र लौटे ॥ १ ॥ शीघ्रतापूर्वक सीताको देखनेके लिए आते हुए रामचन्द्रकी पीठकी ओर सियार क्रूर वचन बोला ॥ २ ॥ उसका रोंगटे खड़े करनेवाला भयानक शब्द समझकर रामचन्द्रने उसके शब्दसे शंकित होकर संदेह किया ॥ ३ ॥ सियार जैसा बोल रहा है उससे मालूम होता है कि जानकीके लिए कोई अशुभ बात हुई है। हां, राक्षसोंने उसे खाया नहीं है ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जान-बूझकर जो मेरे शब्दका अनुकरण करके पुकारा है, वह इसीलिए कि शायद लक्ष्मण सुन लें ॥ ५ ॥ उस शब्दको सुनकर सीताको छोड़कर अथवा सीताके द्वारा प्रेरित होकर शीघ्रही वे मेरे पास आवें ॥ ६ ॥ राक्षसोंको मिलकर सीताका वध करना इष्ट है, अतएव सुवर्ण मृगके बहानेसे उन लोगोंने मुझे आश्रमसे दूर हटाया है ॥ ७ ॥ आश्रमसे दूर ले जाकर बाणके आघातसे वह मारीच राक्षस हो गया और 'हा लक्ष्मण, मैं मारा गया' ऐसा उसने कहा ॥८॥ इस वचनके सुननेपर मेरे बिना उन दोनोंका, सीता, और लक्ष्मणका, धैर्य कैसे रह सकता है? जनस्थानके कारण राक्षसोंसे

निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च । इत्येवं चिन्तयन्रामः श्रुत्वा गोमायुनिःस्वनम् ॥१०॥
निवर्तमानस्त्वरितो जगामाश्रममात्मवान् । आत्मनश्चापनयनं मृगरूपेण रक्षसा ॥११॥
आजगाम जनस्थानं राघवः परिशङ्कितः । तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥१२॥
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् । तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः ॥१३॥
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् । ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥१४॥
विषण्णः सन्विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना । स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ॥१५॥
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते । गृहीत्वा च करं सव्यं-लक्ष्मणं रघुनन्दनः ॥१६॥
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत् । अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ॥१७॥
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति । न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ॥१८॥
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः । अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥१९॥
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयामहे । जीवन्त्याः पुरुषव्याघ्र सुताया जनकस्य वै ॥२०॥
यथा वै मृगसङ्घाश्च गोमायुश्चैव भैरवम् । वाशन्ते शकुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ।
अपि स्वस्ति भवेत्तस्या राजपुत्र्या महाबल ॥२१॥
इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथंचिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव ॥ २२ ॥

मेरा वैर भी हो गया है ॥ ६ ॥ अनेक भयानक निमित्तोंको मैं देख रहा हूँ । शृगालके शब्द सुनकर तथा मृगरूपी राक्षसके द्वारा आश्रमसे अपने हटाये जानेके कारण शंकित रामचन्द्र इस प्रकार सोचते हुए शीघ्रतापूर्वक अपने आश्रमपर लौटे ॥ १०, ११ ॥ शंकितचित्त राम जनस्थानमें आये । खिन्नचित्त और म्लान रामचन्द्रकी बाईं ओरसे भयानक शब्द करते हुए मृग और पक्षी महात्मा रामचन्द्रके पास गये । इन घोर निमित्तोंको रामचन्द्रने देखा ॥ १२, १३ ॥ तदनन्तर म्लान लक्ष्मणको आते हुए उन्होंने देखा । थोड़ीही दूरपर लक्ष्मण रामसे जाकर मिले ॥ १४ ॥ उदास और दुःखी लक्ष्मण, उदास और दुःखी रामचन्द्रसे मिले । निर्जन तथा राक्षसोंवाले वनमें सीताको छोड़कर आए हुए लक्ष्मणको देखकर तथा उनका बायां हाथ पकड़कर रामचन्द्र उन्हें डांटने लगे । ॥ १५, १६ ॥ कठोर, पर परिणाममधुर, वचन रामचन्द्र दुःखीके समान बोले—लक्ष्मण, तुमने यह बहुत बुरा किया । सीताको छोड़कर तुम यहां आये । सौम्य, क्या सीताकी कुशल होगी ? वीर, मुझे बिलकुल सन्देह नहीं है कि वनवासी राक्षसोंने या तो सीताका नाश कर दिया होगा या उसे खा लिया होगा; क्योंकि मेरे लिए चारो ओर अशुभसूचक अपशकुन हो रहे हैं ॥ १७, १८ १९ ॥ लक्ष्मण, क्या हमलोग सीताको कुशलपूर्वक देखेंगे । पुरुषसिंह, जनककी पुत्रीको जीती हुई हम लोग पावेंगे ? ॥ २० ॥ जिस प्रकार ये पशु तथा शृगाल भयानक शब्द बोल रहे हैं और जलती हुई-सी दिशाओंमें जो शकुन हो रहे हैं उससे शायद ही राजपुत्री सीताकी कुशल हो ॥ २१ ॥ मृगाके समानयह राक्षस मुझको लुभाकर बहुत दूर ले गया । बड़े परिश्रमसे जब मैंने इसे मारा, तब यह

मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥ २३ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः । पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ १ ॥
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह । क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ २ ॥
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः । क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ ३ ॥
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥ ४ ॥
पतित्वममराणां हि पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण । विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥
कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति ॥ ६ ॥
सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि । कच्चित्सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति ॥ ७ ॥
सपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी । उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित्सौम्येन कैकयीम् ॥८॥
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः । सवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥९॥

राक्षस हो गया ॥ २२ ॥ मेरा मन बहुतही अप्रसन्न और दुःखी है । बांई आंख फरक रही है । लक्ष्मण, निःसन्देह सीता नहीं हैं । कोई उसे हर ले गया या वह मारी गयी अथवा कोई हर ले जा रहा है ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

दीन, अप्रसन्न और सीताके बिना अकेले आये हुए लक्ष्मणको देखकर धर्मात्मा रामचन्द्रने उनसे पूछा ॥ १ ॥ लक्ष्मण, दण्डकारण्यके लिए जब मैंने प्रस्थान किया, उस समय जो मेरे साथ आयी, वह सीता कहाँ है, जिसको छोड़कर तुम यहाँ आये हो ॥ २ ॥ राज्यसे भ्रष्ट दीन और दण्डकारण्यमें भटकनेवाले मेरे दुःखकी सहायिका सीता कहाँ है ॥ ३ ॥ वीर, जिसके विना मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सकता हूँ, वह देवकन्याके समान सीता और मेरे प्राणकी सहायिका सीता कहाँ है ? ॥ ४ ॥ देवताओंका राज्य अथवा पृथिवीका राज्य भी, लक्ष्मण, सुवर्ण वर्णवाली सीताके बिना मैं नहीं चाहता ॥ ५ ॥ मेरे प्राणोंसे भी प्रिय सीता क्या जीती है ? वीर, क्या मेरा वनवास पूरा नहीं होगा ? अर्थात् सीताके न रहनेसे मेरी मृत्यु अनिवार्य है ॥६॥ लक्ष्मण, सीताके कारण मेरे मरने और तुम्हारे अयोध्यामें लौटनेपर क्या केकयी अपने मनोरथके पूर्ण होनेसे सुखी होगी ? ॥ ७ ॥ पुत्र और राज्य पानेसे जिसका मनोरथ पूर्ण हो गया है, उस केकयीकी सेवा, मृतपुत्रा कौशल्या प्रेमसे करेगी ? ॥ ८ ॥ यदि सीता जीती हो तो मैं आश्रममें चलूँगा । यदि वह

यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते। पुरः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण ॥१०॥
ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा। त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥११॥
सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखभागिनी। मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः ॥१२॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना। वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥१३॥
श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम। त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥१४॥
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने। प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥१५॥
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः। तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥१६॥
अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन। किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् १७
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः। आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥१८॥

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥ १९ ॥
स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित्।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

सदाचारिणी मर गयी हो, तो हे लक्ष्मण, मैं प्राण त्याग करूंगा ॥ ६ ॥ लक्ष्मण, आश्रममें जानेपर सामने हँसती हुई सीता यदि मुझसे बातें न करेगी तो मैं मर जाऊँगा। लक्ष्मण कहो, सीता जीता है कि नहीं? क्या तुम्हारी असावधानीसे उस तपस्विनीको राक्षसोंने खा तो नहीं लिया? ॥ ११ ॥ सुकुमारी बालिका और कभी दुख न सहनेवाली सीताने निश्चय मेरे वियोगसे उदास होकर शोक किया होगा ॥ १२ ॥ उस कुटिल दुरात्मा राक्षसने लक्ष्मण, ऐसा कहकर तुमको भी भयभीत कर दिया ॥ १३ ॥ मेरे स्वरके समान उस शब्दको सीताने सुना होगा, ऐसा मालूम पड़ता है और उसीने डरकर मुझे देखनेके लिए तुमको भेजा होगा, जिससे तुम शीघ्र यहाँ आये हो ॥१४॥ वनमें सीताको छोड़कर तुमने बड़ा बुरा किया। क्रूर राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर मिल गया ॥ १५ ॥ मांसभक्षी राक्षस, खरके मारे जानेसे दुःखित हैं। उन क्रूरोंके द्वारा अवश्यही सीता मारी गयी होगी ॥१६॥ शत्रुनाशक, मैं सर्वथा बड़े कष्टमें फँस गया हूँ, अब मैं क्या कर सकता हूँ, इस आये हुए दुखको अवश्य भोगना पड़ेगा ॥१७॥ राम इस प्रकार सुन्दरी सीताके सम्बन्धकी बातें सोचते हुए लक्ष्मणके साथ जनस्थानमें आए ॥१८॥ इस प्रकार दुःखी छोटे भाईको डांटते हुए भूख प्यास और परिश्रमसे शुष्क मुख, उदास, लम्बी सांस लेते हुए रामचन्द्र आश्रमके समीप आये और उन्होंने उसे सूना देखा ॥१६॥ अपने आश्रममें आकर तथा सीताके कई क्रीड़ास्थानोंको देखकर–यह वही स्थान है, ऐसा कहकर अपने रहनेके स्थानमें आए और रोमांचित होकर दुःखी हुए ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अट्ठावनवां सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः । परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुखादिदं वचः ॥ १ ॥
तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् । यदा सा तव विश्वासाद्वने विरहिता मया ॥ २ ॥
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण । शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥ ३ ॥
स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे । दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः । भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ॥ ५ ॥
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाऽहमिहागतः । प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥
आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम् । परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥ ७ ॥
सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली । गच्छ गच्छेति मामाशु रुदती भयविक्लवा ॥ ८ ॥
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया । प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं तत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥
न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत् । निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥१०॥
विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति । त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि ॥११॥
किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम् । विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति॥१२॥
राक्षसेनेरितं वाक्यं त्रासात्त्राहीति शोभने । न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता ॥१३॥

रामचन्द्रने आश्रमसे आये हुए लक्ष्मणसे बीचकी बातें दुःखसे पूछीं ॥ १ ॥ रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—जब मैंने विश्वाससे तुम्हारे ऊपर सीता छोड़ी, तब तुम उसे छोड़कर क्यों आये ॥ २ ॥ लक्ष्मण, जानकीको छोड़कर आए हुए तुमको देखतेही मेरे मनमें बहुत बड़े अनिष्टकी शंका हुई और मेरा मन व्यथित हो गया ॥ ३ ॥ बांयीं आँख, बांयीं भुजा और हृदयका वामभाग फड़कने लगे, जिस समय मैंने सीताके बिना अकेले तुमको मार्गमें देखा ॥ ४ ॥ शुभलक्षण लक्ष्मण रामके ऐसा कहनेपर पुनः दुःखित हुए और दुखित रामचन्द्रसे बोले ॥ ५ ॥ मैं स्वयं अपनी इच्छासे उनको छोड़कर नहीं आया। उन्हींके कठोर वाक्योंसे पीड़ित होकर मैं आपके पास आया ॥ ८ ॥ आपने जोरसे "लक्ष्मण, मेरी रक्षा करो" की पुकार की, आपका यह वाक्य सीताने सुन लिया ॥ ७ ॥ उस दुखित शब्दको सुनकर आपके स्नेहके कारण भयसे विकल सीता मुझे "जाओ, जाओ" कहने लगी ॥ ८ ॥ कई बार उनके द्वारा जानेके लिए प्रेरित होने पर सीतासे उनके विश्वास करने योग्य यह बात मैंने कही ॥ ९ ॥ मैं ऐसे किसी राक्षस-को नहीं देखता जिससे रामचन्द्रको भय हो । निश्चिन्त रहो, यह कुछ भी नहीं है, किसी दूसरेने ऐसा कहा है ॥ १० ॥ निन्दित और नीच 'त्राहि' यह वचन रामचन्द्र कैसे कहेंगे, क्योंकि वे देवताओंकी भी रक्षा कर सकते हैं ॥ ११ ॥ किसी बुरे अभिप्रायसे किसीने मेरे भाईके समान स्वरमें 'लक्ष्मण मेरी रक्षाकरो' यह पुकार की है ॥ १२ ॥ शोभने, भयभीत होकर राक्षसनेही 'त्राहि' यह शब्द कहाहै । नीच स्त्रियोंके होने योग्य दुख तुमको नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥

अलं विक्लवतां गन्तुं स्वस्था भव निरुत्सुका । न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान्यो राघवं रणे ॥१४॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् । अजेयो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः ॥१५॥
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना । उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः ॥१६॥
भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः । विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे ॥१७॥
संकेताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि । क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे ॥१८॥
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि । राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥१९॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः । क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः ॥२०॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः । अब्रवीद्दुष्कृतं सौम्य तां विना त्वमिहागतः ॥२१॥
जानन्नपि समर्थं मां रक्षसामपवारणे । अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान् ॥२२॥
नहि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदासि मैथिलीम् । क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत्त्वमिहागतः ॥२३॥
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः । क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥२४॥
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया । मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः ॥२५॥

विकृष्य चापं परिधाय सायकं सलीलबाणेन च ताडितो मया ।
मार्गीं तनुं त्यज्य च विक्लवस्वरो बभूव केयूरधरः स राक्षसः ॥२६॥

क्यों विकल होती हो, स्वस्थ होओ, घबड़ाहट छोड़ो, तीनों लोकोंमें ऐसा कोई पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ है और न उत्पन्न होगा जो युद्धमें रामचन्द्रको जीत सके । इन्द्रको आगे लेकर चलनेवाले देवताओंसेभी रामचन्द्र युद्धमें अजेय हैं ॥ १४, १५ ॥ मेरे ऐसा कहनेपर आपके स्नेहसे, व्याकुल और आंसू बहाती हुई सीताने मुझसे वे कठोर वचन कहे ॥ १६ ॥ भाईके मरनेपर मुझे पाने के लिए तुम्हारे मनमें पापमय भाव भरा हुआ है, पर तुम मुझे पा नहीं सकोगे॥ १७ ॥ तुम भरतके कहनेसे रामचन्द्रका पीछा कर रहे हो, अतएव उनके इतना चिल्लाने पर भी तुम उनके पास नहीं जाते ॥ १८ ॥ तुम छिपे हुए शत्रु हो, तुम मेरे लिए अवसर पानेके अर्थ रामचन्द्रके साथ आरहे हो, अतएव तुम उनके पास नहीं जाते ॥ १९ ॥ जानकीके ऐसा कहनेपर मुझे बहुत क्रोध आया, आँखें लाल हो गयीं और क्रोधसे ओठ फरकने लगे और मैं आश्रमके बाहर निकल गया ॥ २० ॥ लक्ष्मणके यह कहनेपर दुखी रामचन्द्रने कहा—सौम्य, सीताके विना जो तुम यहां आए वह तुमने बुरा किया ॥ २१ ॥ राक्षसोंको नष्ट करनेमें समर्थ मैं हूँ, यह जानकर भी तुम सीताके क्रोध भरे वचनोंके कारण आश्रमसे निकल आए ॥ २२ ॥ सीताको तुम छोड़ आये, इससे मैं तुमपर प्रसन्न नहीं हूँ । क्रुद्ध स्त्रीके कठोर वचन सुनकर तुम यहां चले आये ॥ २३ ॥ तुमने सचमुच यह नीतिविरुद्ध काम किया, जो सीताके द्वारा प्रेरित होनेसे क्रोधमें आकर तुमने मेरी आज्ञा नहीं मानी ॥ २४ ॥ मेरे बाणसे मारा गया राक्षस यह सोता है, जो मृगरूपसे मुझे आश्रमसे दूर ले गया था ॥ २५ ॥ धनुष चढ़ाकर बाण रखकर धीरेसे मैंने इसे बाण मारा। मृगाका शरीर छोड़कर अंगद (हाथका एक गहना) धारण करनेवाला एक राक्षस हो गया।

शराहतेनैव तदार्तया गिरा स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम् ।
उपाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधो वामलोचनम् । प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चास्य जायते ॥ १ ॥
उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः । अपि क्षेमं तु सीताया इति वै व्याजहार ह ॥ २ ॥
त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः । शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥
उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन्रघुनन्दनः । तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥ ४ ॥
ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा । श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥ ५ ॥
रुदन्तमिव वृक्षैश्च ग्लानपुष्पमृगद्विजम् । श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदैवतैः ॥ ६ ॥
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् । दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ॥ ७ ॥
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति । निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ॥ ८ ॥
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः । अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ॥ ९ ॥

और दीन शब्द बोलने लगा, ॥ २६ ॥ बाणसे आहत होतेही दुखित शब्दसे मेरे स्वरका अनुकरण करके दूरतक सुनाई पड़नेवाला वह भयानक शब्द वह बोला, जिससे जानकीको छोड़कर तुम आये ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

आश्रममें आते हुए रामचन्द्रकी बाईं आँखका नीचेवाला पलक फरकने लगा । वे चलते-चलते फिसल पड़े ॥ १ ॥ बार-बार ऐसे अशुभ निमित्तोंको देखकर रामचन्द्रने कहा—सीता तो कुशल है ॥ २ ॥ सीताको देखनेके लिए उत्कण्ठित होकर रामचन्द्र शीघ्रतापूर्वक चले । आश्रमको सूना देखनेसे उनका मन उद्विग्न हो गया ॥ ३ ॥ आश्रमके आसपास सीताको ढूँढनेके लिए रामचन्द्र वेगसे घूमने लगे । सीताके न मिलनेपर हाथ पैर पटकने लगे ॥ ४ ॥ रामचन्द्रने सीतासे शून्य पर्णशाला देखी, मानो हेमन्त ऋतुकी श्रीहीन कमलिनी हो ॥ ५ ॥ वृक्षोंको उन्होंने रोते देखा, वहांके पुष्प, पशु और पक्षी मलिन होगये थे । श्रीहीन वनदेवताओंसे त्यक्त, उजड़े हुएके समान जहां चर्म और कुशाएं बिखरी हुई हैं, आसन और चटाइयां फेंकी गयी हैं, ऐसे शून्य उटजको देखकर रामचन्द्र बार-बार विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सीता हरी गयी, मर गयी, भूल गयी या किसी राक्षसने उसे खा लिया अथवा वह भीरु कहीं छिपी है अथवा वनमें गयी है ॥ ८ ॥ पुष्प और फल लेनेके लिए कहीं गयी है अथवा तालाब पर गयी है, या जल लेनेके लिए

यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् । शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते ॥१०॥
वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीनदम् । बभ्राम विलपन्रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः ॥११॥
अस्ति कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया । कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥१२॥
स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम् । शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥१३॥
अथवार्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् । जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा ॥१४॥
ककुभः ककुभोरुं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् । लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥१५॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि । एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥१६॥
अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतनम् । त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् ॥१७॥
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालोपमस्तनी । कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि ॥१८॥
यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा । प्रियां यदि विजानासि निःशङ्कं कथयस्व मे ॥१९॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितःशोभसे भृशम् । कर्णिकारप्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया ॥२०॥
चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा । दाडिमानपि तान्गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः ॥२१॥
बकुलानथ पुन्नागांश्चन्दनान्केतकांस्तथा । पृच्छन्रामो वने भ्रान्त उन्मत्त इव लक्ष्यते ॥२२॥

नदीपर गयी है ॥ ९ ॥ प्रयत्नसे ढूंढनेपर भी वनमें उन्होंने सीताको नहीं पाया । शोकसे उनकी आंखें लाल होगयीं । श्रीमान्, रामचन्द्र पागलके समान मालूम होने लगे ॥ १० ॥ एक वृत्तसे दूसरे वृत्त तक दौड़ते हुए शोकके पंक-समुद्रमें मग्न रामचन्द्र विलाप करते हुए, पर्वतों, नदियों और नदोंपर घूमने लगे॥११॥ कदम्ब, कदम्बसे प्रेम करनेवाली मेरी प्रिया क्या तुमने देखी है?यदि तुमने सुन्दरी सीताको देखा हो तो मुझे बतलाओ ॥ १२ ॥ चिकने पल्लवके समान वह कोमल है। पीला रेशमी वस्त्र पहने हुई है । हे बिल्व, बिल्वके समान स्तनवाली सीता यदि तुमने देखी हो तो कहो ॥ १३ ॥ अर्जुन वृत्त, तुमसे प्रेम करनेवाला मेरी प्रिया क्या तुमने देखी है ? जनककी कन्या वह तन्वी जीती है या नहीं ? ॥ १४ ॥ अवश्य ही यह ककुभ सीताको जानता है, यह वन-स्पति, लता, पल्लव और पुष्पोंसे भरा पूरा बहुत भला मालूम होता है ॥ १५ ॥ तुम्हारे पास भ्रमर गा रहे हैं । इससे तुम सब वृत्तोंसे बड़ी हो । यह तिलक वृक्ष तिलकसे प्रेम करनेवाली सीताको अवश्य जानता है ॥ १६ ॥ शोक दूर करनेवाले अशोक शोकके कारण नष्टचेतन मुझको प्रियाके दरसन होनेसे अपने नामके समान अर्थात् अशोक बना दो ॥ १७ ॥ ताल वृक्ष, पके ताल फलके समान स्तनवाली सीता तुमने देखी है ? यदि तुम्हारी मुझपर दया हो तो कहो कहां है ॥१८॥ जामुन सुवर्णके समान वर्णवाली सीता तुमने देखो है, यदि तुम मेरी प्रियाको जानतो हो तो निःशंक होकर मुझसे कहो ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार, फूलोंके लगनेसे तुम बहुत ही अच्छे मालूम होते हो । यदि कर्णिकारसे प्रेम करनेवाली मेरी साध्वी प्रिया तुमने देखी हो तो बतलाओ ॥२०॥ आम, नीम, साल, कटहर, कुरर, अनार आदि वृक्षोंको देखकर महायशस्वी रामचन्द्र उनके पास गये और उनसे पूछा ।। २१ ।। बबुल, सुपारी, चन्दन और चेतक वृक्षोंसे घूम-घूम कर

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् । मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ॥२३॥
गज सा गजनासोरूर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् । तां मन्ये विदिता तुभ्यमाख्याहि वरवारण ॥२४॥
शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना । मैथिली मम विस्रब्धः कथयस्व न ते भयम् ॥२५॥
किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे । वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥२६॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि । नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥२७॥
पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि । धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम् ॥२८॥
नैव सा नूनमथवा हिंसिता चारुहासिनी । कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथोपेक्षितुमर्हति ॥२९॥
व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः । विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥३०॥
नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं शुभकुण्डलम् । पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतां गतम् ॥३१॥
सा हि चन्दनवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता । कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ॥३२॥
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ । भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ॥३३॥
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै । सार्थेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ॥३४॥
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् । हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥३५॥

पूछते हुए रामचन्द्र उन्मत्तके समान मालूम होते थे ॥ २२ ॥ अथवा मृगशावाक्षि सीताको तुम जानते हो ? मृगोंके समान वह देखती है । वह मृगियोंके साथ होगी ॥ २३ ॥ हे गज, क्या तुमने उस सीताको देखा है, जिसकी उरु तुम्हारी सूँड़के समान है ? वह सीता तुम्हे मालूम है ऐसा मैं समझता हूँ । हे गजराज, मुझे बतलाओ ॥ २४ ॥ हे शार्दूल, चन्द्रानना मेरी प्रिया तुमने देखी है, निश्चिन्त होकर तुम कहो । तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ २५ ॥ कमलेक्षणे प्रिये, क्यों दौड़ रही हो ? मैंने तुम्हें देख लिया । वृक्षोंमें छिप रही हो और मुझसे बोलती नहीं ॥२६॥ सुन्दरी, ठहरो, ठहरो, मुझपर तुम्हारी दया नहीं है, तुम बड़ी दिल्लगीबाज हो, क्यों मेरी उपेक्षा कर रही हो ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्रसे मैंने तुम्हें पहिचान लिया । दौड़नेपर भी मैंने तुम्हें देख लिया । ठहरो, यदि मुझपर तुम्हारा प्रेम हो ॥ २८ ॥ अथवा वह नहीं है ! निश्चय सुन्दर हँसने वाली सीताको राक्षसोंने मार दिया, नहीं तो मेरे इतने बड़े दुखकी वह उपेक्षा न करती ॥ २९ ॥ निश्चय मांस खानेवाले राक्षसोंने बाला सीताके अंगोंको बाँट कर मेरे न रहने पर खा लिया ॥ ३० ॥ सुन्दर दांत, ओठ और नासिकावाला तथा सुन्दर कुण्डलवाला वह सीताका, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख प्रभाहीन हो गया होगा ॥ ३१ ॥ विलाप करती हुई मेरी कान्ताका, चन्दनके समान वर्णवाला, हार धारण करनेके योग्य कोमल गला राक्षसोंने खा लिया ॥ ३२ ॥ पल्लवके समान कोमल हाथ जो इधर-उधर पटके जा रहे होंगे, जिनके अग्रभाग काँपते होंगे, हाथ और आभरणयुक्त बाहुको राक्षसोंने खा लिया ॥ ३३ ॥ राक्षसोंके खानेहीके लिए उस बालाको मैंने अपनेसे अलग किया, जिस प्रकार बहुत बान्धवोंवाली स्त्री अपने साथवालोंके न रहनेसे खा ली गयी हो ॥ ३४ ॥ महाबाहु लक्ष्मण, क्या तुम मेरी प्रियाको देखते हो ? हा प्रिये, हा भद्रे, हा सीते,

इत्येवं विलपन्रामः परिधावन्वनाद्वनम् । क्वचिदुद्भ्रमते योगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात् ॥३६॥
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः । स वनानि नदीः शैलान्गिरिप्रस्रवणानि च ।
कान्ननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥३७॥
तदा स गत्वा विपुलं महद्वनं परीत्य सर्वं त्वथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्ठिताशः स चकार मार्गणे पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥
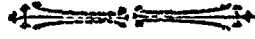
एकषष्टितमः सर्गः ६१

दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः । रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥ १ ॥
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः । उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ २ ॥
क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता । केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया॥ ३ ॥
वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि । अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥
यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः ।एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः॥ ५ ॥
सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण । वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥ ६ ॥

तुम कहा गयी ? ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बार-बार विलाप करते हुए रामचन्द्र इस वनसे उस वनमें दौड़ते हुए उछल पड़ते हैं। कहीं सादृश्य देखकर शोकके आवेगके कारण उद्भ्रान्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ सीताको ढूंढ़नेमें लगे हुए रामचन्द्र कहीं पागलके समान हो जाते हैं। वनों, नदियों, पर्वतोंके झरनोंमें रामचन्द्र वेगसे घूमने लगे। कहीं भी वे नहीं ठहरे ॥ ३७ ॥ विशाल वनमें जाकर सर्वत्र उन्होंने सीताको ढूंढ़ा, सीताके मिलनेकी आशासे वे पुनः अपने प्रियाके ढूँढ़नेका कठोर परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

दसरथपुत्र रामचन्द्रने आश्रमको सूना देखा। पर्णशालाको सीतासे सूना देखा और आसनोंको इधर-उधर फेंके हुए देखा ॥१॥ चारों ओर ढूंढ़कर तथा वहां सीताको न देखकर रामचन्द्रने अपने सुन्दर दोनों हाथोंको उठाकर पुकारा ॥२॥ लक्ष्मण, वैदेही यहांसे कहां गई, वह कहां है, उसे कौन लेगया, मेरी प्रियाको कौन खागया ॥ ३ ॥ सीते, वृक्षोंमें छिपकर तुम मुझसे हँसी करना चाहती हो ? अब इससमय हँसी करना व्यर्थ है। मैं बहुत ही दुखी हूँ। तुम मेरे पास आओ ॥ ४ ॥ सीते, मृगाके जिन बच्चोंसे तुम खेलती थी, वे तुम्हारे न रहनेके कारण कुछ सोच रहे हैं, आंसूसे उनकी आंखें छिप गई हैं ॥ ५ ॥ सीताके बिना मैं जी नहीं सकता। लक्ष्मण, सीताहरणसे उत्पन्न इस बड़े शोकसे युक्त मुझको मेरे पिता स्वर्गमें देखेंगे और वे कहेंगे कि मेरी

परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता । कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ॥ ७ ॥
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः । कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च ॥ ८ ॥
धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता । विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् । क्व गच्छसि वरारोहे मामोत्सृज सुमध्यमे ॥१०॥
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः । इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥११॥
न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् । अनासादयमानं तं सीताशोकपरायणम् ॥१२॥
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् । लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥१३॥
मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह । इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥१४॥
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली । सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम्॥१५॥
सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् । वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित्॥१६॥
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ । तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ॥१७॥
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा । मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः॥१८॥
एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः । सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥१९॥
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ॥२०॥

प्रेरणासे तुमने प्रतिज्ञा की थी, पर अवधिके पूरी न होनेके पहले ही तुम यहां मेरे पास आ गये, तुम यथेच्छाचारी हो, सज्जनोंके मार्गपर तुम नहीं चलते, तुम झूठे हो, तुमको धिक्कार है, परलोकमें पिता विवश होकर ऐसा अवश्य कहेंगे । विवश, शोकपीड़ित, भग्नमनोरथ और दयनीय मुझको छोड़कर, कुटिल मनुष्यको छोड़कर जानेवाली कीर्तिके समान, तुम कहां जा रही हो । सुन्दरि, मुझे न छोड़ो ॥ ६, ७, ८, ९, १० ॥ तुमसे विरहित होकर मैं अपने प्राण छोड़ दूंगा । इस प्रकार सीताको देखनेके लिए उत्कण्ठित रामचन्द्र बहुत विलाप करके बहुत ही दुखी हुए, पर सीता दिखायी न पड़ी । सीताको न पाकर शोकके कारण बहुत ही दुःखी कीचड़में फँसे हाथी-के समान, दुर्दशा भोगते हुए रामचन्द्रसे हितकामनासे प्रेरित लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥ ११, १२, १३ ॥ बुद्धिमान् आप विषाद मत करें । आप मेरे साथ सीताको ढूँढनेका प्रयत्न करें । इस पर्वतमें अनेक कन्दराएं हैं । जानकीको वनमें घूमना बहुत ही पसन्द है । वनको देखकर तो वह जैसे पागल हो जाती है । वह वनमें गयी होगी अथवा विकसित कमलके तालावपर ॥ १४, १५ ॥ वह नदीतीरपर गयी होगी, जहां मछलियां और बेंतका वन है अथवा हमलोगोंको डरवानेके लिए यहीं कहीं वनमें छिप गयी होगी ॥ १६ ॥ वह हमलोगोंके ढूंढनेकी शक्ति देखना चाहती होगी । अतएव उसके ढूँढनेका हमलोग शीघ्र प्रयत्न करें ॥ १७ ॥ सब वनको हमलोग ढूँढें । जहां सीताके होनेकी संभावना आप समझते हों वहां हम लोग उसे ढूँढे । आप शोक न करें ॥ १८ ॥ लक्ष्मणके द्वारा प्रेमपूर्वक ऐसा कहे जानेपर रामचन्द्र सावधान हुए और लक्ष्मण-के साथ वे ढूंढने लगे ॥ १९ ॥ दसरथके वे दोनों पुत्र वन, पर्वत, नदियां और तालाबोंपर अच्छी

तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥२१॥
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम् ॥२२॥
ततो दुःखाभिसंतप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । विचरन्दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२३॥
प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् । यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम् ॥२४॥
एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन स राघवः । उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः ॥२५॥
वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः । गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः ।
नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥२६॥
एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः । दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत ॥२७॥
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः । विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ॥२८॥
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः । हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥२९॥
तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् । बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः॥३०॥
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् । अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

तरहसे सीताको ढूँढने लगे ॥ २० ॥ उस पर्वतके शिखर, बैठने योग्य शिलाएँ आदि स्थानोंको उनलोगोंने अच्छी तरह ढूंढा, पर सीता नहीं मिलीं ॥ २१ ॥ पर्वतपर चारो तरफसे ढूँढकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले—लक्ष्मण इस पर्वतपर वैदेहीको मैंने नहीं देखा ॥ २२ ॥ इस प्रकार दुखी दण्डकारण्यमें भ्रमण करते हुए तेजस्वी भाईसे लक्ष्मण बोले ॥ २३ ॥ महाप्राज्ञ, जनकपुत्री सीताको आप अवश्य पावेंगे, जिस प्रकार बलीको बांधकर विष्णुने यह पृथिवी पायी थी ॥ २४ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र दुखित शब्दोंसे बोले, दुखके कारण उनका ज्ञान नष्ट हो गया था॥२५॥ वनको अच्छी तरहसे हमलोगोंने ढूंढा, विकसित कमलोंवाले तालाब हमलोगोंने ढूंढे । अनेक कन्दरा और झरनोंवाला यह पर्वत भी हमलोगोंने देखा, पर प्राणोंसे भी प्रिय सीता दिखायी न पड़ी ॥ २६ ॥ सीताके हरणसे दुखी रामचन्द्र विलाप करते हुए बहुत दीनसे होगये । शोकके आक्रमणसे थोड़ी देरके लिए वे विह्वल होगये ॥ २७ ॥ रामचन्द्रका समस्त शरीर अवश होगया, बुद्धि नष्ट होगयी, चेतना जाती रही । दीन रामचन्द्र दुख न सह सकनेके कारण गरम और लम्बी सांस लेने लगे ॥२८॥ राजीवलोचन रामचन्द्र लम्बी सांस लेकर 'हा प्रिया' कहकर रो-रोकर पुकारने लगे ॥ २९ ॥ उस समय विनयी शोकपीड़ित लक्ष्मणने हाथ जोड़कर अपने प्रिय बन्धुको बहुत तरहसे समझाया ॥ ३० ॥ लक्ष्मणके मुंहसे निकले हुए वचनोंको बिना सुनेही रामचन्द्र सीताको न देखकर बार-बार उसे पुकारने लगे ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

सीतामपश्यन्धर्मात्मा शोकोपहतचेतनः । विललाप महाबाहू रामः कमललोचनः ॥ १ ॥
पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः । उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रय दुर्वचम् ॥ २ ॥
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये । आवृणोपि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ॥ ३ ॥
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ । ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ४ ॥
कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे । अलं ते परिहासेन मम वाधावहेन वै ॥ ५ ॥
विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते । अवगच्छामि ते शीलं परिहासमियं प्रिये ॥ ६ ॥
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव । सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा॥ ७ ॥
नहि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण । एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ८ ॥
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः ।हा ममार्ये क्व याताऽसि हा साध्वि वरवर्णिनि॥ ९ ॥
हा सकामाद्य कैकेयी देवि मेऽद्य भविष्यति । सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः ॥१०॥
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम । निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥११॥
कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे । निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ॥१२॥
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम् । विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया ॥१३॥

सीताके न दिखाई पड़नेसे धर्मात्मा रामचन्द्रका ज्ञान शोकके कारण नष्ट हो गया था, उससे कमललोचन महाबाहु रामचन्द्र विलाप करनेलगे ॥ १ ॥ सीताके न रहनेपर भी उनको प्रत्यक्ष देखते हुएके समान कामपीड़ित रामचन्द्र बोले—रामचन्द्रका वह वचन विलापका था, इस कारण बोलनेके योग्य नहीं था ॥ २ ॥ पुष्पोंसे प्रेम करनेवाली प्रिये सीते, तुम अशोककी डालियोंसे अपना शरीर छिपा रही हो, पर मेरे शोकको बढ़ानेवाली, केलेके खम्भेके समान और केलेके पत्ते-से छिपी हुई तुम्हारी जांघोंको मैं देख रहा हूं। उन्हें तुम नहीं छिपा सकती ॥ ३, ४ ॥ भद्रे, हँसती हुई तुम अशोक वनमें बैठी हो, पर यह हँसी अच्छी नहीं। इससे मुझे दुख होरहा है ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारा स्वभाव जानता हूँ। तुम्हें हँसी अच्छी मालूम होती है, पर आश्रमोंके पास ऐसी हँसी अच्छी नहीं ॥६॥ विशालाक्षि, आओ, यह तुम्हारा उटज खाली है। निश्चय है कि राक्षसोंने सीताको खा लिया या हर लिया ॥७॥ इतना विलाप करनेपर भी वह मेरे पास नहीं आती। लक्ष्मण ये मृगोंके समूह आंखोंमें आंसू भरकर मानो मुझसे कह रहे हैं कि राक्षसोंने सीताको खा लिया, हा मेरी श्रेष्ठ सीता, हा साध्वि, तू कहां गयी ॥८॥ देवि, मेरी माता केकयीका मनोरथ पूरा होगा, जब सीताके साथ अयोध्यासे निकला हुआ मैं सीताके विना अयोध्यामें जाऊंगा ॥१०॥ सीताके विना मैं अपने महलमें कैसे जाऊंगा। लोग मुझे बलहीन और निर्दय कहेंगे ॥ ११ ॥ सीताके नष्ट होजानेमें मेरी अधीरता प्रकाशित होजायगी। वनवाससे लौटनेपर मिथिलाधिप राजा जनक जब मुझसे कुशल पूछेंगे तब मैं उनकी ओर कैसे देख सकूंगा। सीतासे विरहित मुझको देखकर राजा जनक पुत्री-

सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति । अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् ॥१४॥
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम ।तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम्॥१५॥
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम् । अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो ॥१७॥
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन । गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया ॥१६॥
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया । रक्षणीया प्रयत्नेन भवतो सूक्तचारिणा ॥१८॥
सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन । विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत्॥१९॥

इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या ।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः ।
विषादयन्भ्रातरमार्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ १ ॥
स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः ।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम् ॥ २ ॥

के नाश होनेके कारण अवश्यही बेहोश हो जायँगे अथवा भरतके द्वारा पालित उस नगरीमें मैं जाऊंगा ही नहीं ॥ १२, १३, १४ ॥ सीताके बिना स्वर्गभी मेरेलिए शून्यही है, अतएव लक्ष्मण, तुम मुझे यहीं छोड़कर अयोध्या चले जाओ ॥१५॥ सीताके विना मैं किसी प्रकार भी नहीं जीसकता । भरतका गाढ़ आलिंगन करके तुम मेरी ओरसे कहना ॥१६॥ रामचन्द्रने तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम पृथिवीका पालन करो । मेरी आज्ञासे माता केकयी, सुमित्रा और कौसल्याको यथायोग्य प्रणाम किया करो और प्रयत्नपूर्वक उनकी रक्षा करो ॥ १७, १८ ॥ मेरी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले लक्ष्मण, सीता और मेरे विनाशकी बात विस्तारपूर्वक तुम मेरी माताको सुनाना ॥ १९ ॥ सीता के बिना वनमें जाकर इस प्रकार दीनतापूर्वक रामचन्द्रके विलाप करनेसे लक्ष्मणका मुख भयसे विकल होगया, उनका मन व्यथित हुआ, वे घबड़ा गये ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

प्रियासे विहीन, शोक और मोहसे पीड़ित, दुखी राजपुत्र अपने भाईको दुखी करते हुए और अधिक विषाद करने लगे ॥ १ ॥ लक्ष्मण शोकके कारण खिन्न थे । उनसे बड़े शोकमें निमग्न रामचन्द्र दुखित मनुष्योंके योग्य वचन, गर्म सांस लेकर शोकपूर्वक रोते हुए बोले ॥ २ ॥ मेरे

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम् ।
शोकानुशोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ॥ ३ ॥
पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि ।
तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥ ४ ॥
राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः ।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ ५ ॥
सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् ।
सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥
सा नूनमार्या मम राक्षसेन ह्यभ्याहृता खं समुपेत्यभीरुः ।
अप्यस्वरं सुस्वरविप्रलापा भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥
तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचन्दनस्य ।
वृत्तौ स्तनौ शोणितपङ्कदिग्धौ नूनं प्रियाया मम नाभिपातः ॥ ८ ॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम् ।
रक्षोवशं नूनमुपागताया न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः ॥ ९ ॥
तां हारपाशस्य सदोचितान्तां ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः ।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति शून्ये हि भित्त्वा रुधिराशनानि ॥ १० ॥

समान पापी इस पृथिवीपर दूसरा नहीं, क्योंकि अविछिन्न एकके बाद दूसरा शोक आकर मेरे मन और हृदयको भेदता है ॥ ३ ॥ पहले मैंने अनेक पापकर्म किये हैं, उन्हींमेंके किसीका आज यह फल मिल रहा है कि एक दुःखसे दूसरे दुखमें जा रहा हूँ, अर्थात् एकके बाद एक दुख भोग रहा हूँ ॥ ४ ॥ राज्यका नाश, स्वजनोंका वियोग, पिताकी मृत्यु, माताका वियोग ! लक्ष्मण, सोचने पर ये सब बातें, मेरे शोकको और भी बढ़ा देती हैं ॥ ५ ॥ लक्ष्मण, वनमें आकर शारीरिक कष्ट उठाकर मैंने इन सब दुखोंको सह लिया था; पर आज सीताके वियोगसे वे सब दुःख फिर लौट आए, जिस प्रकार लकड़ी पड़नेसे आग सहसा जल उठती है ॥ ६ ॥ उस भीरु, मेरी श्रेष्ठ सीताको राक्षसोंने आकाशमार्गसे हर लिया । मधुर स्वरमें रोनेवाली सीता भयके कारण बार-बार बिना स्वरके ही रोई होगी ॥७॥ देखनेमें सुन्दर लगनेवाले, उत्तम लाल चन्दन जिनपर लेपा जाता था, वे सीताके गोले स्तन खूनसे भींग गए होंगे, फिर भी मेरे शरीरका विनाश नहीं होता ॥ ८ ॥ सुन्दर कुञ्चित केशोंसे युक्त मधुर प्रलाप करनेवाली, राक्षसोंके हाथमें फँसी हुई सीताका वह मुख नहीं शोभता होगा, जिस प्रकार चन्द्रमाका मुँह राहुके मुखमें जानेसे नहीं शोभता ॥ ९ ॥ सदा हार पहननेके योग्य मेरी सुव्रता प्रियाका गला फोड़कर रुधिर पीनेवाले

मया विहीना विजने वने सा रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा ।
नूनं विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ॥ ११ ॥
अस्मिन्मया सार्धमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा ।
कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥
गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् ।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥ १३ ॥
पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा पद्मानि वाऽऽनेतुमभिप्रयाता ।
तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥ १४ ॥
कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् ।
वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः ॥ १५ ॥
आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम् ॥ १६ ॥
लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत् ।
शंसस्व वायो कुलपालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥ १७ ॥
इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव ।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ १८ ॥

राक्षसोंने रुधिर पीया होगा ॥ १० ॥ मेरे विना निर्जन वनमें राक्षसोंने उसे घसीटा होगा और विशाल तथा सुन्दर नेत्रवाली उस सीताने कुररीके समान विलाप किया होगा ॥ ११ ॥ पहले इस पत्थरपर उदार स्वभाववाली सीता मेरे साथ बैठी थी । सुन्दर स्मित-वाली सीताने हँसकर लक्ष्मण, तुमसे बहुत बातें कही थीं ॥ १२ ॥ नदियोंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी नदी है, मेरी प्रियाको यह सदा प्रिय है । मैं सोचता हूँ कि शायद वह यहां गयी हो, पर वह अकेली तो कभी नहीं जाती ॥ १३ ॥ पद्ममुखी, पद्मनेत्रा, सीता शायद पद्मोंको ले आनेके लिए गयी हो, पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि मेरे विना तो वह कभी कमलोंके पास जाती नहीं थी ॥ १४ ॥ शायद वह इस वनमें गयी हो, जिसके अनेक वृक्ष विकसित हुए हैं तथा जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी हैं, पर वह भीरु तो अकेली डरती है ॥ १५ ॥ सूर्य, आप संसारके कृत और अकृत कर्मोंको जानते हैं, उनके सत्य और असत्य कर्मोंको जानते हैं, मेरी प्रिया कहाँ गयी ? क्या वह हर ली गयी ? यह सब आप मुझसे कहें, क्योंकि मैं शोकसे दुखी हो रहा हूँ ॥ १६ ॥ संसारमें ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो तुमसे छिपी हो । वायु, कहो, मेरी कुल-पालिका सीता कहाँ गयी ? वह मर गयी, हरी गयी, या अभी रास्तेमें ही है ॥१७॥ इस प्रकार शोकके अधीन होकर विलाप करते हुए ज्ञानहीन रामचन्द्रसे धीर और न्यायमार्गपर स्थित लक्ष्मण उस समयके योग्य वचन बोले ॥१८॥

शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥
इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं ब्रुवन्तमार्तं रघुवंशसत्तमः ।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान्पुनश्च दुःखं महदप्युपागमत् ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम् ॥१॥
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता । एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥२॥
नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः । तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत् ॥३॥
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे । कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥
नहि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा । लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः ॥ ५ ॥
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम् । स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥
भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि । न तां शशंसू रामाय तथा गोदावरी नदी ॥ ७ ॥
ततः प्रचोदिता भूतैः शंस चास्मै प्रियामिति । न च सा ह्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचता ॥ ८ ॥

आप शोक छोड़ें, धैर्य धारण करें । सीताको ढूँढनेके लिए उत्साह लावें । बड़े कठोर कामोंमें भी उत्साही मनुष्य दुखी नहीं होते ॥ १९ ॥ प्रसिद्ध पराक्रमी दुखी लक्ष्मणकी ये बातें रामचन्द्रने न सुनी । उन्होंने अपना धैर्य छोड़ दिया था, वे और अधिक दुख करने लगे ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

दीन रामचन्द्र लक्ष्मणसे दीनवचन बोले—लक्ष्मण, शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर पता लगाओ कि सीता कमल लानेके लिए वहां तो नहीं गयी ? रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण रमणीय गोदावरी नदीके तीरपर शीघ्रतापूर्वक गये और उसके घाटोंपर ढूंढकर पुनः लौटकर रामचन्द्रसे बोले ॥ १, २, ३ ॥ घाटोंपर सीताको मैंने नहीं देखा । मेरे चिल्लानेपर मेरी आवाज उसने नहीं सुनी । क्लेशोंको दूर करनेवाली सीता कहां चली गयी ॥ ४ ॥ राम, मैं ऐसे स्थानोंको नहीं जानता जहां सीता हो, लक्ष्मणके वचन सुनकर रामचन्द्र दुखित हुए, उनकी सुधबुध जाती रही ॥ ५ ॥ रामचन्द्र स्वयं गोदावरीके तीरपर गये, वहां जाकर उन्होंने कहा कि सीता कहां है । वधके योग्य रावण सीताको हर ले गया है, यह बात बहुतसे प्राणियोंको मालूम थी, गोदावरीको भी मालूम थी, पर किसीने रामचन्द्रको बतलाया नहीं ॥६,७॥ अन्य प्राणियोंने रामचन्द्रसे सीताकी बात कहनेके लिए गोदावरीको प्रेरित भी किया, रामचन्द्रने गोदावरीसे पूछा भी, पर उसने कुछ उत्तर नहीं

रावणस्य च तद्रूपं कर्मापि च दुरात्मनः । ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ह ॥ ९ ॥
निराशस्तु तया नद्या सीतायां दर्शने कृतः । उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः ॥१०॥
एषा गोदावरी सौम्य किंचिन्न प्रतिभाषते । किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ॥११॥
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम् । या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः ॥१२॥
सर्वं व्यपानयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता । ज्ञातिवर्गविहीनस्य वैदेहीमप्यपश्यतः ॥१३॥
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः । मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम् ॥१४॥
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि लभ्यते । एते महामृगा वीरा मामीक्षन्ते पुनः पुनः ॥१५॥
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये । तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह ॥१६॥
क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया गिरा । एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः ॥१७॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम् । मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामभ्यपद्यत ॥१८॥
तेन मार्गेण गच्छन्तौ निरीक्षन्ते नराधिपम् । येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः ॥१९॥
पुनर्नदन्तो गच्छन्ति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः । तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम् ॥२०॥
उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमार्तवत् । क्व सीतेति त्वया पृष्टा यदि मे सहसोत्थिताः ॥२१॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः । साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम् ॥२२॥
यदि तस्यागमः कश्चिदार्या वा साथ लक्ष्यते । बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ॥२३॥

दिया ॥ ८ ॥ रावणका वह भयानक रूप और भयानक कर्मोंका ध्यान करके नदीने सीताका पता नहीं बताया ॥ ९ ॥ सीताके दर्शनके सम्बन्धमें उस नदीसे निराश होकर सीताको न देखने-के कारण दुखी रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १० ॥ सौम्य, यह गोदावरी नदी मुझे कुछ भी उत्तर नहीं देती । लक्ष्मण, सीताके पिताके पास जाकर मैं उनसे क्या कहूंगा ॥ ११ ॥ उसकी मातासे वह अप्रिय बात मैं कैसे कहूँगा । राज्यहीन वनमें वनवासीके समान रहते हुए मेरे सब दुखोंको जो दूर करती थी, वह सीता कहां है । भाई-बन्धुसे हीन तो हूँ ही, अब सीताके न रहनेसे समूची रात जागनेके कारण ये रात भी बड़ी हो जायँगी । मन्दाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत इन सबको मैं ढूंढूंगा, यदि सीता मिल जाय। ये महामृग मेरी ओर बार-बार देख रहे हैं ॥ १२, १३, १४, १५ ॥ वे कुछ कहना चाहते हैं, इनके इशारे मैं समझ रहा हूँ । उन मृगोंको देखकर राम-चन्द्र बोले ॥ १६ ॥ गला भर आनेसे रुकती हुई वाणीसे रामचन्द्रने उनकी ओर देखकर कहा—सीता कहां है ? रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर वे मृगा खड़े होगये ॥ १७ ॥ आकाशमें कूदते हुए दक्षिणकी ओर चले गये, जिस दिशामें हरकर सीता गयी थी, उसी ओर चलते हुए उन मृगोंने रामकी ओर देखा । वे मृगा आकाशमार्ग और पृथिवीको देखते हुए गये ॥ १८, १९ ॥ पुनः वे कुछ बोलते हुए चलने लगे । लक्ष्मणने उनके वचन और इशारोंका मतलब समझा ॥ २० ॥ बुद्धिमान लक्ष्मण-ने दुखीके समान आपने बड़े भाईसे कहा—'सीता कहां है' यह आपके पूछनेपर शीघ्रही उठकर ये खड़े हो गये ।। २१ ।। और पृथिवी तथा दक्षिण दिशा हमलोगोंको दिखलाने लगे । ठीक है, हमलोग राक्षसोंको इसी दिशाकी ओर चलें ॥ २२ ॥ यदि उनका पता लगे अथवा वे स्व ं ही

लक्ष्मणानुगतः श्रीमान्वीक्षमाणो वसुंधराम् । एवं संभाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ ॥२४॥
वसुंधरायां पतितपुष्पमार्गमपश्यताम् । पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ॥२५॥
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः । अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण॥२६॥
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने । मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी ॥२७॥
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम् । एवमुक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् ॥२८॥
उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलम् । कच्चित्क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥२९॥
रामा रम्ये वनोद्देशे मया विरहिता त्वया । क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥३०॥
तां हेमवर्णां हेमाङ्गीं सीतां दर्शय पर्वत । यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥३१॥
एवमुक्तस्तु रामेण पर्वतो मैथिलीं प्रति । दर्शयन्निव तां सीतां नादर्शयत राघवे ॥३२॥
ततो दाशरथी राम उवाच च शिलोच्चयम् । मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ॥३३॥
असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः । इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण॥३४॥
यदि नाख्याति मे सीतामद्य चन्द्रनिभाननाम् । एवं प्ररुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥३५॥
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ।त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः॥३६॥
राक्षसेनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु । स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च॥३७॥

मिलजायँ। लक्ष्मणकी बात मानकर रामचन्द्र दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ श्रीमान लक्ष्मण पृथिवीकी ओर देखते हुए उनके पीछे-पीछे चले। वे दोनों भाई आपसमें बातचीत करते हुए चले ॥ २४ ॥ उन दोनोंने मार्गमें आकाशसे गिरे फूल देखे। आकाशसे गिरी पृथिवीमें पुष्पवृष्टि देखकर दुखित वीर रामचन्द्र लक्ष्मणसे यह दुःखपूर्ण वचन बोले—लक्ष्मण, मैं पहचानता हूँ, ये वेही फूल हैं ॥ २५, २६ ॥ वनमें मैंने ये फूल सीताको दिये थे और उसने अपनी चोटी में ये फूल लगाये थे। मैं समझता हूं सूर्य, वायु और यशश्विनी पृथिवीने इन पुष्पोंकी रक्षा करके मेरा प्रिय किया है। पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर महाबाहु धर्मात्मा रामचन्द्र प्रस्रवण पर्वतसे बोले—पर्वतोंके स्वामी, क्या तुमने इस रमणीय वनमें मुझसे विरहित सर्वांग सुन्दरी स्त्री देखी है? रामचन्द्रने क्रोध करके पर्वतसे कहा, जिस प्रकार सिंह छोटे मृगसे कहता है ॥ २७, २८, २९, ३० ॥ सुवर्णके समान अंगवाली उस सीताको तुम शीघ्रही मुझे दिखलाओ, जबतक कि मैं तुम्हारे समस्त शिखरोंको नष्ट नहीं कर देता हूँ ॥ ३१ ॥ सीताके लिए रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर पर्वतने सीताके विषयकी बातें जाननेपर भी रामचन्द्रको कुछ नहीं बतलाया ॥ ३२ ॥ तब दसरथ-पुत्र रामचन्द्र पर्वतसे बोले—मेरे बाणोंकी आगसे जलकर तुम भस्म होजाओगे ॥ ३३ ॥ तृण वृक्ष पल्लवके नष्ट होजानेसे किसीके भी निवासके योग्य तुम नहीं रह जाओगे। लक्ष्मण, आज मैं इस गोदावरी नदीको सोख लेता हूँ ॥ ३४ ॥ यदि यह आज मुझे चन्द्रमुखी सीताका पता न बतावे। इस प्रकार क्रुद्ध आंखोंसे आग बरसाते हुए रामचन्द्रने पृथ्वीपर उखड़ा हुआ राक्षसके पैरोंका बड़ा चिन्ह देखा। डरी हुई, रामचन्द्रमें अनुराग रखनेवाली, इधर-उधर दौड़ती हुई तथा राक्षसके द्वारा पीछा की गयी सीताके भी चरणोंके चिन्ह हैं। सीता और राक्षसके इधर-उधर जानेका चिन्ह

भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं वहुधा रथम् । संभ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥३८॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकविन्दवः । भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च॥३९॥
तप्तविन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजविन्दुभिः । आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥४०॥
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः ।भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति॥४१॥
तस्या निमित्तं सीताया द्वयोर्विवदमानयोः । वभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह ॥४२॥
मुक्तामणिचितं चेदं रमणीयं विभूषितम् । धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः ॥४३॥
राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवापि वा । तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम् ॥४४॥
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् । छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥
भग्नदण्डमिदं सौम्य भूमौ कस्य निपातितम् । काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः ॥४६॥
भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे । दीप्तपावकसंकाशो द्युतिमान्समरध्वजः ॥४७॥
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य सङ्ग्रामिको रथः । रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥४८॥
कस्येमे निहता वाणाः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः । शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण॥४९॥
प्रतोदाभीषुहस्तोऽयं कस्य वा सारथिर्हतः । पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः ॥५०॥
वैरं शतगुणं पश्य मम तैर्जीवितान्तकम् । सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ॥५१॥

देखकर टूटा हुआ धनुष, तूणी और विखरा हुआ रथ देखकर रामचन्द्रका हृदय घवड़ा गया । वे अपने भाईसे बोले ॥ ३५, ३६, ३७, ३८ ॥ लक्ष्मण देखो, जानकीके ये सोनेके घुंघरू हैं, जो उसके गहनोंमें लगे हुए थे। ये उसकी वहुतसी मालाएँ हैं ॥ ३९ ॥ देखो तपाये हुए सोनेके विंदुके समान अनेक आकारके रुधिर-विन्दुओंसे पृथिवीतल भरा हुआ है ॥ ४० ॥ लक्ष्मण, मैं समझता हूँ कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीको टुकड़े-टुकड़े करके यहां आपसमें बांटा और खाया है ॥ ४१ ॥ लक्ष्मण, उसी सीताके लिए उन दोनों राक्षसोंने आपसमें विवाद किया और युद्ध किया ॥ ४२ ॥ सौम्य, यह किसका वड़ा धनुष पृथिवीमें गिरा हुआ है, जिसमें मुक्ता और मणि जड़े हुए हैं और जो वड़ाही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ क्या यह राक्षसोंका है या यह देवताओंका? तरुण सूर्यके समान यह प्रकाशमान है और वैदूर्यकी गोलियां इसमें लगी हुई हैं ॥४४॥ यह विशाल किसका सोनेका कवच पृथिवीपर गिरा हुआ है, सौ कमानियोंका, दिव्य मालासे युक्त यह किसका छाता पृथिवीमें गिरा हुआ है, जिसका डंडा टूट गया है. यह किसका छाता है ? पिशाचकेसे मुखवाले विशाल शरीर भयानक गदहे, जिनकी छातीकी रक्षा करनेके लिए सोनेका कवच वंधा हुआ है, किसके हैं, जो यहां रणमें मारे गये हैं ? जलती हुई आगके समान द्युतिमान यह किसकी युद्धध्वजा फेंकी गयी है और यह किसका रथ टूटा हुआ है ? रथाधारके प्रमाणसे वने हुए, सोनेसे विभूषित, देखनेमें भयानक, विना फलके ये गिरे हुए वाण किसके हैं ? वाणोंसे भरे हुए दो तरकश उधर पड़े हैं, देखो ॥ ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९॥ यह किसका सारथी मारा गया है, जिसके हाथमें कोड़ा और लगाम अभीतक वर्तमान है । ये पैर-चिन्ह किसी पुरुष राक्षसके मालूम होते हैं ॥ ५० ॥ सौम्य, कामरूपी कठोर हृदयवाले राक्षसोंसे अव मेरा वैर सौगुना वढ़ गया। अव राक्षसोंके प्राणोंका संहार

हृता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी । न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने ॥५२॥
भक्षितायां हि वैदेह्यां हृतायामपि लक्ष्मण । के हि लोकेऽप्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः॥५३॥
कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम् । अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥५४॥
मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् । निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥५५॥
मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण । अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च ॥५६॥
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान्सूर्य इवोदितः । संहृत्यैव गुणान्सर्वान्मम तेजः प्रकाशते ॥५७॥
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः । किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण॥५८॥
ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण । असंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥५९॥
संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् । विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥६०॥
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् । ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥६१॥
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा । न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः॥६२॥
अस्मिन्मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम् । नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥६३॥
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण । आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥६४॥
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् । मम रोषप्रयुक्तानां विशिखानां बलं सुराः ॥६५॥

होगा ॥ ५१ ॥ सीता हरी गयी या मर गयी अथवा राक्षसोंने उसे खालिया। इस घोर वनमें सीता हरी गयी, पर धर्मने उसकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥ वैदेही खायी गई अथवा हरी गयी । अब मेरा प्रिय करनेके लिए कौन समर्थ होगा ? ॥५३॥ लक्ष्मण, संसारकी सृष्टि स्थिति आदि करनेवाले और शूर महादेवको भी, यदि वे दयाके कारण चुप रहे तो, अज्ञानके कारण सबलोग उनका तिरस्कार करें ॥ ५४ ॥ कोमल लोकहितके कामोंमें लगे हुए, क्षमाशील और दयाके व्यवहार करनेवाले मुझको मालूम होता है, ये देवता मुझको कमजोर समझने लगे हैं ॥ ५५ ॥ लक्ष्मण देखो, एक गुण मेरे यहां आकर दोष बन गया है, आज सब प्राणियों और राक्षसोंके विनाशके लिये मेरा गुण दोष हो गया है अर्थात् गुणका त्यागकर अब मैं राक्षसोंका विनाश करूंगा ॥ ५६ ॥ जिस प्रकार प्रखर सूर्य उदय होकर, चन्द्रमाके प्रकाशका नाश करके, प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार मेरा तेज भी सब गुणोंका नाश करके प्रकाशित होगा ॥ ५७ ॥ लक्ष्मण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर और मनुष्य कोई भी अब सुख नहीं पा सकेगा ॥ ५८ ॥ लक्ष्मण, मेरे अस्त्र और बाणोंसे पूर्ण आकाशको देखो, आज त्रिलोकमें भ्रमण करनेवाले राक्षसोंका रास्ता मैं बन्द कर दूंगा, ॥५९॥ ग्रहोंको रोक दूंगा, चन्द्रमाको ढँक दूंगा, अग्नि, सूर्य और वायु इनके प्रकाशको नष्ट कर दूंगा ॥६०॥ पर्वतके शिखरोंको तोड़ दूंगा, जलाशयोंको सुखा दूंगा, वृक्षलता और गुल्मोंको उजाड़ दूंगा, समुद्रको नष्ट कर दूंगा ॥६१॥ यदि देवता सकुशल सीताको मुझे न देंगे तो मैं त्रैलोक्यका नाश कर दूंगा ॥ ६२ ॥ लक्ष्मण, अब ये लोग मेरे पराक्रमको देखेंगे । कोई भी प्राणी आकाशमें नहीं उड़ सकेंगे ॥ ६३ ॥ लक्ष्मण आज तुम समस्त संसारको व्याकुल और घबड़ाया हुआ देखोगे । कान तक खींचकर चलाए हुए, न रुक सकनेवाले अपने बाणोंसे समस्त ब्रह्माण्डको सीताके कारण पिशाच और राक्षससे

द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् । नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ॥६६॥
भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोक्येऽपि प्रणाशिते । देवदानवयक्षाणां लोका ये रक्षसामपि ॥६७॥
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकलीकृताः । निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्य सायकैः ॥६८॥
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः । तथारूपां हि वैदेहीं न दास्यन्ति यदि प्रियाम् ॥६९॥
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । यावद्दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः ॥७०॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसंपुटः । वल्कलाजिनमाबद्ध्य जटाभारमबन्धयत् ॥७१॥
तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः । त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं रुद्रस्येव बभौ तनुः ॥७२॥
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम् । शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम् ॥७३॥
संदधे धनुषि श्रीमान्रामः परपुरंजयः । युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥७४॥
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः । नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥७५॥

पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥
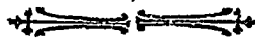
रहित कर दूंगा । क्रोधसे छोड़े गये और दूर जानेवाले मेरे बाणोंका बल आज देवता देखें । क्रोध करके जब मैं त्रैलोकका नाश करदूंगा तब देवता, दानव, पिशाच, राक्षस ये कोई भी नहीं रहेंगे । देवता, दानव, यक्ष और राक्षसोंके लोक भी मेरे बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जायँगे । मैं अपने बाणोंसे आज इन समस्त लोकोंको व्याकुल कर दूंगा ॥ ६४, ६५, ६६, ६७, ६८ ॥ सीता हरी गयी हो या मर गयी हो, चाहे जिस अवस्थामें मेरी प्रिया हो, उसी अवस्थामें देवता यदि उसे मुझे न सौंपेंगे तो सचराचर समस्त जगतका नाश कर दूंगा । जब तक सीताको मैं न देखूँगा तबतक अपने बाणोंसे सबको तपाऊंगा ॥ ६९, ७० ॥ ऐसा कह करके रामचन्द्रने वल्कल और चर्मको बांधा, पुनः जटा भी उन्होंने सँभाली । उस समय उनकी आंख क्रोधसे लाल होगयी थीं, ओठ फरक रहे थे ॥ ७१ ॥ उस समय क्रोध किए हुए बुद्धिमान रामचन्द्रका स्वरूप त्रिपुरको जलानेके लिए उद्यत रुद्रके समान भयंकर होगया ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणसे धनुष लेकर रामचन्द्रने उसे दबाया । सांपके समान बाण उन्होंने लिया ॥ ७३ ॥ और शत्रुओंके नगर जीतनेवाले रामचन्द्रने धनुषपर बाण रखे । प्रलयकालकी अग्निके समान क्रुद्ध रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥ ७४ ॥ लक्ष्मण, जिस प्रकार सब प्राणियोंकेलिए वृद्धावस्था, मृत्युकाल, भाग्य नियत हैं, इनमें उलट-फेर नहीं होता, उसी प्रकार क्रोध करनेपर मुझे भी कोई नहीं रोक सकता, यह निश्चित है ॥७५॥ पहलेहीके समान सुन्दर हँसनेवाली, सुन्दरी सीता यदि मुझे नहीं दी गयी, तो देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और पर्वतके साथ इस समस्त संसारको उलट-पलट कर दूंगा ॥ ७६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

तप्यमानं तदा रामं सीताहरणकर्शितम् । लोकानामभवे युक्तं सांवर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥
वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं पुनः पुनः । दग्धुकामं जगत्सर्वं युगान्ते च यथा हरम् ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वं संक्रुद्धं दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ ३ ॥
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः । न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ॥ ४ ॥
चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा । एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः ॥ ५ ॥
एकस्य नापराधेन लोकान्हन्तुं त्वमर्हसि । नतु जानामि कस्यायं भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ॥ ६ ॥
केन वा कस्य वा हेतोः सयुगः सपरिच्छदः । खुरनेमिक्षतश्चायं सिक्तो रुधिरबिन्दुभिः ॥ ७ ॥
देशो निवृत्तसङ्ग्रामः सुघोरः पार्थिवात्मज । एकस्य तु विमर्दोऽयं न द्वयोर्वदतां वर ॥ ८ ॥
नहि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम् । नैकस्य तु कृते लोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः । सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः ॥१०॥
को नु दारप्रणाशं ते साधु मन्येत राघव । सरितः सागराः शैला देवगन्धर्वदानवाः ॥११॥
नालं ते विप्रियं कर्तुं दीक्षितस्येव साधवः । येन राजन्हृता सीता तमन्वेषितुमर्हसि ॥१२॥
मद्द्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः । समुद्रं वा विचेष्यामः पर्वतांश्च वनानि च ॥१३॥

सीताके हरणसे दुखी तथा भीतरही भीतर जलते हुए और प्रलयकालीन अग्निके समान समस्त संसारके नाशके लिए तयार, चढ़े हुए धनुषको बारबार देखते और निश्वास छोड़ते हुए, प्रलय कालमें महादेवके समान समस्त संसारको जला देनेकी इच्छा रखनेवाले, उस प्रकार अदृष्टपूर्व क्रोधित रामचन्द्रको देखकर लक्ष्मण हाथ जोड़कर सूखते हुए मुँहसे इस प्रकार बोले ॥ १,२,३ ॥ पहले आप बड़े कोमल थे, विनयी थे, सब प्राणियोंके कल्याण करनेवाले थे, इस समय क्रोधके कारण आपको अपने स्वभावका त्याग नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें लक्ष्मी, सूर्यमें प्रभा, वायुमें गति, पृथिवीमें क्षमा और आपमें सर्वोत्तम यश ये नियत हैं ॥ ५ ॥ एकके अपराधके कारण आपको समस्त लोकोंका नाश नहीं करना चाहिए। यह किसका युद्धका रथ टूटा हुआ है, यह मैं नहीं जानता हूँ ॥ ६ ॥ किससे और किसलिए यह युद्ध हुआ है, यह मैं नहीं जानता। यहाँकी भूमि, खुर और पहिएसे फटी हुई है, रुधिर-बिन्दुसे सींची हुई है ॥ ७ ॥ राजकुमार, इस स्थानपर बड़ा भयानक युद्ध हुआ है। यह स्थान एकहीके द्वारा रौंदा गया है, दोके द्वारा नहीं ॥ ८ ॥ किसी बड़ी सेनाके पैरोंका चिन्ह मैं नहीं देखता। एकके कारण आपको लोकोंका विनाश नहीं करना चाहिए ॥ ९ ॥ राजा लोग अपराधहीके अनुसार दण्ड देते हैं। वे कोमल और शान्त होते हैं। आपने सब प्राणियोंकी रक्षा की है, उनके आप अवलम्ब रहे हैं ॥ १० ॥ राजन्, आपकी स्त्रीका नष्ट हो जाना, किसको अच्छा मालूम होता है। नदी, पर्वत, देवता, दानव, गन्धर्व कोई भी आपका अपकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार यज्ञमें दीक्षित मनुष्यका अपकार साधुजन नहीं करते। राजन्, सीता हरी गयी है उन्हें आप ढूंढ़ें ॥११,१२॥ हमलोग धनुष लेकर तथा सहायक ऋषियोंको साथ लेकर सीताको

गुहाश्च विविधा घोराः पद्मिन्यो विविधास्तथा। देवगन्धर्वलोकांश्च विचेष्यामः समाहिताः ॥१४॥
यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणाम् । न चेत्साम्ना प्रदास्यन्ति पत्नीं ते त्रिदशेश्वराः ।
कोशलेन्द्र ततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि ॥१५॥
शीलेन साम्ना विनयेन सीतां नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् । मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः । रामं संबोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा । राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥
तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः । राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥
यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे । प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥ ५ ॥
आश्वासिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः । संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ ६ ॥

ढूंढ़े । समुद्र पर्वत और वनोंको ढूँढ़ें । कन्दराएँ, कमलवन, देवलोक और गन्धर्वलोकको सावधान होकर हमलोग ढूँढ़ें ॥ १३, १४ ॥ जबतक आपकी स्त्रीको हरण करनेवाला न मिले तब तक हमलोग ढूँढ़ें । कौशलेन्द्र, सौम्य उपायोंसे देवतालोग आपकी स्त्रीको न लौटा दें, तो उस समय जो उचित समझिएगा वह कीजिएगा ॥१५॥ शील, साम, विनय और नीतिसे जब आप सीताको न पा सकें, तब इन्द्रके वज्रके समान सोनेके पांखवाले अपने बाणोंसे लोकोंको नाश करें ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

शोकसे पीड़ित होनेके कारण रामचन्द्रका चित्त सुस्त हो गया था, अनाथके समान वे विलाप कर रहे थे, कर्तव्य-अकर्तव्यका उनका विवेक नष्ट हो चुका था और वे दुर्बल हो गये थे ॥१॥ सुमित्रापुत्र लक्ष्मणने थोड़ी देरमें रामचन्द्रको धैर्य धराया, उन्होंने रामचन्द्रके चरणोंको प्रणाम करते हुए उन्हें बतलाया ॥ २ ॥ बड़ी तपस्यासे तथा बड़े कठोर कर्मोंसे राजा दसरथने आपको पाया था, जिस प्रकार देवताओंने अमृत पाया था ॥३॥ आपके गुणोंमें उनका बहुतही अनुराग था, अतएव आपके वियोगसे वे देवता हो गये अर्थात् देवलोकमें चले गये, ऐसा मैंने भरतके मुँहसे सुना है ॥ ४ ॥ रामचन्द्र, इस आये हुए दुःखको आप न सहेंगे तो साधारण मनुष्य, जो अल्पबल वाला है, कैसे सहेगा ॥ ५ ॥ रामचन्द्र, आप धैर्य धारण करें । किस मनुष्य पर आपत्ति नहीं आती ? आगके समान शीघ्रही वे मनुष्योंका स्पर्श करती है और शीघ्रही छोड़कर चली भी

लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः। गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥ ७ ॥
महर्षियो वसिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः। अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम् ॥ ८ ॥
या चेयं जगतो माता सर्वलोकनमस्कृता। अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोशलेश्वर ॥ ९ ॥
यौ धर्मौ जगतो नेत्रौ यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ ॥१०॥
सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ। न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥११॥
शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानौ नयानयौ। श्रूयेते नरशार्दूल न त्वं व्यथितुमर्हसि ॥१२॥
मृतायामपि वैदेह्यां नष्टायामपि राघव। शोचितुं नार्हसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥१३॥
त्वद्विधा नहि शोचन्ति सततं सर्वदर्शनाः। सुमहत्स्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः ॥१४॥
तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय। बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥१५॥
अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणां तु कर्मणाम्। नान्तरेण क्रियां तेषां फलमिष्टं च वर्तते ॥१६॥
मामेवं हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान्। अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः ॥१७॥
बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया। शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् ॥१८॥
दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम्। इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥१९॥

जाती हैं ॥ ६ ॥ यही लोकका स्वभाव है। राजा ययाति नहुषके पुत्र थे, उन्होंने इन्द्रलोक प्राप्त किया, पर उन्होंने नीतिगर्हित काम किया, जिससे उन्हें स्वर्गसे भ्रष्ट होना पड़ा ॥ ७ ॥ महर्षि वसिष्ठ, जो हमलोगोंके पिताके पुरोहित हैं, उनके सौ पुत्र उत्पन्न हुए और वे एकही दिनमें विश्वामित्रके द्वारा मारे गये ॥ ८ ॥ यह देवी पृथिवी जो सबकी माता और सबके द्वारा पूजित है, उसे भी कांपना पड़ता है ॥ ९ ॥ जो चन्द्रमा और सूर्य धर्मके प्रवर्तक हैं, संसारके नेत्र हैं, जिन पर संसारका सब कुछ अवलम्बित है, उन्हें भी राहुका ग्रहण होता है ॥ १० ॥ पृथिवी आदि कोई महाभूत ही क्यों न हो, चाहे कोई देवता ही हो, सभी शरीरधारी दैवकी अधीनतासे मुक्त नहीं हो सकते ॥ ११ ॥ इन्द्र आदि देवताओंको भी सुख-दुःख हुआ करते हैं, ऐसा सुना जाता है अतएव पुरुषश्रेष्ठ आप कष्ट न करें ॥ १२ ॥ सीता चाहे भूल गयी हों या मर गयी हों, तथापि आपको साधारण मनुष्योंके समान कष्ट नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥ आपके समान सब कुछ जाननेवाले मनुष्य बड़े-बड़े कष्टोंके समय भी दुःख नहीं करते, वे सदा प्रसन्न रहा करते हैं ॥ १४ ॥ नरश्रेष्ठ, आप बुद्धिके द्वारा भलाई-बुराईका विचार करें, क्योंकि बुद्धिके द्वाराही बुद्धिमान् मनुष्य भलाई-बुराईका विचार करते हैं ॥ १५ ॥ जिनके गुण दोष प्रत्यक्ष नहीं हुए हैं ऐसे अचिरस्थायी कर्मोंके इष्टफल भी विना क्रियाके, विना विचारके नहीं उत्पन्न होते ॥ १६ ॥ इस प्रकारकी बहुतसी बातें आपनेही पहले मुझसे कहीं हैं, भला आपको कौन सिखा सकता है, चाहे वह बृहस्पतिही क्यों न हो ॥ १७ ॥ आपकी बुद्धिका पता देवताओंको भी नहीं लग सकता, इस समय शोकके कारण आपकी वह बुद्धि अन्तर्हित हो गयी है, वही मैं उसे जाग्रत करता हूँ ॥ १८ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ, आप सबके द्वारा प्रशंसित हैं,

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ। तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥
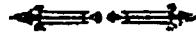
सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम्। सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥
स निगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः। अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥
किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण। केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ॥ ३ ॥
तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्। इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम्। सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ॥ ५ ॥
गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः। आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च ॥ ६ ॥
तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि। त्वद्विधा बुद्धिसंपन्ना महात्मानो नरर्षभाः ॥ ७ ॥
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः। इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ॥ ८ ॥
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम्। ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१०॥

अपने पौरुषका विचार करके शत्रुके वध करनेका प्रयत्न करें ॥ १९ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, सबके नाशसे आपको क्या लाभ, उसी शत्रुका पता लगाकर आप उसके नाशका प्रयत्न करें ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सार ग्रहण करनेवाले बड़े रामचन्द्रने लक्ष्मणकी कही अच्छी बातोंका सार ग्रहण किया॥१॥ बढ़े हुए अपने क्रोधको रोककर और अपना धनुष उतारकर वे लक्ष्मणसे बोले ॥ २ ॥ वत्स, हम लोग क्या करें, लक्ष्मण, हम लोग कहाँ जाँय, किस उपायसे हम लोग सीताको देखें, इसका निश्चय करो ॥ ३ ॥ दुःख-पीड़ित रामचन्द्रसे लक्ष्मण इस प्रकार बोले—इसी जनस्थानमें आप सीताको ढूँढ़ें ॥ ४ ॥ अनेक वृक्ष और लताओंसे युक्त यह वन राक्षसोंसे भरा है, इसमें बहुतसे अगम्य स्थान हैं, झरने हैं और कन्दरायें हैं ॥ ५ ॥ यहाँ अनेक प्रकारकी बड़ी भयानक गुहाएँ हैं, जिनमें तरह-तरहके पशु-पक्षी रहते हैं, किन्नरोंके रहनेके स्थान हैं और गन्धर्वोंके भवन हैं ॥ ६ ॥ मेरे साथ आप इन सब स्थानोंको ढूँढ़ें। आपके समान बुद्धिमान् श्रेष्ठ मनुष्य आपत्तियोंमें घबड़ाते नहीं, जिस प्रकार वायुवेगसे पर्वत कंम्पित नहीं होते। लक्ष्मणके ऐसा कहने पर क्रुद्ध रामचन्द्र धनुषपर क्षुर नामक बाण चढ़ाकर लक्ष्मणके साथ समस्त वनमें घूमने लगे। तदनन्तर पक्षिश्रेष्ठ महाभाग जटायुको भूमिमें पड़े रामचन्द्रने देखा, वे खूनमें लथपथ हो रहे थे। पर्वत-शिखरके समान विशाल उनको देखकर लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले ॥ ७, ८, ९, १० ॥ इसीने सीताको

अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः । गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ॥११॥
भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम् । एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥१२॥
इत्युक्त्वाभ्यपतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् । क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥१३॥
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् । अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥१४॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने । सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥१५॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥१६॥
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो । विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥१७॥
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा । अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ॥१८॥
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षिनिहतो भुवि । परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ॥१९॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् । रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥२०॥
रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् । गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥२१॥
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः । द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥२२॥
एकमेकायने कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥२३॥
राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः । ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ॥२४॥

खाया है इसमें सन्देह नहीं, यह साधुरूपधारी राक्षस है और वनमें घूमता रहता है ॥ ११ ॥ विशालाक्षी सीताको खाकर यह यहाँ सुखसे बैठा है, मैं अपने तीखे और सीधे चलनेवाले उग्र बाणोंसे इसका वध करूँगा ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर क्रुद्ध रामचन्द्र समुद्र पर्यन्त पृथिवीको कपाँते हुए धनुष पर क्षुरनामक बाण रखकर उसे देखनेके लिए चले ॥ १३ ॥ वह पक्षी फेन-सहित रुधिर उगलता हुआ दुःखित वाणीके द्वारा दसरथपुत्र रामचन्द्रसे बोला ॥ १४ ॥ इस महावनमें औषधिके समान तुम जिसे ढूँढ़ते हो, वह देवी सीता और मेरे प्राण इन दोनोंको रावण हर ले गया ॥ १५ ॥ तुम्हारे और लक्ष्मणके न रहनेसे बलवान् रावण उसे हरे ले जा रहा था, तब मैंने देखा ॥ १६ ॥ प्रभो, सीताकी रक्षाके लिये मैं गया था और युद्धमें रावणके रथ और छत्र मैंने तोड़ दिया तथा उसे पृथिवीपर गिरा दिया ॥ १७ ॥ यह उसका टूटा हुआ धनुष पड़ा है, ये उसके बाण हैं, राम, युद्धमें टूटा यह उसका युद्धका रथ पड़ा है ॥ १८ ॥ मेरी पाँखसे मारा गया यह उसका सारथी है, जब मैं थक गया, तब उसने तलवारसे मेरी पाँख काट दी ॥१९॥ और सीताको लेकर वह आकाशमें उड़ा था। राक्षसके द्वारा मैं मारा गया हूँ, अब तुम मुझे न मारो ॥ २० ॥ सीतासे संबन्ध रखनेवाली गृध्रराजकी प्रियकथा रामचन्द्रने सुनी और धनुष रखकर उन्होंने गृध्रराजका आलिंगन किया ॥२१॥ रामचन्द्रके बहुत धीर होने पर भी उनका दुःख दूना हो गया, वे अवश होकर पृथिवीमें गिर पड़े और लक्ष्मणके साथ रोने लगे ॥ २२ ॥ एकही मनुष्यके जाने योग्य दुःखद स्थानमें गिरे हुए असहाय जटायुको साँस लेते हुए देखकर दुःखित रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ २३ ॥ राज्य नष्ट हुआ, वनवास करना पड़ा, सीताका पता नहीं और यह पक्षी मारा गया, मेरा ऐसा अभाग्य है कि वह सबको जलानेवाले अग्निको भी जला दे ॥२४॥

संपूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् । सोऽपिनूनं ममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितां पतिः ॥२५॥
नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे । येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥२६॥
अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः । शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः । जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥२८॥
निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः ।
क मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥
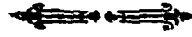
अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम् । सौमित्रिं मित्रसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहङ्गमः । राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यजति मत्कृते ॥ २ ॥
अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन्प्राणो लक्ष्मण विद्यते । तथा स्वरविहीनोऽयं विक्लवं समुदीक्षते ॥ ३ ॥
जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः । सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तो जहारार्यां रावणस्तस्य किं मया । अपराधं तु यं दृष्ट्वा रावणेन हृता प्रिया ॥ ५ ॥

मैं यदि आज समुद्रमें तैरने जाऊँ तो मेरे अभाग्यके कारण यह नदियोंका स्वामी भी सूख जाय ॥ २५ ॥ इस चराचर संसारमें मुझसे बढ़कर अभागी दूसरा नहीं है, जिसके कारण आज मैं इस दुःखोंके जालमें फँसा हुआ हूँ ॥२६॥ ये गृध्रराज मेरे पिताके मित्र हैं, मेरेही भाग्यदोषसे आज मारे जाकर जमीनमें पड़े हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार बहुत कुछ कहकर पितृप्रेम दिखाते हुए जटायुका उन लोगोंने स्पर्श किया ॥ २८ ॥ रामचन्द्रने पाँख कटे हुए और रुधिराक्त गृध्रराजको पकड़कर 'मेरी प्राणसम सीता कहाँ है' ऐसा कहकर वे पृथिवी पर गिर पड़े ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

राक्षसके द्वारा गृध्रको जमीनमें पड़ा देखकर रामचन्द्र सबसे मित्रता रखनेवाले लक्ष्मणसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ यह पक्षी अवश्य मेरे लिए अर्थात् सीताको छुड़ानेके लिए प्रयत्न कर रहा था । उसी प्रयत्नमें राक्षसने इसे युद्धमें मारा है । यह मेरे कारण प्राण छोड़ रहा है ॥ २ ॥ लक्ष्मण, इसके शरीरमें बहुत ही थोड़ा प्राण है । अतएव इसकी आवाज बहुत धीमी पड़ गयी है और व्याकुल होकर इधर-उधर देखता है ॥ ३ ॥ जटायु, यदि तुम बोल सको तो सीताका पता बतलाओ और अपने वधका कारण कहो ॥ ४ ॥ आर्या सीताका हरण किस कारणसे हुआ, मैंने उसका कौनसा अपराध किया है, जिसके कारण उसने मेरी प्रिया सीताका हरण किया ॥५॥

कथं तच्चन्द्रसंकाशं मुखमासीन्मनोहरम् । सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्काले द्विजोत्तम ॥ ६ ॥
कथंवीर्यः कथंरूपः किंकर्मा स च राक्षसः । क चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः ॥ ७ ॥
तमुद्वीक्ष्य स धर्मात्मा विलपन्तमनाथवत् । वाचा विक्लवया राममिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
सा हृता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥
परिक्लान्तस्य मे तात पक्षौ छित्त्वा निशाचरः । सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः ॥१०॥
उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव । पश्यामि वृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥११॥
येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः । विप्रनष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥१२॥
विन्दोनाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत् । झषवद्बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥१३॥
न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति । वैदेह्यां रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं रणमूर्धनि ॥१४॥
असंमूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः । आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥१५॥
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥१६॥
ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः । त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम् ॥१७॥
स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा । विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥१८॥

पक्षिश्रेष्ठ, उस समय चन्द्रमाके समान सीताका मनोहर मुंह कैसा होगया था ? सीताने कौन-
कौनसी बातें कही हैं ॥६॥ तात, मैं आपसे पूछ रहा हूँ, बतलाइए, रावणका कैसा प्रभाव है ? कैसा
रूप है ? वह राक्षस क्या करता है और उसका घर कहाँ है ॥ ७ ॥ अनाथके समान विलाप करते
हुए रामको देखकर धर्मात्मा जटायु टूटती हुई आवाजमें बोला ॥ ८ ॥ दुरात्मा राक्षसराज रावण-
ने सीताका हरण किया है । मायाके द्वारा आंधी पानी आदि बनाकर, उसने सीताका हरण किया
॥ ९ ॥ तात, थकजाने पर मेरी पांख काटकर और सीताको लेकर वह दक्षिणकी ओर चला
गया ॥ १० ॥ मेरे प्राण रुक रहे हैं अर्थात् वे निकल रहे हैं, जिसकारण इन्द्रियोंका व्यापार रुक
रहा है । आंखें घूम रही हैं, मैं वृक्षोंको सुवर्णके समान देख रहा हूँ । मालूम होता है कि इनके
बाल खसके बनाए गये हैं (यह मृत्यु की सूचना है) ॥११॥ जिस मुहूर्तमें रावण सीताको लेकर
गया है उस मुहूर्तमें भूली हुई वस्तुको स्वामी शीघ्र ही पाता है ॥ १२ ॥ वह विन्द नामक मुहूर्त
था, जिसमें रावण सीताको लेगया । रावणने उस मुहूर्तकी ओर ध्यान नहीं दिया ; इतना ही
नहीं, जिसप्रकार वन्सी पकड़कर मछलियां नष्ट होती हैं, उसीप्रकार वह भी स्वयं नष्ट हो जायगा
॥ १३ ॥ जानकीके लिए तुम अपने मनमें कष्ट मत करो । युद्धमें रावणको मारकर शीघ्रही सीता-
के साथ तुम रमण करोगे ॥ १४ ॥ मृत्युकालमें भी चेतन बनेहुए और रामके प्रश्नोंका उत्तर देते
हुए, मृत्युके निकट आए हुए उस गृध्रके मुंहसे खूनके साथ मांस निकला ॥ १५ ॥ विश्रवाका
वह पुत्र है और कुबेरका भाई । इतना कहकर पक्षिराजने अपने दुर्लभ प्राण छोड़े ॥१६॥ हाथ जोड़
कर रामचन्द्र कह रहेथे कि कहो, कहो, उसी समय गृध्रके प्राण शरीर छोड़कर आकाशमें चले गये ॥१७॥
मस्तक और पैर उसने पृथिवीमें फैला दिये । शरीर छोड़ दिया और वह पृथिवीमें गिर पड़ा

तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् । रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१९॥
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् । अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥२०॥
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः । सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥२१॥
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे । सीतामभ्यवपन्नो हि रावणेन बलीयसा ॥२२॥
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् । मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥२३॥
सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः । शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥२४॥
सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् । यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥२५॥
राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः । पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥२६॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥२७॥
नाथं पतगलोकस्य चितिमारोपयाम्यहम् । इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ॥२८॥
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः । अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥२९॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् । गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥३०॥
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् । ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥३१॥
रामोऽपि सहसौमित्रिर्वनं यात्वा स वीर्यवान् । स्थूलान्हत्वा महारोहीननु तस्तार तं द्विजम् ॥३२॥

॥ १८ ॥ लाल आंखोंवाला पर्वतके समान वह गृध्र मर गया, यह देखकर अनेक प्रकारके दुखोंसे दुखी रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १९ ॥ यह पक्षी बहुत दिनोंसे राक्षसोंके निवासस्थान दण्डकारण्यमें रहता था। वह आज मारा गया ॥ २० ॥ जो बहुत दिनोंका है, जो बहुत दिनोंसे बढ़ा हुआ है वह आज मारा जाकर सो रहा है। समयके सामने किसकी चली है? ॥२१॥ लक्ष्मण, देखो यह मेरा उपकारी गृध मारा गया। सीताकी रक्षाके लिए यह प्रवृत्त हुआ था। बली रावणने इसे मार डाला ॥२२॥ इस पक्षिराजने पिता पितामहसे आया गृध्रराज्यका त्यागकर मेरे कारण अपने प्राण दिये हैं ॥ २३ ॥ धर्मात्मा सज्जन सर्वत्र पाये जाते हैं। शूर, शरणागतकी रक्षा करनेवाले पक्षीकी योनिमें भी हैं ॥ २४ ॥ सौम्य, इस समय सीताके हरणका वैसा दुख मुझे नहीं है, जैसा अपने कारण इस गीधके मरनेका है ॥ २५ ॥ महायशस्वी राजा दशरथ जैसे हमारे मान्य हैं, वैसा ही मान्य और पूजनीय यह पक्षिराज भी है ॥ २६ ॥ लक्ष्मण, लकड़ी इकट्ठा करो, मथ कर आग निकालूंगा, मेरे लिए मृत्युप्राप्त इस पक्षिराजका मैं दाह करूंगा ॥ २७ ॥ पक्षियोंके स्वामीको मैं चिता पर रखूँगा। भयानक राक्षसके द्वारा मारे गए इनका मैं दाह करूंगा ॥ २८ ॥ यज्ञ करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, अग्निहोत्रियों, युद्धमें सामने लड़नेवालों और भूमि दान करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है तुम मेरी आज्ञासे उन्हीं लोकोंमें जाओ। महाप्राण गृध्रराज, मैं तुम्हारा संस्कार कर रहा हूँ। तुम उन्हीं लोकोंमें जाओ ॥ २९, ३० ॥ ऐसा कहकर पक्षिराजका, चितापर रखकर धर्मात्मा और दुखी रामचन्द्रने अपने बान्धवके समान दाह किया ॥ ३१ ॥ पराक्रमी रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ वन गये और मोटे मृगोंको मारकर उन्होंने पृथिवीपर तृण

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः । शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥३३॥
यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः । तत्स्वर्गगमनं क्षिप्रं तस्य रामो जजाप ह ॥३४॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ । उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥३५॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ । स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥३६॥

स गृध्रराजः कृतवान्यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ॥३७॥
कृतोदकौ तावपि पक्षिसत्तमे स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा । अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम् ॥ १ ॥
तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ । अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ २ ॥
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् । आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ३ ॥
व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् । सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥ ४ ॥

बिछाया ॥ ३२ ॥ उन मृगोंका मांस निकालकर तथा गोलाकार बनाकर महायशस्वी रामचन्द्रने रमणीय हरी घासपर पक्षीके लिए दिया ॥ ३३ ॥ मरे हुए मनुष्यके स्वर्ग जानेके लिए ब्राह्मण जिन मन्त्रोंका जप करते हैं, उस स्वर्ग भेजनेवाले मन्त्रका जप रामचन्द्रने किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर दोनों राजपुत्र, गोदावरी तीरपर गये और वहां उन लोगोंने गृध्रराजके लिए जल दिया ॥ ३५ ॥ शास्त्रोक्तविधिके अनुसार राम और लक्ष्मणने गीधको जल दिया, स्नान करके उन लोगोंने गृध्रराजको जल दिया॥३६॥ रणमें मारे गये गृध्रराजने यश बढ़ानेवाला, बहुतही कठोर काम किया था। महर्षिके समान रामचन्द्रने उनका संस्कार किया और वे पवित्र गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ जल देकर वे दोनों, पक्षिश्रेष्ठ जटायुमें अविचल प्रेम रखकर चले । सीताकी प्राप्तिके प्रयत्नमें मन लगाकर देवस्वामी विष्णु और इन्द्रके समान वे वनमें चले ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

इसप्रकार जटायुको जल देकर राम और लक्ष्मण वनमें सीताको देखतेहुए वहांसे पश्चिम दिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ बाण, धनुष और तलवार धारण करनेवाले वे दोनों कुछ दक्षिण दिशा-की ओर अर्थात् पश्चिम–दक्षिणके बीचकी ओर जनहीन रास्तेपर पहुँचे ॥ २ ॥ अनेक गुल्मों, वृक्षों और लताओंसे वह मार्ग भरा और घिरा हुआ था । वह देखनेमें भयानक और प्रवेश करनेमें कठिन था ॥३॥ महाबली राम और लक्ष्मणने दक्षिण दिशाकी ओर जाकर रास्तेमें मिले हुए उस

ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ । क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः । नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः । तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा । क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ॥
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ । पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥१०॥
आसाद्य च नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः । ददर्शतुर्महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ॥११॥
भयदामल्पसत्त्वानां बीभत्सां रौद्रदर्शनाम् । लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालीं परुषत्वचम् ॥१२॥
भक्षयन्तीं मृगान्भीमान्विकटां मुक्तमूर्धजाम् । अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः । एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम् ॥१४॥
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य च । अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः ॥१५॥
नाथ पर्वतदुर्गेषु नदीनां पुलिनेषु च । आयुश्चिरमिदं वीर त्वं मया सह रंस्यसे ॥१६॥
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः । कर्णनासस्तनं तस्या निचकर्तारिसूदनः ॥१७॥
कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं विननाद सा । यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी घोरदर्शना ॥१८॥

भयानक वनको वेगसे पार किया ॥ ४ ॥ वहांसे जनस्थानसे तीन कोस चलकर तेजस्वी राम और लक्ष्मणने क्रौञ्च नामक वनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ अनेक मेघसमूहोंके समान वह क्रौञ्च वन पुष्पित होनेके कारण सब ओरसे प्रसन्न मालूम पड़ता था । अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्प, पशु और पक्षी वहां वर्तमान थे ॥ ६ ॥ सीताहरणसे दुखी राम और लक्ष्मण उस वनमें जहां-तहां बैठकर, सीताको ढूँढ़ने लगे ॥ ७ ॥ वहांसे तीन कोस पूर्वकी ओर जाकर क्रौञ्च वनको पारकरके रास्तेमें मतंगमुनिका आश्रम उन लोगोंने देखा ॥ ८ ॥ वह वन बड़ा ही भयानक था । उसमें अनेक भयानक पशु और पक्षी थे । अनेक वृक्षोंसे वह भरा हुआ था ॥ ९ ॥ उस पर्वतमें उन लोगोंने एक बहुत बड़ी कन्दरा देखी । वह पातालके समान गहरी थी तथा उसमें सदा अन्धकार रहता था ॥ १० ॥ उस कन्दराके पास पहुँचकर उन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंने विशाल शरीर और विकट मुखवाली एक राक्षसी देखी ॥ ११ ॥ दुर्बल प्राणियोंको भय दिखलानेवाली, घृणा उत्पन्न करनेवाली, लम्बे पेटवाली, तीखे दाँतवाली, क्रूर-स्वरूपवाली, देखनेमें भयानक, कठोर चमड़ेवाली भयानक पशुओंका मांस खानेवाली, खुले केशवाली, विकटाकार राक्षसीको दोनोंभाई रामचन्द्र और लक्ष्मणने देखा ॥१२, १३॥ उन दोनो वीरोंके पास जाकर, भाईके आगे चलते हुए लक्ष्मणको-'आओ हम लोग रमण करें,' ऐसा कहकर उसने पकड़ लिया ॥ १४ ॥ लक्ष्मणका आलिंगन करके वह उनसे बोली—मेरा नाम अयोमुखी है । मैं तुमको निधिके समान मिली । तुम मेरे प्रिय हो ॥१५॥ नाथ, पर्वतों, वन और नदियोंके तीरों पर मेरे साथ इस लम्बी आयुमें रमण करना ॥१६॥ ऐसा कहनेपर क्रोध करके लक्ष्मणने उसके कान, नाक और स्तन काट डाले । कान-नाकके काटे जाने पर वह अद्भुत स्वरमें विलाप करने लगी और भयानक रूप-

तस्यां गतायां गहनं व्रजन्तौ वनमोजसा । आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
लक्ष्मणस्तु महातेजाः सत्त्ववाञ्छीलवाञ्छुचिः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२०॥
स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः । प्रायशश्चाप्यनिष्टानि निमित्तान्युपलक्षये ॥२१॥
तस्मात्सज्जभवार्य त्वं कुरुष्व वचनं मम । ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति संभ्रमम् ॥२२॥
एष वञ्चुलको नाम पक्षी परमदारुणः । आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति ॥२३॥
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा । संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥२४॥
संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना । वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥२५॥
तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः । ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥२६॥
आसेदतुश्च तद्रक्षस्तावुभौ प्रमुखे स्थितम् । विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरेमुखम् ॥२७॥
रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् । नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥२८॥
अग्निज्वालानिकाशेन ललाटस्थेन दीप्यता । महापक्ष्मेण पिङ्गेन विपुलेनायतेन च ॥२९॥
एकेनोरसि घोरेण नयनेन सुदर्शिना । महादंष्ट्रोपपन्नं तं लेलिहानं महामुखम् ॥३०॥
भक्षयन्तं महाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् । घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ॥३१॥
कराभ्यां विविधान्गृह्य ऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् । आकर्षन्तं विकर्षन्तमनेकान्मृगयूथपान् ॥३२॥

वाली वह राक्षसी जहांसे आयी थी वहां भाग गयी ॥१८॥ राक्षसीके चली जाने पर वेगसे चलते हुए शत्रुओंका नाश करनेवाले राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंने गहन वन पोथा ॥१९॥ पराक्रमी, शीलवान्, शुद्ध, तेजस्वी लक्ष्मण हाथ जोड़कर तेजस्वी रामचन्द्रसे बोले ॥२०॥ मेरी बांह खूब फड़क रही है, मेरा मन उद्विग्न हो रहा है, प्रायः बुरे निमित्त मैं देख रहा हूँ ॥२१॥ इस कारण आर्य, आप तयार होजाय। मेरी बात मानें। ये सब निमित्त मेरेही लिए भय बतला रहे हैं ॥२२॥ यह भयानक वनमें बुलक नामका पक्षी बोल रहा है; और युद्धमें हम लोगोंकी विजय होगी, यह बतला रहा है ॥ २३ ॥ इस प्रकार, उस वनको तेजीके साथ वे दोनों ढूंढ रहे थे, उस समय एक बहुत बड़ा शब्द हुआ, जिससे वह वन नष्ट होनेके समान होगया ॥ २४ ॥ वह समस्त वन वायुसे भर गया। उस वनके बीचमें समस्त वन गुंजाता हुआ वह शब्द हुआ ॥ २५ ॥ भाईके साथ खड्ग धारण करनेवाले रामचन्द्र उस शब्दको जानना ही चाहते थे कि विशालकाय बड़ीछातीवाला एक राक्षस उन्होंने देखा ॥२६॥ उन दोनोंके आगे आकर वह राक्षस खड़ा होगया। वह बहुत बड़ा था। उसके न मस्तक था न गला। वह कबन्ध था और उसके पेटमें मुख था ॥२७॥ तेज और तीखे उसके शरीरके रोमथे, वह पर्वतके समान ऊँचा था; नीले मेघके समान भयानक और मेघके समान गर्जन करनेवाला था ॥२८॥ अग्निज्वालाके समान जलते हुए, पीले, लम्बे और अधिक रोम उसके मस्तक पर थे ॥२९॥ उसकी छातीमें एक भयानक आंख थी, जिससे वह खूब अधिक देख सकता था। उसके मुंहमें बड़े-बड़े दांत थे और उसकी जीभ लपलपा रही थी ॥३०॥ भालु, सिंह, मृग और पक्षियोंको वह खा रहा था। एक योजन लम्बे हाथोंको वह चला रहा था ॥३१॥ वह अपने हाथों-से भालुओं, पक्षिसमूहों तथा अनेक मृगोंको खींचता और फेंकता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें चलते

स्थितमावृत्य पन्थानं तयोर्भ्रात्रोः प्रपन्नयोः । अथ तं समतिक्रम्य क्रोशमात्रं ददर्शतुः ॥३३॥
महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् । कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥३४॥
स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ । जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात् ॥३५॥
खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजौ महाभुजौ । भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ ॥३६॥
तत्र धैर्याच्च शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे । बाल्यादनाश्रयाच्चैव लक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥३७॥
उवाच च विषण्णः सन्राघवं राघवानुजः । पश्य मां विवशं वीर राक्षसस्य वशंगतम् ॥३८॥
मयैकेन तु निर्युक्तः परिमुच्यस्व राघव । मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम् ॥३९॥
अधिगन्तासि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः । प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महाम् ॥४०॥
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा । लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥४१॥
मा स्म त्रासं वृथा वीर नहि त्वादृग्विषीदति । एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥
तावुवाच महाबाहुः कबन्धो दानवोत्तमः । कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥४३॥
घोरं देशमिमं प्राप्तौ दैवेन मम चाक्षुषौ । वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ॥४४॥
इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः । सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ॥४५॥
मां तूर्णमनुसंप्राप्तौ दुर्लभं जीवितं हि वाम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कबन्धस्य दुरात्मनः ॥४६॥

हुए दोनों भाइयोंका रास्ता रोककर वह राक्षस खड़ा हो गया। अनन्तर, इन दोनों भाइयोंने एक कोस और आगे चलकर देखा ॥३३॥ कि बहुत लम्बा-चौड़ा और भयानक एक कबन्ध है, जिसने अपने हाथोंसे मृगोंको छिपाया है। आकारसे वह कबन्धके समान बड़ा भयानक मालूम होता था ॥३४॥ महाबाहु उस कबन्धने अपनी लम्बी भुजाएँ फैलाकर एक साथही इन राम और लक्ष्मण दोनोंको पीड़ित करते हुए जबरदस्ती पकड़ लिया ॥३५॥ तलवार और धनुष धारण करनेवाले, महातेजस्वी, महाभुज वे दोनों उसके आकर्षणमें पड़कर विवश होगये॥३६॥ रामचन्द्र शूरता और धीरताके कारण नहीं घबड़ाए, पर, बालक होनेके कारण और धैर्यके न रहनेके कारण लक्ष्मण बहुत दुखी हुए ॥३७॥ लक्ष्मण दुखी होकर रामचन्द्रसे बोले—वीर! मुझे देखिये, मैं राक्षसके वशमें आ गया हूं और विवश हूँ ॥३८॥ मुझको इस पिशाचके लिए बलि देकर, एक मुझको यहीं छोड़कर, आप सुखपूर्वक यहांसे भाग जांय अर्थात् मुझे राक्षसको देकर अपनी रक्षा करें ॥३९॥ शीघ्रही सीता आपको मिलेगी ऐसा मैं समझता हूँ। रामचन्द्र, पिता-पितामहके द्वारा पालित पृथिवीके राजा होकर वहां आप मेरा स्मरण कीजिएगा। लक्ष्मणके ऐसा कहने पर रामचन्द्र उनसे बोले ॥४०, ४१॥ वीर, व्यर्थ भय मत करो। तुम्हारे ऐसा आदमी दुख नहीं करता। इसी समय दानवश्रेष्ठ, महाबाहु, क्रूर वह कबन्ध, राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे बोला—वृषभके समान कन्धेवाले, तलवार और धनुष धारण करनेवाले, तुम दोनों कौन हो ॥४२,४३॥ इस भयानक देशमें आये हुए और मेरी आंखोंके सामने पड़े हुए तुम दोनों कौन हो? कहो, यहाँ तुम्हारा कौन काम है? किसलिये तुमलोग यहां आये हो? ॥ ४४ ॥ क्षुधार्त मेरे इस प्रदेशमें तीखी सींग वाले दो बैलोंके समान धनुष-बाण और तलवार लेकर तुम लोग आए हो, तुम लोग मेरे

उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता । कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ॥४७॥
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् । कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४८॥
त्वां च मां च नरव्याघ्र व्यसनैःपश्य मोहितौ । नहि भारोऽस्ति दैवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४९॥
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे । कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥५०॥
इतिब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो महायशा दाशरथिः प्रतापवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरां तदा स्वां मतिमात्मनाऽकरोत् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

तौ तु तत्र स्थितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । बाहुपाशपरिक्षिप्तौ कबन्धो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
तिष्ठतः किं नु मां दृष्ट्वा क्षुधार्तं क्षत्रियर्षभौ । आहारार्थं तु संदिष्टौ दैवेन हतचेतनौ ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा । उवाचार्तिसमापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ॥ ३ ॥
त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः । तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहे गुरू ॥ ४ ॥
भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः । लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां हन्तुमिहेच्छति ॥ ५ ॥

पास आगये हो, अब तुम लोगोंका जीना दुर्लभ है । दुरात्मा कबन्धकी ये बातें सुनकर रामचन्द्र सूखतेहुए मुखसे लक्ष्मणसे बोले—सत्यविक्रम, यह तो कठोरसे भी कठोर असहनीय दुख हमलोगोंको प्राप्त हुआ । अब हम लोगोंके प्राण जायेंगे । प्रिया सीता तो मिली नहीं । कालका प्रभाव सब प्राणियों पर होता है ॥४५, ४६, ४७, ४८॥ नरव्याघ्र, तुम और मैं दोनों कालके द्वारा दुखसे पीड़ित होरहे हैं; पर, काल प्राणियोंके लिए स्वतंत्र नहीं है, वहभी किसीके द्वारा परिचालित है ॥४९॥ बलवान, शिक्षित और वीर मनुष्य भी कालके वश होकर रणक्षेत्रमें बालुके पुलके समान दुख उठाते हैं ॥५०॥ सत्यविक्रम, महायशस्वी, प्रतापी रामचन्द्र ऐसा कहते हुए और लक्ष्मणको देखकर, प्रसिद्ध पराक्रमी रामचन्द्रने स्वयं अपनी बुद्धिको स्थिर किया ॥५१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६९॥

राम और लक्ष्मण दोनों भाई मेरे हाथोंके फांसमें बँधे वहां खड़े हैं, यह देखकर कबन्ध उनसे बोला ॥१॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ, भूखे मुझको देखकर तुम लोग क्यों खड़े हो गये ? क्यों डर गये ? भाग्यने तुम लोगोंकी बुद्धि मारकर मेरेही खानेके लिए तुम लोगोंको यहां भेजा है ॥२॥ उसकी बात सुनकर लक्ष्मणने समयके अनुकूल कहा, वे बहुतही दुखी होगये थे और पराक्रम करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया था ॥३॥ यह नीच राक्षस आपको और मुझको शीघ्रही पकड़ेगा। आइए,हम लोग तलवारसे इसकी लम्बी बांह काट दें ॥४॥ यह विशाल शरीरवाला भयानक राक्षस

निश्चेष्टानां वधो राजन्कुत्सितो जगतीपते। क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥ ६ ॥
एतत्संजल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः। विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ। अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥ ८ ॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः। चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः॥ ९ ॥
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः। खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा॥१०॥
स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः। दीनःपप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः। शशंस तस्य काकुत्स्थं कवन्धस्य महाबलः॥१२॥
अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः। तस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम्॥१३॥
मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम्। मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम् ॥१४॥
अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने। रक्षसापहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ ॥१५॥
त्वं तु को वा किमर्थं वा कवन्धसदृशो वने। आस्येनोरासि दीप्तेन भग्नजङ्घो विचेष्टसे ॥१६॥
एवमुक्तः कवन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः। उवाच वचनं प्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् ॥१७॥
स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम्।दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ॥१८॥

अपनी भुजाओंके बलसे सबको जीत चुका है, अब हमलोगोंको जीतना चाहता है ॥ ५ ॥ प्रतिकार करनेमें असमर्थ प्राणियोंका वध करना राजाके लिए अनुचित है, जिसप्रकार यज्ञमें आए पशु का वधकरना ॥६॥ उन दोनोंकी ये बातें सुनकर राक्षसने क्रोध किया और भयानक मुँह बा कर उन दोनोंको खानेके लिए वह चला ॥७॥ देशकाल जाननेवाले उन दोनोंने प्रसन्न होकर उसकी बाँह कन्धेसे काट डाली ॥ ८ ॥ उसकी दाहिनी ओर खड़े रामचन्द्रने तलवारसे अनायास दाहिनी बाँह और बाँई ओर खड़े वीर लक्ष्मणने बाँई बाँह काट डाली ॥ ९ ॥ बाहुके कट जानेसे वह महाबाहु राक्षस भयानक शब्द करता हुआ पृथिवीमें गिर पड़ा। मेघके समान अपने भयानक शब्दसे उसने पृथिवी और आकाशको गुँजा दिया ॥ १० ॥ कटी बाँहोंको देखकर रुधिरमें सना हुआ दुःखी वह दानव बोला—वीर, तुम दोनों कौन हो? ॥ ११ ॥ उसके ऐसा पूछने पर शुभ-लक्षण लक्ष्मणने कवन्धको रामचन्द्रका परिचय दिया ॥ १२ ॥ ये इक्ष्वाकुवंशके उत्तराधिकारी रामनामसे लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, मैं इन्हींका छोटा भाई हूँ, लक्ष्मण मेरा नाम है ॥ १३ ॥ माताके द्वारा राज्यमें रुकावट होनेसे रामचन्द्र वन चले आये। मेरे और अपनी स्त्रीके साथ ये इस भयानक वनमें भ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ देवप्रभाव रामचन्द्र वनमें जब निवास करते थे, उनकी स्त्रीको राक्षसने हर लिया। उसे ढूँढते हुए हम लोग यहां आये हैं ॥ १५ ॥ तुम कौन हो, कवन्धके समान वनमें क्यों पड़े हो? तुम्हारी जंघाएं टूटी हैं, तुम्हारी छातीमें मुँह है और तुम यहां लुढ़क रहे हो ॥ १६ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर इन्द्रका वचन स्मरण करता हुआ कवन्ध प्रसन्नतापूर्वक बोला ॥ १७ ॥ तुम दोनों श्रेष्ठ मनुष्योंका मैं स्वागत करता हूँ। प्रसन्नताकी बात है कि तुम दोनोंको मैंने यहां देखा। इससे भी प्रसन्नता है कि तुम दोनोंने यह बाहुरूपी मेरा बन्धन काट

विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्यविनयाद्यथा । तन्मे शृणु नरव्याघ्र तत्त्वतः शंसतस्तव ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रमम् । रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥
यथा सूर्यस्य सोमस्य शक्रस्य च यथा वपुः । सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनं महत् ॥ २ ॥
ऋषीन्वनगतान्राम त्रासयामि ततस्ततः । ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया ॥ ३ ॥
स चिन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः । तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥
एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् । स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति॥ ५ ॥
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः । यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ॥ ६ ॥
तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् । श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ॥ ७ ॥
इन्द्रशापादिदं रूपं प्राप्तमेवं रणाजिरे । अहं हि तपसोग्रेण पितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥
दीर्घमायुः स मे प्रादात्ततो मां विभ्रमोऽस्पृशत् । दीर्घमायुर्मया प्राप्तं किं मां शक्रः करिष्यति ॥ ९ ॥
इत्येवं बुद्धिमास्थाय रणे शक्रमधर्षयम् । तस्य बाहुप्रमुक्तेन वज्रेण शतपर्वणा ॥१०॥

दिया । यह जो मेरा रूप कुरूप हो गया है, यह मेरेही अविनयके कारण हुआ है । मैं तुम लोगोंसे ठीक-ठीक कहता हूं, सुनो ॥ १८, १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

महाबाहु राम, मैं बड़ा पराक्रमी और बली था । मेरा अचिन्तनीय रूप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था ॥ १ ॥ सूर्य चन्द्रमा और इन्द्रका जैसा रूप है, वैसा ही मेरा भी रूप था । पर लोगोंको भयभीत करनेके लिए यह राक्षसका रूप बनाकर वनमें रहनेवाले ऋषियोंको मैं डरवाता था । अनन्तर, स्थूलशिरा नामक ऋषि मुझपर अप्रसन्न हो गये ॥ २, ३ ॥ वे तरह-तरहके जंगली फल चुन रहे थे, मैंने उन्हें इस रूपसे डरवा दिया । भयानक शाप देनेवाले वे मुनि मुझे देखकर बोले ॥ ४ ॥ यही क्रूर और निन्दित रूप तुम्हारा हमेशा हो । मैंने उनसे प्रार्थना की कि महाराज, मेरे अपराधके कारण आपने जो यह शाप दिया है, इसका अन्त कीजिए । तब वे बोले कि जब तुम्हारे हाथ काटकर रामचन्द्र तुम्हें निर्जन वनमें जलावेंगे तभी तुम अपना सुन्दर रूप पाओगे । लक्ष्मण-मैं दनुका सुन्दर पुत्र हूँ ॥ ५, ६, ७ ॥ इन्द्रके शापसे युद्ध-क्षेत्रमें मैंने यह कबन्धके समान रूप पाया । मुनिके शाप देनेके पश्चात् उग्र तपस्यासे मैंने ब्रह्माको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ उन्होंने मुझे दीर्घायु बनाया, जिससे मुझे अहंकार हो गया । मैंने दीर्घायु पायी है, इन्द्र युद्धमें मेरा क्या कर सकता है ॥ ९ ॥ इस प्रकार निश्चय कर मैंने इन्द्रको युद्धके लिए ललकारा । उनके हाथसे

सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम् । स मया याच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥११॥
पितामहवचः सत्यं तदस्त्विति ममाब्रवीत् । अनाहारः कथं शक्तो भग्नसक्थिशिरोमुखः ॥१२॥
वज्रिणाभिहतः कालं सुदीर्घमपि जीवितुम् । स एवमुक्तः शक्रो मे बाहू योजनमायतौ ॥१३॥
तदा चास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् । सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् १४
सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षयामि समन्ततः । स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ॥१५॥
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि । अनेन वपुषा तात वनेऽस्मिन्राजसत्तम ॥१६॥
यद्यत्पश्यामि सर्वस्य ग्रहणं साधु रोचये । अवश्यं ग्रहणं रामो मन्येऽहं समुपैष्यति ॥१७॥
इमां बुद्धिं पुरस्कृत्य देहन्यासकृतश्रमः । स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ॥१८॥
शक्यो हन्तुं यथातत्वमेवमुक्तं महर्षिणा । अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ॥१९॥
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना। एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ॥२०॥
इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्य च पश्यतः । रावणेन हृता भार्या सीता मम यशस्विनी ॥२१॥
निष्क्रान्तस्यजनस्थानात्सह भ्रात्रायथासुखम् । नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ॥२२॥
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे । शोकार्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ॥२३॥
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारेण वर्तताम् ।काष्ठान्यानीय भग्नानिकालेशुष्काणि कुञ्जरैः॥२४॥

छूटे हुए सौ-पोरके वज्रसे मेरा मस्तक और जांघें शरीरमें घुस गयीं। मेरे प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझे मारा नहीं ॥ १०, ११ ॥ इन्द्रने कहा कि पितामहकी बात सच्ची रहे। मैंने उनसे कहा—मेरी जांघे मस्तक और मुंह आपके वज्रसे टूट गए हैं। विना खाए मैं बहुत दिनोंतक कैसे जी सकूंगा। मेरे ऐसा कहनेपर इन्द्रने एक योजन लम्बी बांह तथा पेटमें तीखे दांतवाला मुंह बना दिया। इस प्रकार वह मैं अपनी लम्बी भुजाओंसे वनचर सिंह, हाथी, मृग, बाघ आदिको चारो ओरसे खींच कर खाता हूँ। इन्द्रने मुझसे कहा कि राम और लक्ष्मण युद्धमें जब तुम्हारी बाँह काटेंगे, तब तुम स्वर्ग जाओगे। राजश्रेष्ठ, इस शरीरसे इस वनमें जो—जो चीज मैं अच्छी देखता हूं, उन्हें पकड़ लेता हूं। इसलिए कि किसी दिन रामचन्द्र भी मेरी पकड़में आ जायँगे। ऐसा निश्चय करके मैं शरीर त्याग करनेका विचार करता आया हूँ। वही तुम राम हो। तुम्हारा कल्याण हो। रामचन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे नहीं मार सकता। यह बात महर्षिने मुझसे कही है, नरश्रेष्ठ, मैं तुम लोगोंको सलाह देकर तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ ॥ जब तुम दोनों मेरा अग्निसंस्कार करोगे ? तब मैं तुम्हें मित्रताका परामर्श दूंगा। दानवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र लक्ष्मणके सामने उससे बोले—मेरी यशस्विनी स्त्री सीताको रावण हर ले गया है ॥ २०, २१ ॥ हम उस समय अपने भाईके साथ जनस्थानसे बाहर चले गये थे। उस राक्षसका मैं केवल नाम जानता हूँ। उसे देखा नहीं है ॥ २२ ॥ वह कहां रहता है, उसका कैसा प्रभाव है, यह सब कुछभी हमलोग नहीं जानते। हमलोग शोकसे पीड़ित, अनाथ, वनमें भटक रहे हैं। हमलोगोंका उपकार करके तुम उचित कृपा करो। समयपर हाथियोंके द्वारा

धक्ष्यामस्त्वां वयं वीर श्वभ्रे महति कल्पिते । स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हृता ॥२५॥
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्वतः । एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ॥२६॥
प्रोवाच कुशलो वक्ता वक्तारमपि राघवम् । दिव्यमस्तिन मेज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम् ॥२७॥
यस्तां वक्ष्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः । योऽभिजानाति तद्रक्षस्तद्वक्ष्ये राम तत्परम् ॥२८॥
अदग्धस्य हि विज्ञातुं शक्तिरस्ति न मे प्रभो । राक्षसं तु महावीर्यं सीता येन हृता तव ॥२९॥
विज्ञानं हि महद्भ्रष्टं शापदोषेण राघव । स्वकृतेन मया प्राप्तं रूपं लोकविगर्हितम् ॥३०॥
किंतु यावन्न यात्यस्तं सविता श्रान्तवाहनः । तावन्मामवटे क्षिप्त्वा दह राम यथाविधि ॥३१॥
दग्धस्त्वयाऽहमवटे न्यायेन रघुनन्दन । वक्ष्यामि तं महावीर यस्तं वेत्स्यति राक्षसम् ॥३२॥
तेन सख्यं च कर्तव्यं न्याय्यवृत्तेन राघव । कल्पयिष्यति ते वीर साहाय्यं लघुविक्रम ॥३३॥
नहि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव । सर्वान्परिवृतो लोकान्पुरा वै कारणान्तरे ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

तोड़ी गई सूखी लकड़ियाँ लाकर और बड़ा खड्डा खोदकर वीर, तुम्हें हम जला देंगे । तुम बतलाओ, सीता कहां है, उसे कौन ले गया है और कहां ले गया है ॥ २३, २४, २५ ॥ यदि तुम सीताका पता जानते हो तो हम लोगोंका अपरिसीम कल्याण करो । रामचन्द्रके ऐसा कहने पर सुवक्ता वह दानव बोलनेमें निपुण रामचन्द्रसे बोला—इस समय मुझे दिव्यज्ञान नहीं है। मुझे सीताकी बात मालूम नहीं है ॥ २६, २७ ॥ जलाये जाने पर जब मुझे अपना रूप प्राप्त होगा, तब मैं तुम लोगोंको उसका पता बताऊंगा, जिससे सीताका पता लगे । रामचन्द्र, तभी उस राक्षसको जाननेवालेका पता मैं बतला सकूंगा ॥ २८ ॥ बिना जले हुए, जाननेकी शक्ति मुझमें नहीं है । महा पराक्रमी जिस राक्षसने सीताका हरण किया है, उसको मैं नहीं जान सकता ॥ २९ ॥ शापके कारण मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है । अपने ही कारण मैंने यह लोकनिंदित रूप पाया है ॥ ३० ॥ रामचन्द्र, जब तक घोड़ोंके थक जानेसे सूर्य अस्ताचल पर न चले जाएं, तभी तक गड्ढा खोदकर विधिपूर्वक तुम मुझे जला दो ॥ ३१ ॥ तुम्हारे द्वारा विधिपूर्वक गढ़ेमें जलाये जाने पर महावीर, मैं उसका पता बतलाऊंगा, जो उस राक्षसको जानता होगा ॥ ३२ ॥ उत्तम व्यवहारसे तुम उससे मैत्री कर लेना, वह तुम्हारी सहायता करेगा ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र, तीनों लोकोंकी कोई भी बात उसे अज्ञात नहीं है । पहले एक कारणसे वह सब लोकोंमें घूम आया है ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

एवमुक्तौ तु तौ वीरौ कवन्धेन नरेश्वरौ । गिरिप्रदरमासाद्य पावकं विससर्जतुः ॥ १ ॥
लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः । चितामादीपयामास सा प्रजज्वाल सर्वतः ॥ २ ॥
तच्छरीरं कवन्धस्य घृतपिण्डोपमं महत् । मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहत पावकः ॥ ३ ॥
स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः । अरजे वाससी बिभ्रन्माल्यं दिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥
ततश्चिताया वेगेन भास्वरो विरजाम्बरः । उत्पपाताशु संहृष्टः सर्वप्रत्यङ्गभूषणः ॥ ५ ॥
विमाने भास्वरे तिष्ठन्हंसयुक्ते यशस्करे । प्रभया च महातेजा दिशो दश विराजयन् ॥ ६ ॥
सोऽन्तरिक्षगतो वाक्यं कवन्धो राममब्रवीत् । शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥
राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते । परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ॥ ८ ॥
दशाभागगतो हीनस्त्वं हि राम सलक्ष्मणः । यत्कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥
तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर । अकृत्वा नहि ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन् ॥१०॥
श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः । भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥११॥
ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते । निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥१२॥
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः । सत्यसंधो विनीतश्च धृतिमान्मतिमान्महान् ॥१३॥

कवन्धके ऐसा कहनेपर नरश्रेष्ठ वीर दोनों राम और लक्ष्मणने पर्वतके एक गढ़ेमें कवन्धको ले जा कर उसमें आग लगा दी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने जली हुई लुकारियोंसे चारो ओरसे वह चिता जलायी और वह जल उठी ॥ २ ॥ बहुत बड़े घृतपिण्डके समान कवन्धके उस शरीरको अधिक चर्बी होनेके कारण धीरे-धीरे अग्निने जलाया ॥ ३ ॥ वह कवन्ध शीघ्र ही चिताको कँपाकर धूमहीन अग्निके समान उसमें से निकला । निर्मल दो वस्त्र और दिव्य माला वह धारण किये हुए था ॥ ४ ॥ वह शीघ्रतापूर्वक चितासे निकला, वह समस्त शरीरमें गहने पहने था ॥ ५ ॥ हंसके सुंदर और यश बढ़ानेवाले रथपर वह बैठा था । वह तेजस्वी अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको सुशोभित करता था ॥ ६ ॥ वह कवन्ध आकाशमें जाकर रामचन्द्रसे बोला—राम, यथार्थ बात सुनो, जिससे तुम सीताको पासको ॥ ७ ॥ संसारमें सन्धि-विग्रह आदि छः युक्तियाँ हैं, जिनसे विचार कर राजा अपना मनोरथ पूर्ण करता है । बुरी दशा करनेवाले कालसे जब मनुष्य आक्रान्त होता है तब उसे दुर्दशा भोगनी ही पड़ती है ॥ ८ ॥ राम, उसी दुर्दशामें पड़नेके कारण तुम और लक्ष्मण दोनों हीन हो गये हो । इसके कारण स्त्रीके हरनेका कष्ट तुमको मिला है ॥ ९ ॥ अतएव. मित्रोंमें श्रेष्ठ उसको तुम अपना मित्र बनाओ, बिना उसके मित्र बनाए सोचनेपर भी मैं तुम्हारी सिद्धि नहीं देखता ॥ १० ॥ राम, सुनो कहता हूँ, सुग्रीव नामका एक वानर है । इन्द्रके पुत्र उसके भाई वालिने उसे क्रोध करके निकाल दिया है ॥ ११ ॥ पम्पाके तीरपर, ऋष्यमूक नामक पर्वतपर, वह आत्मविश्वासी वीर चार वानरोंके साथ रहता है ॥ १२ ॥ वह वानरराज बड़ा बली, तेजस्वी और अमित प्रभाववाला

दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान्महाबलपराक्रमः । भ्रात्रा विवासितो वीर राज्यहेतोर्महात्मना ॥१४॥
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे । भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः॥१५॥
भवितव्यं हि तच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा । कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः ॥१६॥
गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम् । वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव ॥१७॥
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ । न च ते सोऽवमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः॥१८॥
कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् । शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् ॥१९॥
कृतार्थो वाकृतार्थो वा तव कृत्यं करिष्यति । स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः ॥२०॥
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृतकिल्बिषः । संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम् ॥२१॥
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् । स हि स्थानानि कात्स्न्येन सर्वाणि कपिकुञ्जरः॥२२॥
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति । न तस्याविदितं लोके किंचिदस्ति हि राघव ॥२३॥
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुः परंतप । स नदीर्विपुलाञ्शैलान्गिरिदुर्गाणि कन्दरान्॥२४॥
अन्विष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति । वानरांश्च महाकायान्प्रेषयिष्यति राघव ॥२५॥
दिशो विचेतुं तां सीतां त्वद्वियोगेन शोचतीम् । अन्वेष्यति वरारोहां मैथिलीं रावणालये ॥२६॥

है । सत्यप्रतिज्ञ, विनयी, धीर और महाबुद्धिमान है ॥ १३ ॥ वह निपुण, पटु, कान्तिवान, बलवान् और पराक्रमी है । महात्मा भाईने राज्यके कारण उसे निकाल दिया है ॥ १४ ॥ वह तुम्हारा मित्र होगा और सीताको ढूँढनेमें सहायता देगा । अतएव राम, तुम अपने मनमें सोच मत करो ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकु-सिंह, भावीको कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि कालका अतिक्रमण नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ रामचन्द्र, तुम शीघ्र यहांसे महाबली सुग्रीवके पास जाओ । यहांसे शीघ्र जाकर आज ही उसे अपना मित्र बनाओ ॥ १७ ॥ तुम दोनों मिलकर परस्पर द्रोह न करनेके लिए अग्नि जलाकर प्रतिज्ञा करना । तुम वानरराज सुग्रीवका कभी तिरस्कार न करना ॥ १८ ॥ वह कृतज्ञ है, इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है, पराक्रमी है, स्वयं सहायता चाहता है । जो वह चाहता है, उसको शीघ्र करनेकी शक्ति तुम दोनोंमें है ॥ १९ ॥ तुम लोग उसका मनोरथ पूरा करो । वह तुम्हारा काम करेगा । वह ऋक्षरजा (सुग्रीवकी माता का नाम) का पुत्र है और शंकित होकर पम्पाके पास घूमता है ॥ २० ॥ सूर्यसे वह उत्पन्न हुआ है । बालिसे उसका विरोध हो गया है । ऋष्यमूकपर रहनेवाले वानरसे शस्त्रोंके सामने सत्यकी शपथ लेकर तुम मित्रता करो । वह कपिश्रेष्ठ मांस खानेवाले राक्षसोंके सब स्थानोंको अच्छी तरह जानता है । यहां ऐसी कोई भी स्थान नहीं है जिसे वह न जाने ॥ २१, २२, २३ ॥ परन्तप, जहाँ तक सूर्यका प्रकाश फैलता है वहां तक नदियों, विशाल पर्वतों, पर्वतकी गुफाओं और खोहोंको वानरोंसे ढूँढवाकर वह तुम्हारी स्त्रीका पता लगा देगा । विशाल शरीरवाले वानरोंको भी वह तुम्हारे वियोगमें शोक करती हुई सीताको ढूँढनेके लिए दिशाओंमें भेजेगा ।

स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दितां प्रविश्य पातालतलेऽपि वाश्रिताम् ।
प्लवङ्गमानामृषभस्तव प्रियां निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः परिमार्गणे । वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥
एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः । प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः ॥ २ ॥
जम्बूप्रियालपनसा न्यग्रोधप्लक्षतिन्दुकाः । अश्वत्थाःकर्णिकाराश्च चूताश्चान्येचपादपाः॥ ३ ॥
धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्तमालकाः । नीलाशोकाःकदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः॥ ४ ॥
अग्निमुख्या अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान्बलात् ॥ ५ ॥
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयित्वा गमिष्यथः । तदतिक्रम्य काकुत्स्थ वनं पुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥
नन्दनप्रतिमं त्वन्यत्कुरवस्तूत्तरा इव । सर्वकालफला यत्र पादपा मधुरस्रवाः ॥ ७ ॥
सर्वे च ऋतवस्तत्र वने चैत्ररथे यथा । फलभारनतास्तत्र महाविटपधारिणः ॥ ८ ॥
शोभन्ते सर्वतस्तत्र मेघपर्वतसंनिभाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वाथवा सुखम् ॥ ९ ॥

रावणके घरमें भी वह सीता ढुँढवावेगा ॥ २४, २५, २६ ॥ तुम्हारी प्रिया, मेरु पर्वत के शिखरपर गयी हो अथवा पातालमें गयी हो, वानरोंका राजा सुग्रीव राक्षसोंको मारकर उसे तुम्हारे पास ला देगा ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

सीताके ढूँढनेका उपाय बतलाकर अर्थका ज्ञान रखनेवाला कबन्ध प्रयोजनयुक्त वचन पुनः बोला ॥ १ ॥ राम, पश्चिमकी ओर, जहाँ पुष्पित और मनोरम ये वृक्ष दिखायी पड़ते हैं, यही उत्तम मार्ग है ॥२॥ जामुन, पियाल, कटहल, बड़, पाकड़, तिन्दुक, पीपल, कर्णिकार, आम तथा धन्वन,नागवृक्ष, तिलक, नक्तमाल, नीलाशम्, कदम्ब, करवीर, अग्निमुख, अशोक, रक्तचन्दन, पारिभद्र आदि पुष्पित वृक्षोंपर चढ़कर अथवा बलसे उन्हींको नवाकर अमृतके समान उनके फल खाकर तुम लोग जाना । इसके लांघ जानेके बाद एकदम फूलाहुआ वन तुमलोगोंको मिलेगा ।। ३, ४, ५, ६ ।। वह नन्दनवनके समान है । सब काल फलनेवाले मीठे रसवाले वृक्ष वहां हैं, जैसे उत्तर कुरुमें ।। ७ ।। सब ऋतु उस वनमें वर्तमान रहती हैं, जिस प्रकार चैत्ररथ वन में । लम्बीशाखावाले वृक्ष फलके भारसे नये रहते हैं ।। ७ ।। मेघ और पर्वतके समान वे वृक्ष हैं, उनपर चढ़कर अथवा उनको नवाकर अमृतके समान फल तुमको लक्ष्मण देगा । वहां-से चलतेहुए एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर, वहांसे तीसरे पर्वतपर, इसी प्रकार एक वनसे

फलान्यमृतकल्पानि लक्ष्मणस्ते प्रदास्यति । चङ्क्रमन्तौवराञ्शैलाञ्शैलाच्छैलंवनाद्वनम्॥१०॥
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथ । अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थामशैवलाम् ॥११॥
राम संजातवालूकां कमलोत्पलशोभिताम् । तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव ॥१२॥
वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः । नोद्विजन्ते नरान्दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः पुरा ॥१३॥
घृतपिण्डोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ । रोहितांश्चक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव ॥१४॥
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान् । निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान् ॥१५॥
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति । भृशं तान्खादतो मत्स्यान्पम्पायाः पुष्पसंचये॥१६॥
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम् । उद्धृत्य स तदा क्लिष्टं रूप्यस्फटिकसंनिभम्॥१७॥
अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति । स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥१८॥
सायाह्ने विचरन्राम दर्शयिष्यति लक्ष्मणः । अपां लोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नर्दतः ॥१९॥
स्थूलान्पीतांश्च पम्पायां द्रक्ष्यसि त्वं नरोत्तम । सायान्हे विचरन्राम विटपी माल्यधारिणः ॥२०॥
शिवोदकं च पम्पायां दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि । सुमनोभिश्चितास्तत्र तिलका नक्तमालकाः ॥२१॥
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव । न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः ॥२२॥
न च वै म्लानतां यान्ति न च शीर्यन्ति राघव । मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहिताः ॥२३॥

दूसरे वनमें, इस प्रकार चलते हुए तुमलोग पम्पा नामक तालावपर पहुंचोगे । वहां कंकड़ नहीं है, वहाँकी जगह टूटी-फूटी नहीं है, घाट वरावर है और उस तालावमें सेवार नहीं है ॥ ९, १०, ११ ॥ उस तालावके तीरपर बालू है और रक्तकमल तथा नीलकमलसे वह सुशोभित है । हंस, मेढ़क क्रौञ्च, कुरक आदि पम्पासलिलमें रहनेवाले वड़े मधुर स्वरमें बोलते हैं । आदमियोंको देखकर वे डरते नहीं, क्योंकि मारेजानेकी बात उन्हें मालुम नहीं ॥ १२, १३ ॥ घृतपिण्डके समान मोटे उन पक्षियोंको खाना । रोहित, चक्रतुण्ड, जलमीन आदि पम्पाकी उत्तम मछलियोंको वाणसे मारकर उनके ऊपरकी त्वचा, पांख निकालकर आगमें तपाकर उनके कांटे निकाल कर, लक्ष्मण तुम्हारी भक्तिके कारण, तुमको देगा । तुम उन मछलियों-को खूब खाना । पम्पाके पुष्प समूहमें वर्तमान पद्मके समान गन्धवाला, उज्ज्वल जल सुखकर, ठंढा, रोग दूर करनेवाला, चांदी और स्फटिकके समान स्वच्छ, जलकमलके पत्तेसे निकाल कर लक्ष्मण तुमको पिलावेगा । पर्वतकी कन्दराओंमें रहनेवाले, वनमें विचरण करनेवाले, मोटे वानरोंको सायंकाल घूमनेके समय, लक्ष्मण तुमको दिखलावेगा । वे जलके लोभसे आवेंगे और साँड़ोंके समान गर्जेंगे । वे पीले और मोटे होंगे, नरश्रेष्ठ, उनको तुम पम्पातीरपर देखोगे । सायंकालमें घूमते हुए फूलोंवाले वृक्ष देखोगे ॥ १४, १५, १६, १७, १८, १९, २० ॥ पम्पाका स्वच्छ जल देखकर तुम अपना शोक भूल जाओगे । पुष्पोंसे युक्त तिलक और नक्तमाल वृक्ष, फूले हुए नीलकमल तथा अन्य प्रकारके कमल पम्पामें हैं । इन पुष्पोंको एकत्र करके रखनेवाला मनुष्य वहां नहीं है ॥ २१, २२ ॥ वे पुष्प न तो मुर्झाते हैं और न विखरते हैं । (कारण सुनिए) मतंगके शिष्य

तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः। ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदबिन्दवः ॥२४॥
तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा। स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥२५॥
तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी। श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥२६॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम्। दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति॥२७॥
ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम्। आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥२८॥
न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तदाश्रमे। ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ॥२९॥
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन। तस्मिन्नन्दनसंकाशे देवारण्योपमे वने ॥३०॥
नानाविहगसंकीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः। ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥३१॥
सुदुःखारोहणश्चैव शिशुनागाभिरक्षितः। उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकालेऽभिनिर्मितः ॥३२॥
शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि। यः स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ॥३३॥
यस्त्वेनं विषमाचारः पापकर्माऽधिरोहति। तत्रैव प्रहरन्त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः ॥३४॥
ततोऽपि शिशुनागानामाक्रन्दः श्रूयते महान्। क्रीडतां राम पम्पायां मतङ्गाश्रमवासिनाम् ॥३५॥
सक्ता रुधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः। प्रचरन्ति पृथक्कीर्णा मेघवर्णास्तरस्विनः ॥३६॥
ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं चारु शोभनम्। अत्यन्तसुखसंस्पर्शं सर्वगन्धसमन्वितम् ॥३७॥

ऋषि वहां सावधान होकर रहते थे। गुरुके लिए जंगली वस्तुओंको ले आनेके समय उनके भारसे वे गरमा जाते थे; जिससे उनके शरीरसे पसीनेके बिन्दु गिरे॥ २३, २४॥ मुनियोंकी तपस्याके कारण वे बिन्दु माला हो गए। इसी कारण वे नष्ट नहीं होते। वे ऋषि तो चले गये, पर उनकी सेवा करनेवाली, शबरी नामकी संन्यासिनी, जो दीर्घजीविनी है, आज भी वहां है॥ २६॥ धर्माचरण करनेवाली शबरी सब प्राणियोंके द्वारा नमस्कृत देवतुल्य तुमको देखकर आज स्वर्गलोकमें जायगी॥ २७॥ रामचन्द्र, पुनः पम्पाके तीरसे पश्चिमकी ओर बहुतही सुन्दर और गुप्त आश्रम तुम देखोगे॥ २८॥ हाथी उस आश्रम पर आक्रमण नहीं कर सकते। उस आश्रमके पास जो वन है, वह मतंग ऋषिका बनाया है; अतएव मतंग वनके नामसे वह प्रसिद्ध है। नन्दनवनके समान तथा देवताओंके वनके समान अनेक पक्षियोंसे भरे हुए उस वनमें प्रसन्न होकर तुम रमण करना। पुष्पवाले वृक्षोंसे युक्त ऋष्यमूक पम्पाके आगे है॥२९,३०,३१॥ बड़े दुखसे उसपर चढ़ा जा सकता है। छोटे-छोटे सांप उसकी रक्षा करते हैं। बहुत बड़ा है। बहुत पहले ब्रह्माने उसे बनाया था॥ ३२॥ उस पर्वतके शिखरपर सोया हुआ मनुष्य स्वप्नमें जो धन पानेका स्वप्न देखता है जागने पर उसे वह धन मिलता है॥३३॥ जो दुराचारी पापी इस पर्वतपर चढ़ते हैं उनको सोनेके समय राक्षस लोग मारते हैं॥ ३४॥ रामचन्द्र, मतंगाश्रममें रहनेवाले, पम्पासरमें क्रीड़ा करनेवाले, छोटे-छोटे हाथियोंकी विशाल कलरवध्वनि वहींसे सुन पड़ती है॥ ३५॥ लाल मदके प्रवाहसे युक्त जो बड़े-बड़े हाथी हैं वे अपनी जातिके हाथियोंसे मिलकर तथा विजातियोंसे हटकर चलते हैं, वे मेघके समान काले, तेज चलनेवाले हाथी, निर्मल उत्तम सब गन्धोंसे युक्त, छूनेमें अत्यन्त सुखकर, पम्पाका जल पीकर

निवृत्ताः संविगाहन्ते वनानि वनगोचराः । ऋक्षांश्च द्वीपिनश्चैव नीलकोमलकप्रभान् ॥३८॥
रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वा शोकं प्रहास्यसि । राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ॥३९॥
शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याः प्रवेशनम्। तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्शीतोदको ह्रदः ॥४०॥
बहुमूलफलो रम्यो नानानगसमाकुलः । तस्यां वसति धर्मात्मा सुग्रीवः सह वानरैः ॥४१॥
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यापि तिष्ठति । कवन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥
स्रग्वी भास्करवर्णाभः खेऽव्यरोचत वीर्यवान् । तं तु खस्थं महाभागं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥४३॥
प्रस्थितौ त्वं व्रजस्वेति वाक्यमूचतुरन्तिके । गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीत्स च ॥४४॥
सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कवन्धः प्रस्थितस्तदा ॥४५॥

स तत्कबन्धः प्रतिपद्य रूपं वृतः श्रिया भास्वरसर्वदेहः ।
निदर्शयन्राममवेक्ष्य खस्थः सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने । आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥ १ ॥
तौ शैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् । वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥

प्रसन्नतापूर्वक वनमें चले जाते हैं। नीलमणिके समान कोमल प्रभावाले भालुओं और बाघों-को, शश नामके मृगोंको—जिन्हें पराजय होनेका सन्देह नहीं है—देखकर तुम अपना शोक भूल जाओगे। राम, उस पर्वतकी गुफा बहुत बड़ी है ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ उसका द्वार पत्थरसे ढका हुआ है, बड़े कष्टसे उसमें प्रवेश किया जा सकता है। उस गुहाके पूर्वके द्वारपर बहुत बड़ा ठंढे जलका तालाव है ॥ ४० ॥ वहां बहुत फल-मूल होता है, अनेक पर्वतोंसे वह स्थान भरा हुआ है, बड़ाही रमणीय है, धर्मात्मा सुग्रीव वानरोंके साथ वहीं रहते हैं ॥ ४१ ॥ कभी-कभी पर्वतके शिखरपर भी रहते हैं। उन दोनों राम लक्ष्मणको इस प्रकार बतलाकर सूर्यके समान प्रकाशमान मालाधारी और पराक्रमी कबन्ध आकाशमें सुशोभित हुआ। उस महाभाग कबन्धको आकाशमें देखकर राम लक्ष्मण 'तुम जाओ' ऐसा कबन्धके पास आकर बोले और स्वयं प्रस्थित हुए। कार्य-सिद्धि-के लिए तुमलोग जाओ—ऐसा कबन्धने भी इन दोनोंसे कहा ॥ ४२, ४३, ४४ ॥ प्रसन्न राम और लक्ष्मणसे आज्ञा लेकर कबन्ध भी प्रस्थित हुआ ॥ ४५ ॥ अपना रूप पानेसे कबन्धका समस्त शरीर शोभासे दीप्तिमान होगया, वह आकाशमें स्थित होकर रामचन्द्रको बतलाता हुआ 'मैत्री करो' ऐसा बोला ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

वे दोनों कबन्धके बतलाए मार्गमें पम्पा जानेके लिए पश्चिम दिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ वे दोनों राम और लक्ष्मण पर्वतोंके अनेक वृक्षोंको, जिनमें मधु पुष्प और फल थे, देखते हुए सुग्रीवको

कृत्वा तु शैलपृष्ठे तु तौ वासं रघुनन्दनौ । पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥
तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्। अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् । सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥
तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः । पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ६ ॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि । तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः । कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ॥ ८ ॥
कच्चित्ते नियमाःप्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् । कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥ ९ ॥
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता । शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥१०॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया । अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥११॥
अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति । त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥१२॥
तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद । गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥१३॥
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः । इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥१४॥
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः । आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः । तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥१६॥

देखनेके लिए चले ॥ २ ॥ पर्वतपर निवास करके वे दोनों रघुवंशी पम्पाके पश्चिम तीरपर पहुँचे ॥३॥ पम्पा सरोवरके पश्चिम तीरपर जाकर उनलोगोंने शबरीका सुन्दर आश्रम देखा ॥ ४ ॥ अनेक वृक्षोंसे घिरे हुए उस आश्रमपर जाकर तथा वहांकी शोभा देखकर वे दोनों शबरीसे मिले ॥ ५ ॥ सिद्धा शबरी उन दोनोंको देखकर हाथ जोड़कर खड़ी होगयी, उसने रामचन्द्रके चरण छुए और बुद्धिमान लक्ष्मणके भी ॥ ६ ॥ पाद्य, आचमनीय आदि सब विधि-पूर्वक उसने दिए । धर्माचरण करनेवाली शबरीसे रामचन्द्र बोले ॥ ७ ॥ क्या तुम्हारे सब विघ्न दूर होगये ? तुम्हारा तप तो बढ़ रहा है ? तुम्हारा क्रोध और आहार तो नियमित है ? ॥८॥ क्या तुम जिन नियमोंका पालन करती हो वे सफल हैं ? तुम्हारे मनमें शान्ति तो है ? हे सुन्दर बोलने वाली, तुम्हारी गुरुसेवा तो सफल है ? ॥ ९ ॥ सिद्धोंके द्वारा सम्मानित, सिद्धा तपस्विनी वूढ़ी शबरीने, रामचन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर, रामचन्द्रसे उनके सामने वैठकर सब कहा ॥ १० ॥ आज तुम्हारे दर्शनसे मैंने तपस्याकी सिद्धी पायी । आज मेरा जन्म सुफल हुआ और गुरुओंकी पूजा सफल हुई ॥ ११ ॥ आज मेरी तपस्या सफल हुई, देवश्रेष्ठ, तुम्हारी पूजा करनेसे मुझे स्वर्ग प्राप्त हो ॥ १२ ॥ सौम्य, तुम्हारी सौम्य आंखोंको देखनेसे आज मैं पवित्र हुई । तुम्हारे प्रसादसे अक्षय लोकोंमें म जाऊँगी ॥ १३ ॥ जिन ऋषियोंकी मैं सेवा करती थी वे ऋषि, तुम्हारे चित्रकूटमें आनेपर, अत्यन्त प्रकाशमान विमानोंपर चढ़कर यहांसे स्वर्ग चले गये ॥ १४ ॥ धर्म जाननेवाले, महाभाग उन महर्षियोंने मुझसे कहा था कि रामचन्द्र तुम्हारे इस पवित्र आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ लक्ष्मणके साथ उनका तुम अतिथि-सत्कार करना, उनके दर्शनसे तुम

एवमुक्ता महाभागैस्तदाहं पुरुषर्षभ। मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ॥१७॥
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम्। एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ॥१८॥
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम्। दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनाम् ॥१९॥
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि संद्रष्टुं यदि मन्यसे। एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्राविनिःसृतम् ॥२०॥
शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत्। पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम्।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥२१॥
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते। जुहवाञ्चक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥२२॥
इयं प्रत्यक्स्थली वेदी यत्र ते मे सुसत्कृताः। पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ॥२३॥
तेषां तपःप्रभावेण पश्याद्यापि रघूत्तम। द्योतयन्ती दिशः सर्वाः श्रिया वेद्यतुलप्रभा ॥२४॥
अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः। चिन्तितेनागतान्पश्य समेतान्सप्त सागरान् ॥२५॥
कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह। अद्यापि न विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ॥२६॥
देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानी कृतानि वै। पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्वं न तु यान्ति वै ॥२७॥
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया। तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥२८॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्। मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥२९॥

अक्षय लोकोंमें जाओगी ॥ १६ ॥ उन महाभागोंने मुझसे ऐसाही कहा था। पुरुषश्रेष्ठ, मैंने अनेक प्रकारके जंगली फल संचित कर रखे हैं ॥ १७ ॥ पम्पा तीरपर उत्पन्न होनेवाले वे फल मैंने आपके लिए एकत्र किये हैं। शबरीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र उससे इस प्रकार बोले—उन्होंने कहा—तुम अतीत अनागत ज्ञान रखनेवाली हो, मैंने तुम्हारे आचार्य महात्माओंका प्रभाव दनुसे सुना है। १८, १९ ॥ उसको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। यदि तुम स्वीकार करो। रामके मुँहसे निकले इस वचनको सुनकर शबरीने उन लोगोंको वह विशाल वन दिखाया। सघन मेघके समान पशुपक्षियोंसे युक्त वह वन देखो ॥२०, २१॥ मतंग वनके नामसे वह प्रसिद्ध है। महामुनि, आत्मतत्त्व जाननेवाले मेरे गुरुओंने यहां मंत्रज्ञोंके मंत्रसे अभिमंत्रित यज्ञमें हवन किया था ॥ २२ ॥ प्रत्यक्स्थली नामकी वेदी है। जिसपर मेरे पूज्य आचार्योंने थकावटके प्रभावसे कांपनेवाले हाथोंसे देवताओंको पुष्पोपहार दिया था ॥ २३ ॥ उनकी तपस्याके प्रभावसे अपनी शोभासे आज भी अतुलनीय प्रभावाली यह वेदी सब दिशाओंको प्रकाशित करती है ॥२४॥ उपवासके कारण दुर्बल अतएव जानेमें असमर्थ उनलोगोंके ध्यानमात्रसे आए हुए इन सात समुद्रोंको देखो ॥ २५ ॥ रघुनन्दन, इस समुद्रोंके प्रदेशमें स्नान करके भींगे वल्कल, वृक्षोंपर जो हमारे गुरुओंने रखे हैं वे, आजतक भी नहीं सूखे ॥ २६ ॥ देवताओंकी पूजा करते हुए मेरे आचार्योंने कमलोंके साथ जो इन पुष्पोंको रखा है वे आज भी मलिन नहीं हुए हैं ॥ २७ ॥ यह समूचा वन मैंने आपको दिखाया और जो सुनाना था वह सुनाया. आपकी आज्ञासे अपने इस शरीरका त्याग करना चाहती हूँ ॥ २८ ॥ मैं उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके पास

धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः। प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत् ॥३०॥
तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम्। अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम् ॥३१॥
इत्येवमुक्ता जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा। अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ॥३२॥
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह। दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ॥३३॥
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना। विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ॥३४॥
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः। तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥ १ ॥
चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम्। हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥
दृष्टोमयाऽऽश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम्। विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥ ३ ॥
सप्तानां च समुद्राणां तेषां तीर्थेषु लक्ष्मण। उपस्पृष्टं च विधिवत्पितरश्चापि तर्पिताः ॥ ४ ॥
प्रनष्टमशुभं यत्नः कल्याणं समुपस्थितम्। तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ॥ ५ ॥

जाना चाहती हूँ, जिनका यह आश्रम है और जिनकी मैं दासी हूँ ॥ २९ ॥ शबरीके धर्मयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने कहा कि आश्चर्य है! ॥३०॥ कठोर व्रत करनेवाली शबरीसे रामचन्द्र बोले—भद्रे, तुमने मेरी पूजा की, अब अपनी इच्छाके अनुसार सुखपूर्वक जाओ ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर जटा धारण करनेवाली, चीर और कृष्ण मृगचर्म पहननेवाली शबरीने रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर अग्निमें अपनेको हवन कर दिया ॥ ३२ ॥ जलते हुए अग्निके समान वह शबरी दिव्य आभरण, दिव्य माल्य और अनुलेपनसे युक्त स्वर्गको गयी ॥ ३३ ॥ दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली, देखनेमें प्रिय शबरीने उस स्थानको सुशोभित किया, जिस प्रकार बिजलीसे कोई स्थान प्रकाशित होता है ॥ ३४ ॥ पुण्यात्मा वे महर्षि जिस लोकमें विहार करते हैं, उस पुण्यलोकमें अपने चित्तको एकाग्र कर शबरी गयी ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७४॥

अपने प्रभावसे शबरीके स्वर्ग जानेपर भाई लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र विचार करने लगे ॥ १ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र उन महात्माओंके प्रभावका विचार कर हितकारी तथा निश्चल लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले ॥ २ ॥ सौम्य, ब्रह्मज्ञानी उन महर्षियोंके आश्रम मैंने देखे। बड़ेही आश्चर्यमय हैं। वहाँके मृग और बाघ निर्भय हैं। अनेक प्रकारके पक्षी हैं ॥ ३ ॥ सात समुद्रोंके उन तीर्थोंके जलका मैंने मार्जन किया। पितरोंका तर्पण किया ॥४॥ जो हम लोगोंका अशुभ था वह नष्ट हुआ, अब कल्याणका समय आया, इसीसे लक्ष्मण, इस समय मेरा मन प्रसन्न मालूम होता

हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति । तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते । यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोंऽशुमतः सुतः ॥ ७ ॥
नित्यं वालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः । अहं त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥ ८ ॥
तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमार्गणम् । इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः । आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः ॥१०॥
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः । समीक्षमाणः पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् ॥११॥
कोयष्टिभिश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीचकैः । एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्नादितं तद्वनं महत् ॥१२॥
स रामो विविधान्वृक्षान्सरांसि विविधानि च । पश्यन्कामाभिसंतप्तो जगाम परमं ह्रदम् ॥१३॥
स तामासाद्य वै रामो दूरात्पानीयवाहिनीम् । मतङ्गसरसं नाम ह्रदं समवगाहत ॥१४॥
तत्रजग्मतुरव्यग्रौ राघवौ हि समाहितौ । स तु शोकसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ॥१५॥
विवेश नलिनीं रम्यां पङ्कजैश्च समावृताम् । तिलकाशोकपुंनागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥१६॥
रम्योपवनसंबाधां रम्यसंपीडितोदकाम् । स्फटिकोपमतोयां तां श्लक्ष्णवालुकसंतताम् ॥१७॥
मत्स्यकच्छपसंबाधां तीरस्थद्रुमशोभिताम् । सखीभिरिव संयुक्तां लताभिरनुवेष्टिताम् ॥१८॥
किंनरोरगगन्धर्वयक्षराक्षससेविताम् । नानाद्रुमलताकीर्णां शीतवारिनिधिं शुभाम् ॥१९॥

है ॥ ५ ॥ मेरे हृदयमें कोई अच्छी बात उत्पन्न होगी, इसलिए आओ, हम लोग देखनेमें सुन्दर पम्पा सरोवरपर चलें ॥ ६ ॥ जिसके पास ही ऋष्यमूक नामका पर्वत है, जिसमें सूर्यका पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव रहता है ।। ७ ॥ वालिके भयसे सदा डरा हुआ वह चार बानरोंके साथ रहता है। वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको देखनेके लिए मुझे शीघ्रता है ॥ ८ ॥ क्योंकि सीताके ढूँढ़नेका हमारा काम उन्हींके अधीन है । ऐसा कहते हुए रामचन्द्रसे लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥ ९ ।। शीघ्रही हम लोग चलें । मेरा मन भी शीघ्रता करनेके लिए कह रहा है। राजा रामचन्द्र उस आश्रमसे निकल कर लक्ष्मणके साथ पुष्पपूर्ण अनेक वृक्षोंको देखते हुए पम्पा तीरपर आये ॥ १०, ११ ॥ टिट्टिभ, मयूर, शतपत्र, शुक तथा अन्य पक्षियोंसे वह विशाल वन विनादित हो रहा था ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारके वृक्षों, अनेक प्रकारके तालावोंको देखते हुए उस बड़े तालावपर गये ॥ १३ ॥ दूरसे ही पीनेकेयोग्य जल धारण करनेवाले पम्पा सरोवरके पास पहुंचकर दसरथपुत्र रामचन्द्रने मतंगसर नामक (पम्पाका हीं एक प्रदेश) तालावमें स्नान किया ॥१४॥ राम और लक्ष्मण दोनों सावधान और निर्भय होकर वहाँ गये। दसरथपुत्र रामचन्द्र वहाँ शोक-पीड़ित हुए ॥ १५ ॥ कमलोंसे भरे तालावमें उन्होंने प्रवेश किया । तिलक, अशोक, पुन्नाग, बकुल, उद्दालक आदि वृक्षों-से वह स्थान सुशोभित था ॥ १६ ॥ वहाँ अनेक रमणीय उपवन थे । जहाँ रमणीय जल पकड़ था और वह जल स्फटिकके समान निर्मल था। चिकनी वालू बहुत दूरतक फैली हुई थी ॥१७॥ मछलियाँ और कछुए खूब थे। तीरके वृक्षोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी । सखियोंके समान तीरकी लताओंसे वह युक्त था ॥ १८ ॥ किन्नर, सर्प, गंधर्व, यक्ष, राक्षस वहाँ रहते थे। अनेक प्रकारके वृक्ष और लताएँ वहाँ बहुत थीं। स्वच्छ और शीतल जलका वह समुद्र था ॥ १९ ॥ रक्त-

पद्मसौगन्धकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः। नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥२०॥
अरविन्दोत्पलवतीं पद्मसौगन्धिकायुताम्। पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥२१॥
स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह। विललाप च तेजस्वी रामो दशरथात्मजः ॥२२॥
तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा। पुष्पितैः करवीरैश्च पुन्नागैश्च सुपुष्पितैः ॥२३॥
मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा। अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः ॥२४॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदेवोपशोभिताम्। अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः ॥२५॥
ऋष्यमूक इति ख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः। हरिर्ऋक्षरजोनाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः ॥२६॥
अध्यास्ते तु महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः। सुग्रीवमभिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ ॥२७॥
इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमः। कथं मया विना सीतां शक्यं लक्ष्मण जीवितुम् ॥२८॥

इत्येवमुक्त्वा मदनाभिपीडितः स लक्ष्मणं वाक्यमनन्यचेतनः।
विवेश पम्पां नलिनीमनोरमां तमुत्तमं शोकमुदीरयाणः ॥२९॥
क्रमेण गत्वा प्रविलोकयद्वनं ददर्श पम्पां शुभदर्शकाननाम्।
अनेकनानाविधपक्षिसंकुलां विवेश रामः सह लक्ष्मणेन ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

कमलोंसे वह लाल था, श्वेत कमलोंसे श्वेत और नील कमलोंसे नील, इस प्रकार हाथी-झूलके समान वह अनेक वर्णोंका हो गया था ॥ २० ॥ लाल कमल और नील कमल वहाँ विकसित थे, आमका वन फूला हुआ था, मयूर बोल रहे थे ॥ २१ ॥ दसरथ-पुत्र तेजस्वी रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ उस पम्पासरको देखकर विलाप करने लगे ॥२२॥ तिलक, बीजपूर, वट, शुक्लद्रुम, फूले हुए करवीर और पुन्नाग, मालती, कुन्द, भन्डीर, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतक, अतिमुक्तक तथा अन्य अनेक वृक्षोंसे वह पम्पा स्त्रीके समान सुशोभित थी। उसे देखकर रामचन्द्र विलाप करने लगे इस पम्पाके तीरपर वह पूर्वकथित धातुओंसे-सुशोभित पर्वत है ॥२३, २४, २५॥ ऋष्यमूक नामसे वह प्रसिद्ध है, जहाँके वृक्षोंमें अनेक प्रकारके फूल लगे हुए हैं। ऋक्षरजाका पुत्र सुग्रीव नामसे प्रसिद्ध महाबली वानर वहाँ रहता है। लक्ष्मण, तुम वानरराज सुग्रीवके पास जाओ ॥ २६, २७ ॥ लक्ष्मण, सीताके विना मैं कैसे जी सकूँगा, यह वाक्य सत्यपराक्रम रामचन्द्रने लक्ष्मणसे पुनः कहा ॥ २८ ॥ सीतागत-चित्त, काम-पीड़ित रामचन्द्रने लक्ष्मणसे ऐसा कहकर शोक और विषाद-युक्त होकर कमलवनसे युक्त पम्पा सरोवरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ क्रमसे वनको देखते हुए दर्शनीय वनवाली पम्पाको उन्होंने देखा, जहाँ अनेक प्रकारके बहुतसे पक्षी थे। लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने उसमें प्रवेश किया ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७५॥

अरण्यकाण्ड समाप्त।

सस्ती साहित्य-पुस्तकमालाद्वारा

प्रकाशित पुस्तकें

बंकिम-ग्रन्थावली—प्रथम खंड—बंकिमबाबूके आनन्दमठ, लोकरहस्य तथा देवी-चौधरानीका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५१२। मूल्य १)। पुनः छपने पर मिलेगी

गोरा—जगद्विख्यात् रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत गोरा नामक पुस्तकका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ६८८। मूल्य १।-)॥, सजिल्द १॥≈)। दुबारा छपने पर मिलेगी।

बंकिम-ग्रन्थावली—द्वितीय खंड—बंकिमबाबूके सीताराम और दुर्गेशनन्दिनीका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १≈)।

बंकिम-ग्रन्थावली—तृतीय खंड—बंकिमबाबूके कृष्णकान्तेर विल, कपाल-कुण्डला और रजनीका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मू० ॥।-)॥ सजिल्द १≈)।

चण्डीचरण-ग्रन्थावली—प्रथम खंड-अर्थात् टामकाकाकी कुटिया (Uncle Tom's Cabin) का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५६२। मूल्य १=)॥, सजिल्द १।)।

चण्डीचरण-ग्रन्थावली—दूसरा खंड—स्व० चण्डीचरणसेनके दीवान गंगा-गोविन्दसिंहका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या २६०। मूल्य ॥)।

वाल्मीकीय रामायण—बालकांड—पृष्ठ-संख्या साधारण साइजके ३८४ मूल्य ॥।)

वाल्मीकीय रामायण—अयोध्याकांड-पृष्ठ-संख्या साधारण साइजके ७६८ मूल्य १॥)

वाल्मीकीय रामायण—अरण्यकांड-पृष्ठ-संख्या साधारण साइजके ४१६ मूल्य ॥।-)

कुल पृष्ठ-संख्या २०२+२+४=२०८=
साधारण साइज़के ४१६ पृष्ठ

साहित्य-सेवा-सदन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

विहारी-सतसई सटीक

(७०० सातो सौ दोहोंकी पूरी टीका)

[टीका० लाला भगवानदीन]

हिन्दी-संसारमें शृंगाररसकी इसके जोड़की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षोंमें ही इस ग्रन्थपर ४०-५० टीकाएँ बन चुकी हैं। किन्तु उनमें प्रायः सभी प्राचीन ढंगकी हैं, जो समझ में ज़रा कम आती हैं। उसी कठिनाईको दूर करनेके लिए कविवर लाला भगवानदीनजी, प्रो० हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी, ने अर्वाचीन ढंगकी नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी, इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नामसे ही कर लें। इसमें विहारीके प्रत्येक दोहेके नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचननिरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातोंका समावेश किया गया है। जगह-जगह पर सूचनाएँ दी गयी हैं। मतलब यह कि सभी ज़रूरी बातें इस टीकामें आ गयी हैं। दूसरे परिवर्द्धित तथा संशोधित संस्करणका मूल्य १।=)। बढ़िया कागज़ सचित्रका मूल्य १॥।)।

'सरस्वती', 'सौरभ', 'शारदा' 'विद्यार्थी' आदि पत्रिकाओं तथा बड़े-बड़े विद्वानोंने इस पुस्तककी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

[लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद 'प्रीतम']

इस पुस्तकके परिचयमें हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-सम्बंधिनी पौराणिक कथाओंका एक खासा दर्पण है। घटना-क्रम, वर्णन शैली तथा विषय-प्रतिपादनमें लेखकने कमाल किया है। तिसपर भी विशेषता यह है कि कविताकी भाषा इतनी सरल है कि एक बार आद्योपान्त पढ़नेसे सभी घटनाएँ हृदय-पटलपर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञोंके लिए स्थान-स्थानपर अलङ्कारोंकी छटाकी भी कमी नहीं है। मूल्य केवल ।-)। ऐंटीक कागज़के सचित्र संस्करणका ।=)।

महात्मा नन्ददासजी कृत

भ्रमरगीत

[संपादक बाबू व्रजरत्नदास]

अष्टछापके कवियोंमें महात्मा सूरदास तथा नन्ददासजीका बड़ा नाम है। इन दोनोंकी ही कविताएँ भक्ति-ज्ञानकी भंडार हैं, प्रेम रसकी सजीव प्रतिमा हैं। इस पुस्तिकामें कृष्णके अपने सखा उद्धव द्वारा गोपियोंके पास भेजेहुए संदेशका तथा गोपियों द्वारा उद्धवसे कहे गये कृष्णप्रति उपालंभका सजीव वर्णन है। निर्गुण और सगुण ब्रह्मकी उपासनामें भेद, विशिष्टाद्वैतकी पुष्टि आदि वेदान्तिक बातोंका निरूपण है। गोपियोंके प्रेम पराकाष्ठाका दिग्दर्शन है। इसका पाठ कितनी ही हस्तलिखित

प्रतियोंसे मिलाकर संशोधित किया गया है। फुटनोट में कठिन शब्दोंके सरलार्थ दिये गये हैं। हिन्दू विश्वविद्यालयकी 'इन्टरमीडिएट' परीक्षामें पाठ्य ग्रन्थ भी था। मूल्य ॥)।

केशव-कौमुदी

(रामचन्द्रिका सटीक)

हिन्दीके महाकवि आचार्य केशवकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक रामचन्द्रिकाके नामसे शायद ही कोई हिन्दी-प्रेमी अपरिचित हो। केशवकी यह पुस्तक जितनी ही उत्तम तथा उपयोगी है, उतनी ही कठिन भी है। अर्थ-कठिनतामें केशवकी काव्य-प्रतिभा उसी प्रकार छिपी पड़ी हुई है, जिस प्रकार रुईके ढेरमें हीरेकी कान्ति। केशवकी इसी काव्य-प्रतिभाको प्रकाशमें लानेके लिए यह सम्मेलनादिमें पाठ्य-पुस्तक नियत की गयी है। पर पुस्तककी कठिनताके आगे परीक्षार्थियोंका कोई वश नहीं चलता। उन्हें लाचार होकर हिन्दीके धुरन्धरोंके पास दौड़ना पड़ता है। किन्तु वहाँसे भी "भाई हम इसका अर्थ बतानेमें असमर्थ हैं" का उत्तर पाकर बैरङ्ग लौटना पड़ता है। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तकमें रामचन्द्रिकाके मूल छन्दोंके नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलंकारादि दिये गये हैं। यथास्थान कविके चमत्कार-निदर्शनके साथ ही-साथ काव्य-गुण-दोषोंकी पूर्ण रूपसे विवेचना की गयी है। छन्दोंके नाम तथा अप्रचलित छन्दोंके लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिन्दू-विश्व विद्यालयके प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी हैं। यह पुस्तक दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य साढ़े सौ पृष्ठोंके प्रथम भागका, जिसमें रंग-विरंगे चित्र भी हैं, २॥।), सजिल्द ३)। दूसरे संशोधित नया संस्करण छप रहा है।

रहीम-रत्नावली

[रहिमनविलासका संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण]

यों तो रहीमकी कविताओंके संग्रह कई स्थानोंसे प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इतना बड़ा, इतना अच्छा संस्करण कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करणमें कई विशेषताएँ इन विशेषताओंके कारण इसका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। मेरा अनुरोध है कि एक बार आप अवश्य देखें। इस संस्करणकी विशेषताएँ—

१—इसमें संग्रहीत दोहोंकी संख्या लगभग ३०० के है।

२—नगर-शोभा वर्णन नामक १४४ दोहोंका नया ग्रन्थ खोजमें मिला है।

३—नायिकाभेदके बरवे तथा नये मिले हुए सवा सौ बरवे दोनों ही इसमें हैं।

४—मदनाष्टकके सम्बन्धमें भी बड़ी छान-बीन की गयी है।

५—शृङ्गार-सोरठ, रहीम काव्यके श्लोक तथा अन्य फुटकर प्राप्त पदोंका भी संग्रह इसमें है।

६—अनेक हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर इसका पाठ शुद्ध किया गया है। पाठान्तर दिये गये हैं।

७—समान आशयवाले (Parallel Quotations) अन्य कवियोंके छन्द भी साथ दिये गये हैं।

८—रहीमके दो चित्र भी दिये गये हैं।

९—इन सबके अतिरिक्त प्रारम्भमें गवेषणापूर्ण बृहद्काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीमके काव्यकी आलोचनाके साथ-ही-साथ उनके सम्बन्धकी किम्वदन्तियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं। इसके कारण पुस्तकका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है।

१०—पुस्तकान्तमें टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्य-सेवी पं० मया-शङ्करजी याज्ञिकने इस संस्करणका सम्पादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर। मूल्य ॥।≈)।

विनय-पत्रिका सटीक

(टीकाकार—श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनयपत्रिका है। विनय-पत्रिकाका-सा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें, शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीराम-चन्द्रकी स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्त्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका सम्मेलन-पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, व्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा संकलनकर्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगीहरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथाएं, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसङ्गपुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातों के कारण टीका अद्वितीय हुई है। पृष्ठ-संख्या लग-भग ७००। मूल्य २॥), सजिल्द २॥।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३)।

गुलदस्तए बिहारी

(लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम')

बिहारी-सतसईके परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं, सभी साहित्य-प्रेमी उसके नामसे परिचित हैं। यह गुलदस्तए बिहारी उसी बिहारी-सतसईके दोहोंपर रचे हुए उर्दू शैरोंका संग्रह है, अथवा यों कहिए कि बिहारी-सतसईकी उर्दू-पद्यमय टीका है। ये शैर सुननेमें जैसे मधुर और चित्ताकर्षक हैं, वैसे ही भाव-सङ्गके ख्यालसे भी अनुपम हैं। इनमें दोहोंके अनुवादमें, मूलके एक भी भाव छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं-कहीं उनसे भी अधिक भाव शैरोंमें आ गये हैं। ये शैर इतने सरल हैं कि मामूली से-मामूली हिन्दी जाननेवाला उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। इन शैरोंकी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन, वियोगीहरि आदि उद्भट विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। अतः विशेष कहना व्यर्थ है।

छपाईमें यह क्रम रखा गया है कि ऊपर बिहारीका मूल दोहा देकर, नीचे प्रीतमजी-रचित उसी दोहेका शैर हिन्दी लिपिमें दिया गया है। स्वयं एक बार देखनेसे ही इसकी विशेषताका परिचय आपको मिल सकता है। बिहारी-प्रेमियोंको इसे एक बार अवश्य देखना चाहिये। पृष्ठ-संख्या १७५ के लगभग। मूल्य ॥।≈)। सचित्र राजसंस्करणका १॥)

महात्मा सूरदासजी प्रणीत

भ्रमरगीत-सार

(सम्पादक—पं० रामचन्द्र शुक्ल)

सन्त-शिरोमणि, साहित्याकाश-प्रभाकर, महात्मा सूरदासजीसे विरले ही हिन्दी-प्रेमी अपरिचित होंगे। सूरदासजी हिन्दी-साहित्यकी विभूति हैं, जीवन-सर्वस्व हैं। इनकी काव्य-गुणगरिमाका उसको घमंड है। कहा भी है "सूर सूर तुलसी शशि, उडुगण केशवदास"। यथार्थमें हिन्दीमें इनका सर्वोच्च स्थान है। इनकी अनुपम उपमा, कविता माधुरी तथा अर्थ-गम्भीरताके सभी कायल हैं। इन्हीं महात्माके उत्कृष्ट पदोंका यह संग्रह है, सागरका सार अमृत है। सूरसागरका सर्वोत्कृष्ट अंश भ्रमरगीत माना जाता है। उसी भ्रमरगीतके चुने हुए पदोंका यह संग्रह है। इसमें चार सौसे भी ऊपर पद आ गये हैं। इसका सम्पादन हिन्दी-साहित्य-संसारके चिरपरिचित एवं दिग्गज विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी, ने किया है। एक तो सूरदासकी कविता, दूसरे हिन्दीके विशिष्ट विद्वान् द्वारा उसका संपादन 'सोनेमें सुगन्ध' हो गया है। सम्पादकजीकी ८० अस्सी पृष्ठकी दीर्घकाय भूमिका ही पुस्तककी महत्ताको दुगुनी कर रही है। पदोंमें आये हुए कठिन शब्दोंके सरलार्थ भी पादटिप्पणीमें दे दिये गये हैं। यह पुस्तक हिन्दू-यूनिवर्सिटीमें एम० ए० में पढ़ाई भी जाती है। विशेष क्या! पुस्तकका महत्त्व उसके देखनेपर ही चल सकेगा। मूल्य १)।

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्रीवियोगीहरिजी)

वियोगीहरिजीसे हिन्दी-साहित्यप्रेमीगण भली भाँति परिचित हैं। साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, व्रजमाधुरीसार, कविकीर्तन, तरंगिणी आदि ग्रन्थोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय मिल जाता है। इस पुस्तिकामें इन्हीं वियोगीहरिजी-प्रणीत व्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। कविताके एक एक शब्द अमूल्य रत्न हैं, कवि-प्रतिभाके द्योतक हैं। अनुरागवाटिकाका कुछ अंश सम्मेलन, सरस्वती आदि पत्रिकाओंमें निकल चुका है और साहित्य-रसिकों द्वारा सम्मानित भी हो चुका है। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य ।-)।

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सम्पादक—श्री वियोगीहरिजी)

इसमें जगन्मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी-प्रणीत समस्त ग्रन्थोंकी चुनी हुई अनूठी उक्तियोंका संग्रह किया गया है। जो लोग समयाभाव या अन्य कारणोंसे गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं कर सकते, उन लोगोंको इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंके पढ़नेका आनन्द आ जायगा। इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं—१ चरित-विन्दु २ ध्यान-विन्दु, ३ विनय-विन्दु, ४ तीर्थ-विन्दु, ५ अध्यात्म-विन्दु, ६ साधन-विन्दु, ७ पुरुष-परीक्षा-विन्दु, ८ उद्बोध-विन्दु, ९ व्यवहार-विन्दु, १० निज-निवेदन-विन्दु, ११ विविध-सूक्ति-विन्दु। इसमें आपको राज-नीति, समाज-नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी-से-अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायँगी। साहित्यिक छटाके लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। इसके तो तुलसीदासजी आचार्य ही ठहरे। साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे

लाभ उठा सकते हैं। इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी संपादकजीने पाठकोंके सुभीतेके लिए जोड़ दी है। पादटिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी व्याख्या भी कर दी गयी है। मूल्य २)।

झरना

(प्रणेता जयशङ्करप्रसाद)

जयशङ्करप्रसादजीकी कृतियोंसे हिन्दी प्रेमी भलीभाँति परिचित हैं। आपकी लिखी हुई पुस्तकें प्रयाग आदि विश्वविद्यालयोंमें पढ़ायी जाती हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें आपकी प्रतिभा-सम्पन्न ओजपूर्ण कविताओंका संग्रह है। कविताकी एक एक लाइन हृदयग्राही है। मूल्य ।≈)।

कुसुम-संग्रह

सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा लेखिका हिन्दी-संसारकी चिरपरिचित श्रीमती बंगमहिला। इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्रकुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरन्धर विद्वानोंके छोटे-छोटे उपन्यासों तथा लेखोंका अनुवाद है। कुछ लेख लेखिकाके निजके हैं। पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। इसे संयुक्तप्रान्तकी तथा मध्यप्रदेशकी (Vide Order no. 9754, dated 12-12-26) गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize books and Libraries) के लिए स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलोंमें पढ़ाई भी जाती है। छपाई, सफाई सुन्दर। सात रंग-बिरंगे चित्रोंसे विभूषित पुस्तकका मूल्य १।)

मुद्राराक्षस सटीक

[सं० व्रजरत्नदास बी० ए०]

भारत-भूषण भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी वर्तमान हिन्दी-साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। आपने जो काम हिन्दी जगतका किया है, उसे हिन्दी-भाषी यावज्जीवन भूल नहीं सकते। आपने ही महाकवि विशाखदत्तके संस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य-पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह अनुवाद मूल ग्रन्थसे कितना ही आगे बढ़ गया है, इसमें मौलिकता आगयी है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारतकी प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों तथा साहित्य-विद्यालयोंमें पाठ्यग्रन्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इसी पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी संस्करण निकाला है। आजकल बाजारमें जो संस्करण बिक रहा है, वह अत्यन्त अशुद्ध है। उससे लाभके बदले उलटी हानि ही होती है। इस संस्करणमें अध्येताओंके लिए ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भमें दे दी गयी है, जिसमें कवि-प्रतिभा, नाटकका इतिहास, लेखन-शैली आदिपर गवेषणा पूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपूर टिप्पणी दी गयी है, जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं, अलंकार आदि बतलाये गये हैं, स्थल-स्थलपर तुलनाके लिए संस्कृत मूल भी उद्धृत किये गये हैं, प्रमाणके लिए साहित्य-दर्पण, काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थोंके अवतरण भी दिये गये हैं। कहनेका मतलब यह कि सभी आवश्यकीय बातें समझा दी गयी हैं। इसका संशोधन पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, प्रो० हिन्दू-विश्वविद्यालय, ने किया है। संपादन, नागरी प्रचारिणी सभाके मन्त्री, व्रजरत्नदासजी बी० ए० ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३५० के लगभग, मूल्य १) मात्र।

पुस्तक-भवन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

एम० ए० बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की ?

हिन्दीमें शिक्षाप्रद होनेके साथ-ही-साथ रोचक भी हो, ऐसे उपन्यासोंकी बड़ी कमी है । इस पुस्तकमें ये दोनों ही गुण हैं । बड़े-बड़े विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने इसकी तारीफ की है । पृष्ठ-संख्या ४०० चारसौके लगभग । मूल्य २) । देखिए चित्रमय-जगत क्या कहता है:—

"यह एक उपन्यास है । इसमें एक एम. ए. पास युवककी करुण कहानी है। एक शायरने कहा है—

तालीम युनिवर्सिटीकी खाना खराब की ।
एम. ए. बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की ॥

'बस इसी शेरको सब रीतिसे चरितार्थकर बतानेवाला यह एक घटनापूर्ण, मनोरंजक और हृदयद्रावक उपन्यास है । वास्तवमें इसके पढ़नेमें दिल लगता है, और कुतूहल पैदा होता है । आजकल युनिवर्सिटीकी उपाधियोंके लिए लालायित होनेवाले नवयुवकोंको यह पुस्तक एकबार अवश्य पढ़नी चाहिए ।"
—चित्रमय जगत

शैलबाला

यह एक ऐतिहासिक मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक उपन्यास है। इसमें कुमार अमरेन्द्र और गोविन्दप्रसादका अत्याचार, दृढ़प्रतिज्ञ सुरेन्द्रसिंहकी वीरता, शैलबालाका आदर्श प्रेम और सतीत्वरक्षा, योगिनीकी अद्भुत लीला, इत्यादि पढ़ते-पढ़ते कभी आपको हँसी आवेगी तो कभी रुलाई कभी घृणा उत्पन्न होगी तो कभी आसक्ति । इसके पढ़नेसे आपको पता चलेगा कि अन्तमें धर्मात्माओंकी, अनेक कष्टोंके सहनेपर कैसी जीत होती है और दुरात्माओं की कैसी दुर्दशा । मूल्य २०० पृष्ठोंकी सचित्र पुस्तकका केवल १)

विसर्जन

मूल लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर । अनु० मुरारीदास अग्रवाल । संशोधक तथा भूमिका लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल । जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तककी उत्तमताके, सम्बन्धमें कुछ कहना नहीं है । यह एक अहिंसात्मक करुणरस-पूर्ण नाटक है । इसमें जीव-बलि निषेध किया गया है, और उससे उत्पन्न हानियोंका दिग्दर्शन कराया गया है । पुस्तकके भाव बड़े ऊंचे दर्जेके हैं । मूल्य ।)।

सीताराम

लेखक रायबहादुर स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी सी० आई० ई० । उच्चकोटिके उपन्यास-लेखकोंमें बंकिमबाबूका नम्बर पहला है । आपको लोग दूसरा स्काट समझते हैं । आपका-सा, रोचक, शिक्षाप्रद उपन्यास-लेखक अभी तक भारतमें कोई भी पैदा नहीं हुआ । यही कारण है कि आपके उपन्यासोंका अनुवाद मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, तेलगू आदि भारतीय भाषाओंकी कहे, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं तकमें हो चुका है। आपके उपन्यासोंमें सबसे बड़ी ही एक विशेषता यह होती है कि वे स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभीके हाथोंमें निस्संकोच भाव [illegible] जा सकते हैं । यही कारण है कि सभी पढ़े-लिखे लोग, बंकिमकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए उपदेश दिया करते हैं । बंकिमकी पुस्तकें Prize-books and Libraries के लिए भी डाइरेक्टरों-

द्वारा स्वीकृत हो चुकी हैं । अस्तु, यह 'सीताराम' श्रीमद्भगवद्गीताके आधारपर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें राजनीतिक चालोंका दिग्दर्शन कराया गया है । सीतारामकी वीरता, उनकी प्रथम त्यक्ता स्त्रीका अद्भुत साहस, श्रीकी सखी जयन्ती नामक संन्यासिनीकी अद्भुत करामात, द्वितीय स्त्री नन्दाका अपूर्व स्वार्थ-त्याग, सौतोंका आदर्श प्रेम, चन्द्रचूड़ तर्कालङ्कारकी स्वामिभक्ति, गंगारामका अपने रक्षकके साथ विश्वासघात, एक शाहजी नामक फकीरकी बदमाशी, मुसलमानोंका अत्याचार, भयंकर मार-काट आदि घटनाओंसे यह पुस्तक भरी पड़ी है । खूब मोटे एंटिक पेपरपर मनोमोहक छपाई । सचित्र । मूल्य १॥) ।

दुर्गेशनंदिनी

लेखक वही बंकिमबाबू । यह भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है । जिस समय पठानलोग बङ्गालमें धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व बढ़ा रहे थे, उस समय सम्राट् अकबरने उनको दबानेके लिए महाराज मानसिंह द्वारा जो प्रयत्न किया था, उसी घटनाको लेकर इस उपन्यासकी रचना की गयी है । आँधी-पानीकी रात्रिमें तिलोत्तमा तथा जगतसिंहका एक देवालयके अंदर सम्मिलन होना, दोनोंका एक दूसरेपर आसक्त होना, जगतसिंहका फिर मिलनेकी प्रतिज्ञा कर चले जाना, इधर अकबरका मानसिंहको भेजना, जगतसिंहका सेनाके साथ पठानोंको पराजित करने लिए बङ्गाल आना, पठान सेनापति कुतलूखाँका गढ़मान्दारनके अधिपति वीरेन्द्रसिंहसे सहायता माँगना, वीरेन्द्रसिंहके सहायता न देनेपर कुतलूखाँका चढ़ाई करना, विमलाका तिलोत्तमासे जगतसिंहको मिलानेके लिए गढ़मान्दारन जाना, वहाँ जगतसिंहका मूर्च्छित अवस्थामें होकर कुतलूखाँके हाथ पड़ना, आयेषाका जगतसिंहकी सेवा करना और उनपर मुग्ध होना, वीरेन्द्रसिंहको फाँसीकी आज्ञा, विमलाका कुतलूखाँको मार डालना, अंतमें पठानोंसे मानसिंहकी सुलह होना, और तिलोत्तमासे जगतसिंहकी शादी होना—आदि इस उपन्यासमें वर्णित है । आसमानी तथा दिग्गजका छोटासा प्रहसन भी बड़ा मजेदार है । पढ़ते-पढ़ते पेटमें बल पड़ जायँगे । सचित्र दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य १।)

कृष्णकान्तका वसीयतनामा

इस पुस्तकके लेखक भी बंकिमबाबू ही हैं । एक वसीयतनामेको लेकर इस उपन्यासकी रचना हुई है । इस उपन्यासमें पति-परायणा भ्रमरका हाल पढ़कर पाठक अवाक् हो जायँगे, आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चलेगी । इसमें पत्नीका स्वभाव यदि नम्र न हो तो उसका क्या परिणाम होता है, कुचाल चलनेवाली स्त्रियोंकी कैसी दुर्दशा होती है, विषयी पुरुषका जीवन कैसा दुःखप्रद होता है, एक स्त्रीके रहते दूसरीपर आँख लगानेसे कैसा भयंकर परिणाम निकलता है—आदि बातें इस पुस्तकमें दी गयी हैं । इसके पढ़नेसे स्त्री-पुरुष सुधर सकते हैं, दाम्पत्य जीवन सुखप्रद बन सकता है । अनुवाद बँगला तथा हिन्दी भाषाके पारदर्शी विद्वान बा० मुरारीदासजीने किया है । भाषा बड़ी ही सरल तथा मुहाविरेदार है । सचित्र । मूल्य १) ।

कपालकुण्डला

लेखक बंकिमबाबू । समुद्र-तटपर साथियोंका नवकुमारको छोड़कर चले जाना, कापालिकका नवकुमारको बलि देनेकी आयोजना करना, कपालकुण्डलाका नवकुमारको छुड़ाकर ले भागना दोनोंका विवाह, मार्गमें लुत्फउन्निसाका नवकुमारपर आसक्त होना और कपालकुण्डलाकी ओरसे

उनका मन फेरना. कापालिकका इस षड्यंत्रमें शामिल होना, लुत्फुन्निसाका पुरुष-भेष में कपालकुण्डलासे बातें करना जिससे नवकुमारका उसपर सन्देह करना, कापालिकके कहनेपर कपालकुण्डलाको बलि देनेके लिए श्मशानपर ले जाना, कपालकुण्डलाका अपनेको निर्दोष प्रमाणित करना, अन्तमें दोनोंका ही गंगामें कूदकर आत्मत्याग करना—आदि घटनाएँ इसमें दी गयी हैं, जिनके पढ़नेसे आपको एक बार रोमांच हो आयेगा। ऐसा घटनाप्रद उपन्यास हिन्दी-साहित्यमें दूसरा कोई नहीं है। सचित्र मूल्य ।॥)

रजनी

लेखक स्वर्गीय बंकिमचन्द्र। यह गद्य-काव्यमय उपन्यास है। इसमें कविकी अद्भुत कल्पनाका चित्र है, रजनीकी आत्म-कथाके रूपमें। नेत्रहीना रजनीका आत्मत्याग, उसका सच्चा पातिव्रत, लवङ्गलताका बूढ़े पतिसे सच्चा प्रेम, संन्यासीकी अद्भुत करामात, रजनीको धैर्य तथा संतोषके फल-स्वरूप नेत्र-प्राप्ति, अमरनाथका संसार-त्याग आदि बातें बड़े मनोरंजक ढंगसे लिखी गयी हैं। ईश्वरकी न्यायशीलताका प्रत्यक्ष प्रमाण इसमें मिलेगा। मूल्य लगभग १५० पृष्ठोंकी सचित्र पुस्तकका ॥≈)।

राजारानी

इस नाटकके लेखक संसारके सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। अनुवादक बा० मुरारीदास अग्रवाल। भूमिका में हिन्दीके विद्वान एवं सम्मेलन-पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक तथा साहित्य विहार, अनुराग-वाटिका आदिके लेखक श्रीवियोगीहरि लिखते हैं—

"यह नाटक अपने ढंगका एक है, इसमें सन्देह नहीं। नाटकमें सामयिकताके साथ ही स्थायित्व भी है। विचारलहरीकी आरोही-अवरोही देखते ही बनता है।... ...एकका प्रेमकी-प्रेमक्य। मोहकी-अतिसे पतन दिखाया गया है, तो दूसरेका लक्ष्य-हीन कर्मकी अतिसे सर्वनाश कराया गया है......समाज और राष्ट्र के लिए कवीन्द्रकी यह उत्कृष्ट कल्पना कितनी उपयोगिनी है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। अनुवाद सुन्दर, सरस और यथार्थ हुआ है।" मूल्य ॥।)।

सफ़ाई और स्वास्थ्य

दुनियाँमें स्वास्थ्य बड़ी चीज़ है। इसके बिना मनुष्य, जीता हुआ भी, मुर्दे से बदतर है। इस छोटी सी पुस्तिकामें स्वास्थ्य-लाभ-सम्बन्धी सभी आवश्यकीय बातें बतलायी गयी हैं। स्वास्थ्यकी पहली सीढ़ी सफ़ाई है। अधिकतर बीमारियाँ गन्दगीकी वजहसे ही पैदा होती हैं। गन्दगीसे ही नाना प्रकारके हानिकारक विषैले कीड़े, जोकि रोगके घर होते हैं, उत्पन्न होते हैं, वायु दूषित हो जाती है। इन्हीं सब रोगोंके मूल कारणोंसे बचानेके लिए प्रस्तुत पुस्तिका लिखी गयी है। स्वस्थ तथा बलवान् बननेके लिए इस पुस्तकको अवश्य पढ़िए। सी० पी० के शिक्षा-विभागने इसे अपने यहाँ बालक-बालिकाओंके पुस्तकालयके लिए भी स्वीकृत कर लिया है।
Vide Order no. 8918, Dated 23-12-25

बाल-मनोरंजन

इसमें बालकोंके लिए शिक्षाप्रद मनोरञ्जक कहानियोंका संग्रह है। पुस्तककी भाषा बड़ी ही सरल है। दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य प्रत्येक भागका ।=)।

This book is sanctioned as a Prize and Library book in Middle Schools of Central Provinces and Berar. (*Vide Order no. 9754, Dated 17-12-26*)